पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला–२९

सम्पादक :
डा० सागरमल जैन

प्राकृत-दीपिका

3600

लेखक :

डॉ० सुदर्शनलाल जैन

एम०ए०, पी-एच०डी०, आचार्य (साहित्य, प्राकृत एवं जैनदर्शन)
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक :

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

आई० टी० आई० रोड, वाराणसी - ५

पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला २९

सम्पादक : डॉ० सागरमल जैन

प्राकृत-दीपिका

3600

लेखक

डॉ० सुदर्शन लाल जैन

एम० ए०, पी-एच० डी०, आचार्य (साहित्य, प्राकृत एवं जैनदर्शन)

प्रवक्ता, संस्कृत विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

वाराणसी-५

सच्चं लोगम्मि सारभूयं

प्रकाशक

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी

प्रकाशक :
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
आई० टी० आई० रोड
वाराणसी–२२१००५

प्राप्तिस्थान :
१. मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी
२. भारतीय विद्या प्रकाशन, चौक, वाराणसी
३. चौखम्बा विद्या भवन, चौक, वाराणसी
४. विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी

प्रकाशन वर्ष :
सन् १९८३
वीर निर्वाण सं० २५०९

मूल्य :
पुस्तकालय संस्करण : पच्चीस रुपये

संस्करण :
प्रथम

मुद्रक :
हिमालय प्रेस
के० ५८/१०३, बड़ा गणेश,
लोहटिया, वाराणसी

प्राकृत-भाषा के अद्वितीय विद्वान्
परमसारस्वत
पं० बेचरदासजी दोशी
एवं
पं० दलसुख भाई मालवणिया
को
सादर
समर्पित

प्रकाशकीय

प्राचीन भारतीय भाषाओं में संस्कृत का स्थान शीर्षस्थ है, किन्तु संस्कृत का जिससे निर्माण हुआ है वह मूल भाषा प्राकृत है। प्राकृत संस्कृत की जननी है, प्रकृति है, जबकि संस्कृत प्राकृत का संस्कारित रूप है। प्राकृत स्वाभाविक भाषा है, संस्कृत कृत्रिम भाषा है। स्वयं संस्कृत शब्द ही उसके संस्कारित स्वरूप का प्रमाण है। वस्तुतः प्राकृत भी एक भाषा नहीं अपितु भाषा समूह का नाम है। भारतीय भाषाओं के विकास में इन प्राकृतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी, मराठी, बंगला, उड़िया आदि अनेक भाषाओं का विकास इन्हीं प्राकृतों से हुआ है। युग-युग तक प्राकृत ही जन-जन की भाषा रही है। संस्कृत विद्वद्वर्ग की साहित्यिक भाषा तो रही किन्तु वह जन-जन की भाषा कभी नहीं बनी। यही कारण था कि जब संस्कृत के साहित्यकारों को जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करना होता था तो वे उसके मुख से प्राकृत ही कहलाते थे, संस्कृत नहीं। जिस प्रकार आज हिन्दी सभ्य वर्ग की एक साहित्यिक भाषा होते हुए भी घर-घर में भोजपुरी, बुन्देली, मालवी, मेवाड़ी, मारवाड़ी आदि लोक-भाषाएँ ही प्रचलित हैं। जैन और बौद्ध धर्म के प्रवर्तकों एवं आचार्यों ने अपने को जन-जन से जोड़ने के लिए इन्हीं प्राकृतों को अपनाया। आज भी प्राचीनतम भारतीय साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग इन प्राकृतों में निबद्ध एव उपलब्ध है। प्राकृतों के ज्ञान के बिना किसी को प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति को समझ पाना संभव नहीं है। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि आज प्राकृत का ज्ञान, अध्ययन एवं अध्यापन धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा है। आज सम्पूर्ण देश में पालि एवं प्राकृत के विद्वानों की संख्या अंगुलियों पर गिनने लायक है।

संस्कृत के विद्वानों एवं विद्यार्थियों मे प्राकृत के अध्ययन के प्रति रुचि जागृत हो, इसलिए आवश्यक है कि उन्हें प्राकृत भाषा सीखने हेतु कुछ

प्रारम्भिक पुस्तकें तैयार की जायें। प्राकृत से अनभिज्ञ छात्रों को हिन्दी माध्यम से प्राकृत सीखने की दृष्टि से डा० प्रेमसुमन जैन की प्राकृत स्वयं शिक्षक नामक पुस्तक एक अच्छा प्रयास है। किन्तु उन लोगों के लिए जो संस्कृत के अध्ययन में निरत हैं और संस्कृत की शैली में प्राकृत सीखने के इच्छुक हैं, एक दूसरी पद्धति अपेक्षित है। डा० सुदर्शन लाल जैन का यह ग्रन्थ दोनों ही प्रकार के लोगों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम जैन विद्या के उच्चस्तरीय अध्ययन एवं शोध-कार्य में निरत है। डा० सुदर्शन लाल जैन ने जो कि इस संस्थान के शोध-छात्र भी रहे हैं संस्था के मन्त्री श्री भूपेन्द्रनाथ जी जैन से अनुरोध किया कि प्राकृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन हेतु संस्थान से छात्रोपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन किया जाना चाहिए और इस ग्रन्थ को तैयार करने का अभिवचन दिया। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी प्रयास का परिणाम है। प्रस्तुत ग्रन्थ किस सीमा तक उपयोगी बन सका है, इसका निर्णय तो अध्यापक एवं छात्रगण ही कर सकेंगे। किन्तु हमें इतना सन्तोष अवश्य है कि संस्थान ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन कर जैन विद्या के अध्ययन के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है।

हम ग्रन्थ लेखक डा० सुदर्शन लाल जैन के आभारी हैं जिन्होंने अल्प समय में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ-प्रणयन-कार्य में एवं प्रूफ-संशोधन में संस्थान के शोध-छात्र एवं वर्तमान में शोध-सहायक श्री रविशंकर मिश्र के सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता है।

संस्थान के मन्त्री श्री भूपेन्द्रनाथ जी के सहयोग को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है। उन्होंने न केवल ग्रन्थ के प्रकाशन में अपनी रुचि प्रदर्शित की अपितु इस हेतु अर्थ-व्यवस्था जुटाने का भी कार्य किया। हम हिमालय प्रेस के संचालक मण्डल के भी आभारी हैं, जिन्होंने अल्प समय में इसका मुद्रण कार्य सम्पन्न किया।

डा० सागरमल जैन
निदेशक
पा० वि० शोध संस्थान, वाराणसी

दिनांक २६ जनवरी, १९८३

प्रस्तावना

प्राकृत भाषा की उत्पत्ति और विकास

बोलचाल की भाषा सदा परिवर्तनशील होती है। उसमें जब साहित्य लिखा जाने लगता है तब उसे व्याकरण के नियमों से बांध दिया जाता है। इस तरह बोलचाल की गतिशील भाषा साहित्यिक भाषा होकर गतिहीन हो जाती है। ऐसा होने पर भी बोलचाल की भाषा परिवर्तनशील बनी रहती है और कालान्तर में नवीन भाषाओं की जननी होती है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से संसार की भाषाओं को प्रमुख रूप से १२ परिवारों में विभक्त किया जाता है—(१) भारोपीय (२) सेमेटिक (३) हैमेटिक (४) चीनी (५) यूराल अल्टाई (६) द्राविड (७) मैलोपालीनेशियन (८) बंटू (९) मध्य अफ्रीका (१०) आस्ट्रेलिया (११) अमेरिका (१२) शेष। इन बारह परिवारों में भारोपीय परिवार के आठ उपभाषा परिवार हैं—(१) आरमेनियम (२) बाल्टैस्लैबोनिक (३) अलबेनियम (४) ग्रीक (५) भारत-ईरानी या आर्य (६) इटैलिक (७) कैल्टिक (८) जर्मन या ट्यूटानिक। इन आठ उपभाषा परिवारों में आर्य परिवार की तीन प्रमुख शाखाएँ हैं—(१) ईरानी (२) दरद (३) भारतीय आर्य। इन भाषा परिवारों में से प्राकृत भाषा का कौटुम्बिक सम्बन्ध भारतीय आर्य भाषा से है।

भारतीय आर्य भाषा को विकास-क्रम की दृष्टि से तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल
(२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल
(३) आधुनिक आर्य भाषा काल

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का स्वरूप हमें वैदिक या छान्दस् भाषा में मिलता है। मध्यकालीन आर्यभाषाओं का स्वरूप हमें प्राकृत परिवार में मिलता

है। इसका विकास ई० पू० ६०० से ई० १००० तक माना जाता है। पालि और अपभ्रंश भाषा को भी प्राकृत परिवार के अन्तर्गत माना जाता है। इनकी अपनी स्वतन्त्र इकाई होने से इन्हें प्राकृत से पृथक् भी माना जाता है। हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं का विकास प्राकृत (प्राकृत >अपभ्रंश > हिन्दी आदि) से माना जाता है।

प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत—

प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के विषय में जो प्रमाण एवं मत उपलब्ध हैं वे निम्न-प्रकार हैं—

(अ) संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति—प्राकृत की प्रकृति संस्कृत है 'प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्'।[1] अर्थात् प्राकृत भाषा की प्रकृति संस्कृत है। अतः संस्कृत से जन्य भाषा प्राकृत है। इस अर्थ की पुष्टि निम्न ग्रंथों के उद्धरणों से की जाती है—

(१) प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं प्राकृतमुच्यते।[2]
(२) प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्।[3]
(३) प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः।[4]
(४) प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता।[5]
(५) प्रकृतेः संस्कृताद् आगतं प्राकृतम्।[6]

इन सभी प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है।

(ब) छान्दस् से प्राकृत की उत्पत्ति—डा० नेमीचन्द शास्त्री जैसे विचारकों का मत है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषायें किसी एक स्रोत से विकसित होने

---

१. सिद्धहेमशब्दानुशासन, ८.१.१.
२. मार्कण्डेय; प्राकृतसर्वस्व, १.१.
३. धनिक, दशरूपकवृत्ति, २.६०.
४. कर्पूरमञ्जरी, संजीवनी टीका (वासुदेव) १.८-९.
५. षड्भाषाचन्द्रिका (लक्ष्मीधर), श्लोक २५.
६. वाग्भटालंकार टीका (सिंहदेवगणि), २.२.

से सहोदरा हैं। पाश्चात्य-मनीषी डा० ए० सी० बुल्नर ने अपने 'इन्ट्रोडक्सन टु प्राकृत' में संस्कृत को शिष्ट समाज की भाषा और प्राकृत को जनसाधारण की भाषा माता है--

'It is probable that it was in the more general sense that प्राकृत (शौरसेनी पद, महाराष्ट्री पद) was first applied to ordinary common speech as distinct from the highly polished perfected Sanskritam...If in "Sanskrit" we include the Vedic language and all dialects of the old Indo-Aryan period, then it is true to say that all the Prakrits are derived from Sanskrit. If on the other hand "Sanskrit" is used more strictly of the Panini–Patanjali language or "Classical Sanskrit" thus it is untrue to say that any Prakrit is derived from Sanskrit, except that Sauraseni, the Midland Prakrit, is derived from the old Indo-Aryan dialect of the Madhyadesa on which Classical Sanskrit was mainly based.

'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' में डॉ० पिशेल ने भी मूल प्राकृत को जनता की भाषा माना है तथा साहित्यिक प्राकृतों को संस्कृत के समान सुगठित भाषा। इससे सिद्ध होता है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों सहोदरा भाषाएँ हैं तथा इनकी उत्पत्ति का स्रोत छान्दस् (वैदिक) भाषा है।

(स) प्राकृत से संस्कृत की उत्पत्ति—रुद्रट के काव्यालङ्कार के एक श्लोक की[1] व्याख्या करते हुए नमि साधु (११वीं शताब्दी) ने प्राकृत (अपभ्रंश भी) को सकल भाषाओं का मूल बतलाया है तथा उसे संस्कृत तथा अन्यान्य प्राकृत भाषाओं का जनक माना है। व्याकरण के नियमों से संस्कार किये जाने के कारण ही संस्कृत कहलाती है तथा संस्कारहीन स्वाभाविक वचन व्यापार प्राकृत—'प्राक् पूर्वं कृतं प्राक्कृतं बालमहिलादिसुबोधं सकलभाषानिबन्धभूतं

---

(१) प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शौरसेनी च ।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥ २.१२ ॥

वचनमुच्यते।...पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्दलक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते।'

इसी प्रकार वाक्पतिराज (८वीं शताब्दी) ने भी अपने गउडवहो नामक महाकाव्य में समुद्र के समान प्राकृत से संस्कृत आदि समस्त भाषाओं को जन्य बतलाया है—

'सयलाओ इमं वाया विसंति एत्तो य णेंति वायाओ।
एंति समुद्दं चिय णेंति सायराओ च्चिय जलाइं॥ ९३॥

"प्रकृतिरेव प्राकृतं शब्दब्रह्म। तस्य विकारा विवर्ता वा संस्कृतादय इति मन्यते स्म कविः"। राजशेखर (९वीं शताब्दी) ने भी प्राकृत को संस्कृत की योनि= विकासस्थान कहा है।[१] इस सिद्धान्त के अनुसार प्राकृत की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जायेगी—

(i) प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम्।
(ii) प्रकृतीनां साधारणजनानामिदं प्राकृतम्।
(iii) प्राक् कृतं प्राकृतम्।

इन व्युत्पत्तियों से प्राकृत वैदिक भाषा की भी जनक सिद्ध होती है।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि (i) संस्कृत के माध्यम से प्राकृत की व्याख्या की गई है। (ii) प्राकृत का अनुशासन संस्कृत के बाद होने से उसे ही प्राकृत की योनि बतलाया गया है। (iii) उस समय जनसामान्य की प्राकृत भाषा और सभ्य समाज की संस्कृत भाषा में पर्याप्त अन्तर हो गया था और परस्पर एक दूसरे की भाषा को समझने में कठिनाई होती थी। अतः जब प्राकृत का भी साहित्य बना तो उसका भी अनुशासन किया गया। सभ्य समाज संस्कृत से सुपरिचित था, अतः संस्कृत के माध्यम से ही प्राकृत का व्याकरण लिखा गया। (iv) प्राकृत में संस्कृत के शब्दों की बहुलता होने पर भी प्राकृत की प्रवृत्ति छान्दस् से अधिक साम्य रखती है। (v) जहाँ प्राकृत को संस्कृत का जनक माना गया है। वहाँ प्राकृत से 'जनभाषा' अर्थ लिया गया है। साहित्यिक प्राकृत कथमपि संस्कृत की जनक नहीं रही है। अर्धमागधी को भी संस्कृत का जनक मानना

---

(१) स्याद्योनिः किल संस्कृतस्य सुदशां जिह्वासु यन्मोदते—बालरामायण, ४८.

युक्तिसंगत नहीं है। (vi) प्राकृत से जब 'जनभाषा' अर्थ लिया जायेगा तो वह समस्त भाषाओं की जननी अवश्य होगी परन्तु जब प्राकृत से साहित्यिक प्राकृत अर्थ लिया जायेगा (जो कि प्राकृत से अभीष्ट है) तो कहा जा सकता है कि प्राकृत का मूलस्रोत छान्दस् भाषा रही है जिस पर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव रहा है। प्राकृत भाषा के अध्ययन से संस्कृत के विकृत रूपों एवं उनके सरलीकरण की प्रवृत्ति का इतिहास दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत में प्राकृत से भी कई शब्दों को लिया गया है। (vii) आर्यों की भाषा पर जब अनार्यों की भाषा का प्रभाव पड़ने लगा तो पुरोहितों ने छान्दस् भाषा को अनुशासित किया होगा। परन्तु जन भाषा का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ा, फलस्वरूप ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद और ब्राह्मण साहित्य की भाषा में जनतत्त्व अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। पाणिनि आदि ने उनका परिमार्जन करके संस्कृत का स्वरूप प्रकट किया होगा। परन्तु छान्दस् में जो जनतत्त्व समाविष्ट थे, वे पूर्णरूप से परिमार्जित नहीं हो सके होंगे। कालान्तर में साहित्यिक प्राकृत भाषा का विकास हुआ होगा। इसमें भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध का बड़ा योगदान रहा, जिन्होंने अपने उपदेश संस्कृत में न देकर जनभाषा (प्राकृत) में दिए। इस तरह कालान्तर में उस जनभाषा ने जो वैदिक भाषा के समानान्तर चल रही थी, प्राकृत भाषा का रूप धारण किया होगा। डॉ० पी० डी० गुणे ने भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है[1]—From the above it will be seen that the linguals in vedic and later Sk. are due to the influence of the old Prakrits, which therefore must have existed side by side with Vedic dialects. (viii) छान्दस्, संस्कृत तथा प्राकृत में मूर्धन्य ध्वनियों का अस्तित्व द्रविडभाषा के प्रभाव से है। यही कारण है कि भारोपीय परिवार की किसी अन्य भाषा में इन ध्वनियों का अस्तित्व नहीं है। अवेस्ता में मूर्धन्य ध्वनियाँ नहीं हैं।

---

[1] 'An Introduction to comparative philology', पृ० १६३.

कथ्य भाषा का विकासक्रम एवं विभाजन :

सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' नामक पुस्तक में प्राकृत के तीन स्तर बतलाये हैं, जिनसे प्राकृत के स्वरूप-विकास का पता चलता है—

(१) प्रथम स्तर या कथ्य भाषा (ई० पू० २००० से ई० पू० ६००)

यह प्राचीनकाल में बोली के रूप में प्रचलित थी। यद्यपि इसका कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसके रूपों की झलक छान्दस् साहित्य में देखी जा सकती है। वैदिक काल की समस्त कथ्य भाषाओं को प्राथमिक प्राकृत (Primary Prakrits) अथवा प्राकृत भाषा समूह का प्रथम स्तर (First stage) कहा जा सकता है। इन प्राथमिक प्राकृतों की एक शाखा ने परिमार्जित होकर छान्दस् भाषा का रूप धारण किया। प्रथम स्तर की ये भाषाएँ स्वर और व्यञ्जन आदि के उच्चारण में तथा विभक्तियों के प्रयोग में वैदिक भाषा के सदृश थीं। जैसे--कृत=कुठ (ऋग्वेद १. ४६. ४), पुरोदास=पुरोडाश (शुक्लयजु:प्रतिशाख्य ३. ४४), दुर्दभ=दूडभ (वाजसनेयी संहिता ३.३६) पश्चात्=पश्चा (अथर्वसंहिता १०. ४. ११) आदि प्रथमस्तरीय प्राकृत के रूप हैं। इन्हें विभक्तिबहुल होने से संश्लेषणात्मक (Synthetic) भाषा समुदाय कहा जा सकता है।

(२) द्वितीय स्तर या साहित्य निबद्ध भाषा (ई० पू० ६०० से ई० ९००)

प्रथम स्तर की प्राकृत ने परवर्ती काल (ई० पू० ६०० से ई० ९००) में अनेक परिवर्तनों के बाद जब साहित्य का रूप धारण किया, तो उसे द्वितीय स्तर (Second stage) की प्राकृत अथवा साहित्य-निबद्ध प्राकृत कहा गया। इस स्तर की प्राकत भाषाओं में चतुर्थी विभक्ति का लोप, सभी विभक्तियों के द्विवचन का लोप तथा क्रियापदों की अधिकांश विभक्तियों का लोप होने पर भी विभक्ति-बहुलता (Synthetric) का रूप सुरक्षित रहा।

(३) तृतीय स्तर या आधुनिक भाषाएँ (ई० ९०० के बाद)

हिन्दी आदि तृतीय स्तर की प्राकृत भाषाएँ हैं। इनकी उत्पत्ति द्वितीय स्तर की प्राकृत विशेषकर अपभ्रंश से हुई है। इनमें अधिकांश विभक्तियों का

लोप हो गया और विभक्तियों के बोधक स्वतन्त्र शब्दों का प्रयोग होने लगा, जिससे ये भाषाएँ विश्लेषणात्मक (Analytical) हो गईं।

प्राकृत भाषा का विकासक्रम एवं विभाजन

द्वितीय स्तर की कथ्य भाषाओं (साहित्य निबद्ध प्राकृतों) को प्राकृत साहित्य के इतिहासकार निम्न तीन कालों में विभक्त करते है[१]—

(१) प्रथम युग (ई० पू० ६०० से ई० १००)—इसमें निम्न भाषाएँ आती हैं—(i) पालि, (ii) पैशाची एवं चूलिका पैशाची, (iii) अर्धमागधी (जैन-आगम), (iv) अशोक शिलालेख और (v) अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत।

(२) द्वितीय युग (ई० १०० से ६००)—इसमें निम्न भाषाएँ आती हैं—(i) भास एवं कालिदास के नाटकों की प्राकृतें, (ii) काव्य (सेतुबन्ध आदि) की प्राकृतें, (iii) प्राकृत वैयाकरणों द्वारा अनुशासित प्राकृतें एवं (iv) परवर्ती जैन ग्रन्थों की प्राकृतें।

(३) तृतीय युग (ई० ६०० से १२००)—इसमें अपभ्रंश भाषाएँ आती हैं।

उपर्युक्त भाषाओं में से पालि और अपभ्रंश को प्राकृत से पृथक् भाषा के रूप में भी माना जाता है तथा शेष प्राकृत भाषा समुदाय को प्रमुख रूप से चार भागों में विभक्त किया जाता है—

(१) महाराष्ट्री, (२) पैशाची, (३) मागधी और (४) शौरसेनी। वररुचि ने अपने प्राकृत प्रकाश में इन्हीं चार प्राकृत-प्रकारों का अनुशासन किया है। हेमचन्द्राचार्य ने चूलिका पैशाची, आर्ष (अर्धमागधी) और अपभ्रंश इन तीन भेदों को मिलाकर ७ प्रकार की प्राकृतों का अनुशासन किया है। प्राकृतसर्वस्वकार मार्कण्डेय ने प्रथमतः भाषा के चार भेद किए हैं और फिर उनके अवान्तर भेदों को बतलाया है—

(i) भाषा—महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, अवन्ती और मागधी।

---

[१] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रा० भा० सा० आ० इ०, पृ० १९.

(ii) विभाषा—शाकारी[1], चाण्डाली[2], शाबरी[3], आभीरिकी[4] और शाकी (शाखी)।

(iii) अपभ्रंश--२७ प्रकार। (देखें पृ० १३४)

(iv) पैशाची--कैकेयी, शौरसेनी और पाञ्चाली।

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में ७ प्रकार की प्राकृतों का उल्लेख किया है[5]—(१) मागधी (२) अवन्तिजा[6] (३) प्राच्या[7] (४) शौरसेनी (५) अर्धमागधी (६) बाह्लीका[8] और (७) दाक्षिणात्या (महाराष्ट्री)।

देश-भेद, काल-भेद और जाति-भेद के आधार पर प्राकृत के अवान्तर कई भेद किये जा सकते हैं। मृच्छकटिक आदि नाटकों में इनके प्रयोग देखे जा सकते हैं। साहित्य में प्रयुक्त भाषाएँ महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची प्रमुख हैं। जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेन, अर्धमागधी और चूलिका पैशाची इन अवान्तर उपविभागों में भी पर्याप्त साहित्य उपनिबद्ध है। महाराष्ट्री प्राकृत को सामान्य प्राकृत के रूप में सभी वैयाकरणों (चंड को छोड़कर) ने उपस्थित किया है। व्याकरणात्मक विशेषताओं के आधार पर (अपभ्रंश के साथ)

---

१. मागधी की एक बोली थी। इसमें अपभ्रंश की प्रवृत्तियाँ थीं।

२. मागधी और शौरसेनी का मिश्रण है।

३. शबर जाति की बोली थी। इसमें मागधी का ही विकृत रूप है।

४. यह पश्चिम की बोली थी। शौरसेनी और पैशाची का मिश्रण था। यह अपभ्रंश भाषा ही थी।

५. मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्द्धमागधी।
बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषा प्रकीर्तिताः॥ १७·४८.

६. महाराष्ट्री और शौरसेनी का मिश्रण। अवन्ती = उज्जैन। इसमें मुहावरों की बहुलता है। यह शिकारी और कोतवालों की भाषा थी।

७. भरत के अनुसार यह विदूषक की भाषा थी। मार्कण्डेय के व्याकरणानुसार प्राच्या से शौरसेनी में कोई विशेष अन्तर नहीं था।

८. महाराष्ट्री की ही एक उपभाषा है।

प्रमुख ९ प्रकार की प्राकृतों की सामान्य प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत ग्रन्थ में दर्शायी गयी हैं।

ग्रन्थ योजना एवं आभार—

'संस्कृत-प्रवेशिका' लिखने के बाद विद्वानों एवं छात्रों से प्राकृत भाषा के ज्ञान के लिए व्याकरण एवं अनुवाद की एक पुस्तक लिखने की निरन्तर प्रेरणा मिलती रहती थी। फलस्वरूप प्रस्तुत 'प्राकृत-दीपिका' आपके समक्ष प्रस्तुत है।

ग्रन्थ योजना निम्न प्रकार है—

(१) 'व्याकरण, अनुवाद और संकलन' इन तीन भागों में ग्रन्थ को स्पष्टतः विभक्त करके विषय को सुबोध बनाने का यह प्रथमतः प्रयत्न किया गया है।

(२) व्याकरण भाग में यथावसर समानान्तर संस्कृत रूप देकर तथा संकलन भाग में संस्कृत छाया देकर संस्कृत-प्रेमियों की सुविधा का ध्यान रखा गया है।

(३) विशेष जिज्ञासुओं के लिए यथावसर प्रमाणस्वरूप प्राकृत वैयाकरणों (विशेषकर हेमचन्द्र) के सूत्रों को फुटनोट में उद्धृत किया गया है। कहीं-कहीं भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी व्याकरण के नियमों को स्पष्ट किया गया है।

(४) हिन्दी भाषाविदों के सुबोधार्थ यथावसर प्राकृत-प्रयोगों का हिन्दी में अर्थ दिया गया है। सम्पूर्ण संकलन भाग का भी हिन्दी अर्थ दिया गया है।

(५) व्याकरण के विशेष नियमों को कोष्ठक [ ] में दिखलाया गया है। अपरिहार्य कारणों से टाइप-भेद नहीं किया जा सका है।

(६) एकादश अध्याय में प्रमुख शब्दरूपों को देकर उनके समानार्थक अनेक शब्दों को गिनाया है, जिससे अधिकांश शब्दों के रूपों का ज्ञान हो सके।

(७) द्वादश अध्याय में प्रमुख धातुरूपों को देकर तथा प्रत्यय जोड़कर अवान्तर धातुओं के रूप चलाने का सरल तरीका बतलाया गया है।

(८) कारक, समास, तथा प्रत्ययान्त धातुओं (सन्नन्त, आदि) का भी स्पष्ट विवेचन किया गया है, जिसे कि प्रायः संस्कृतवत् बतलाकर छोड़ दिया जाता रहा है। इससे संस्कृत न जानने वाले तथा संस्कृतज्ञ दोनों लाभान्वित होंगे।

(९) भाग २ अनुवाद में उदाहरण वाक्य देकर नियम दिये गये हैं, साथ ही प्रत्येक पाठ के अन्त में दो-दो अभ्यास खण्ड भी दिए गये हैं।

(१०) मूलतः महाराष्ट्री प्राकृत (सामान्य प्राकृत) के नियमों को स्पष्ट किया गया है, शेष शौरसेनी आदि प्राकृत-प्रकारों के व्याकरण-सम्बन्धी नियमों तथा ऐतिहासिक विवेचन को चतुर्दश अध्याय में संक्षेप में प्रस्तुत किया है। संकलन भाग में अवान्तर प्राकृतों के संकलन भी दिए गये हैं।

(११) संकलन भाग में संकलन करते समय महाराष्ट्री, जैन महाराष्ट्री और अर्धमागधी को क्रमशः प्रमुखता दी गई है, शेष प्राकृत प्रकारों के एक-एक संकलन अंश दिए गये हैं। विषय-चयन की दृष्टि से गद्य-पद्य दोनों का समावेश करते हुए कुछ सरल, कुछ साहित्यिक, कुछ उपदेशात्मक, कुछ दार्शनिक, कुछ संभाषणात्मक आदि विभिन्न प्रकार के अंशों का चयन किया गया है।

(१२) परिशिष्ट में शब्दकोश और धातुकोश देकर अनुवाद को सहज बनाने का प्रयत्न किया गया है।

(१३) यथावसर सुबोधार्थ चार्ट और संकेताक्षरों का प्रयोग किया है।

(१४) प्रस्तावना में प्राकृत भाषा की उत्पत्ति और विकास का संक्षिप्त विवेचन करके यथाशक्य पूर्णतः लाने का प्रयत्न किया है।

विस्तारभय के कारण तीनों भागों की पर्याप्त सामग्री को रोक दिया गया है। आशा है, भविष्य में उसे द्वितीय भाग में या अग्रिम संस्करण में जैसे पाठकों के विचार होंगे, देने का प्रयत्न करूँगा।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक के माध्यम से संस्कृतज्ञ एक माह में तथा हिन्दी के वेत्ता तीन माह में प्राकृत भाषा सीख सकते हैं।

प्रमादवश हुई अशुद्धियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। विद्वान् पाठकों के बहुमूल्य सुझावों का समादर करूँगा!

अन्त में मैं प्रस्तुत पुस्तक के लेखन एवं प्रकाशन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वालों के प्रति हृदय से आभारी हूँ। सर्वप्रथम मैं इस पुस्तक के पूर्व लिखी गई उन सभी पुस्तकों एवं लेखकों का आभारी हूँ जिनकी ज्ञानराशि का उपयोग करके प्रस्तुत पुस्तक लिखने में समर्थ हो सका।

मेरे अभिन्न मित्र एवं पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान के निदेशक डॉ० सागरमल जैन का विशेष ऋणी हूँ जिनके सहयोग से ही प्रस्तुत पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सका हूँ। संस्थान के मंत्री तथा जैन विद्या के अनन्य सेवक श्री भूपेन्द्र नाथ जैन का भी बहुत आभारी हूँ जिन्होंने ग्रंथ के प्रकाशन हेतु स्वीकृति प्रदान करके आवश्यक अर्थव्यवस्था की।

पूज्य आचार्य मुनि विद्यासागर जी एवं पूज्य जिनेन्द्रवर्णी जी के प्रति नतमस्तक हूँ जिनके आशीर्वाद से कार्य करने की क्षमता प्राप्त की। प्राकृत भाषा के मनीषीत्रय पूज्य गुरुवर्य पं० फूलचन्द जी, पं० दलसुख भाई मालवणिया जी एवं पं० जगन्मोहन लाल जी के प्रति भी नतमस्तक हूँ जिनसे प्राकृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। इसके उपरान्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय; संस्कृत विभाग के अध्यक्षद्वय प्रो० डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा तथा प्रो० डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्य का विशेष रूप से आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद का यह फल है। पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो०डॉ०धर्मेन्द्र कुमार गुप्त तथा डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी अध्यक्ष साहित्य विभाग, बी० एच० यू० के आवश्यक सुझावों के लिए बहुत आभारी हूँ।

अभिन्न मित्र डॉ० श्रीनारायण मिश्र (रीडर) का मैं अत्यधिक आभारी हूँ जिन्होंने समय-असमय उदारहृदय से मुझे सहयोग दिया। मैं अपने प्रिय शोध छात्र श्री रविशंकर मिश्र का भी आभारी हूँ जिसने प्रूफ संशोधन तथा लेखनकार्य में तत्परता के साथ सहयोग किया। लेखन कार्य में सहयोगिनी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती मनोरमा जैन को भी धन्यवाद देता हूँ। अन्त में मुद्रक (हिमालय प्रेस) परिवार के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिसने मेरे द्वारा प्रूफ के समय किये गये संशोधनों को सहर्ष स्वीकार किया।

मकर-संक्रान्ति, १९८३

सुदर्शन लाल जैन

विषय-सूची

प्रकाशकीय iv

प्रस्तावना vi

भाग १ : व्याकरण १-१३८

प्रथम अध्याय **वर्णमाला** १–३

द्वितीय अध्याय **ध्वनि परिवर्तन** ४–२२

[स्वर परिवर्तन ४, असंयुक्त व्यञ्जन परिवर्तन ८, संयुक्त व्यञ्जन परिवर्तन १४]

तृतीय अध्याय **लिङ्गानुशासन** २३–२५

चतुर्थ अध्याय **सन्धि** २६–३३

[स्वर सन्धि २६,अव्यय सन्धि ३०, व्यञ्जन सन्धि ३१]

पंचम अध्याय **कृत्-प्रत्यय** ३४–४२

[वर्तमानकालिक ३४, भूतकालिक ३६; भविष्यत्कालिक ३८, सम्बन्धसूचक ३८, हेत्वर्थक ४० विध्यर्थक ४०, शीलधर्मवाचक ४२]

षष्ठ अध्याय **तद्धित-प्रत्यय** ४३–४९

[अपत्यार्थक ४३, अतिशयार्थक ४३, मत्वर्थीय ४४, इदमार्थक ४५, भावार्थक ४६, भवार्थक ४७, सादृश्यार्थक ४७, आवृत्यर्थक ४७, विभक्त्यर्थक ४७, परिमाणार्थक ४८, कालार्थक ४८, स्वार्थिक ४९]

सप्तम अध्याय **स्त्री-प्रत्यय** ५०–५२

अष्टम अध्याय **अव्यय एवं उपसर्ग** ५३–६०

[अव्यय ५३, उपसर्ग ५८]

नवम अध्याय **कारक एवं विभक्ति** ६१–७२

[प्रथमा ६४; द्वितीया ६५, तृतीया ६७, चतुर्थी ६८, पञ्चमी ७०, षष्ठी ७१, सप्तमी ७२]

दशम अध्याय समास ७३–८२

[अव्ययीभाव ७५, तत्पुरुष ७६, कर्मधारय ७७; द्विगु ७८, बहुव्रीहि ७९, द्वन्द्व ८१]

एकादश अध्याय शब्दरूप ८३–१०३

[संज्ञा—पुं० पुरिस ८७; देव ८७, हरि ८९, अग्गि ८९, साहु ९०, वाउ ९०, पिउ ९१, राय ९१, अप्पाण ९२, स्त्री० वाला ९२; जुवइ ९३, नई ९३, धेणु ९४; बहू ९४, नपुं० फल ९४, वारि ९४, वत्थु ९६, सर्वनाम—सव्व ९६, त ९७, इम ९८; अमु ९८, अम्ह ९९; तुम्ह ९९, संख्यावाचक—संख्यायें १००, एग १०२, दो–दह १०३; वीसा १०३, कइ १०३, उभ १०३]

द्वादश अध्याय धातुरूप १०४–१०९

[अकारान्त अस १०४, हस १०७; आकारान्त पा १०८, एकारान्त ने १०९, ओकारान्त हो १०९]

त्रयोदश अध्याय प्रत्ययान्त धातुएँ ११०–११४

[कर्म-भाववाच्य क्रियायें ११०, प्रेरणार्थक १११, सन्नन्त ११२, यङन्त ११३; यङ्लुगन्त ११३, नामधातु ११३]

चतुर्दश अध्याय विविध प्राकृत भाषाएँ ११५–१३८

[महाराष्ट्री ११५, जैन महाराष्ट्री ११६; शौरसेनी (नाटकीय) ११८, जैन शौरसेनी १२१, मागधी १२३; अर्धमागधी (आर्ष) १२६, पैशाची १३०, चूलिका पैशाची १३३, अपभ्रंश १३४]

भाग २ : अनुवाद १३९-१७२

पाठ १ सामान्य वर्तमान काल १३९

पाठ २ सामान्य वर्तमान काल (विभक्तियों का सामान्य प्रयोग) १४१

पाठ ३ सामान्य वर्तमान काल (सर्वनाम, विशेषण एवं अव्ययों का प्रयोग) १४३
पाठ ४ सामान्य भूतकाल १४५
पाठ ५ सामान्य भविष्यत् काल १४७
पाठ ६ अपूर्ण वर्तमान-भूत-भविष्यत् काल १४८
पाठ ७ आज्ञा एवं विधि १४९
पाठ ८ विध्यर्थक वाक्य १५१
पाठ ९ पूर्वकालिक वाक्य १५२
पाठ १० निमित्तार्थक (हेत्वर्थक) वाक्य १५३
पाठ ११ प्रेरणात्मक वाक्य १५५
पाठ १२ वाच्य-परिवर्तन १५७
पाठ १३ 'जाते हुए' आदि वाक्य १५९
पाठ १४ 'पढ़ा हुआ', 'पढ़ा जाने वाला' आदि वाक्य १६१
पाठ १५ भूतकालिक वाक्य १६२
पाठ १६ क्रियातिपत्ति (हेतुहेतुमद्भावात्मक वाक्य) १६३
पाठ १७ कर्तृ, कर्म एवं करण कारक १६४
पाठ १८ सम्प्रदान एवं अपादान कारक १६७
पाठ १९ सम्बन्धार्थ एवं अधिकरण कारक १७०
पाठ २० तद्धित प्रत्ययान्त वाक्य १७१

भाग ३ : संकलन १७३-२५४

महाराष्ट्री प्राकृत :—

१. पाइअकव्वमाहत्तं १७३
२. सरअवण्णणं १७८
३. समुद्दवण्णणं १८०
४. संज्झावण्णणं १८४
५. सुहासियाइं १८७

जैन महाराष्ट्री :—

६. हणुओ जम्मकहा १९३
७. साहसिओ बालो २०५
८. कल्लाणमित्तो २१०
९. अमांगलिओ पुरिसो २१९

अर्धमागधी :—

१०. उवएसपया २२२
११. रोहिणिआ सुण्हा २२८

मागधी :—

१२. शुकिद-दुक्किदश्श पलिणामे २४५

शौरसेनी :—

१३. सव्वं सोहणीयं सुरूवं णाम २४९

जैन शौरसेनी :—

१४. णत्थि सदो विणासो २५३

पैशाची :—

१५. मुक्खपतं को लभेय्य ? २५४

चूलिका पैशाची :—

१६. धञ्ञो योगी २५६

अपभ्रंश :—

१७. सिक्खा वयणाइं २५७
परिशिष्ट २५९–२७२
प्रथम परिशिष्ट : शब्दकोश २५९-२६७
[वस्त्राभूषण २५९, वृत्तिजीवी २५९, सम्बन्धी २६०, पुष्प, सुगन्धित द्रव्य और औषधियाँ २६१, अस्त्र २६१, पशु-पक्षी २६१, सरीसृप और कीड़े-मकोड़े २६२, शरीर के अङ्ग २६३, तरकारी २६३, फल एवं मेवा २६४, अनाज एवं मसाला २६४, वृक्ष २६५, भोज्य पदार्थ २६५, विविध २६६–२६७]
द्वितीय परिशिष्ट : धातुकोश २६८–२७२

—:०:—

भाग १ : व्याकरण

प्रथम अध्याय : वर्णमाला

(क) स्वर वर्ण (सभी घोष वर्ण) :

	कण्ठ्य	तालव्य	ओष्ठ्य	कण्ठ्य-तालव्य	कण्ठ्य ओष्ठ्य
ह्रस्व स्वर—	अ	इ	उ	[ऍ]	[ऑ]
दीर्घ स्वर—	आ	ई	ऊ	ए	ओ

(ख) व्यञ्जन वर्ण :

स्पर्श —

उच्चारण स्थल	वर्ग	अघोष		घोष		नासिक्य
		अल्पप्राण १	महाप्राण २	अल्पप्राण ३	महाप्राण ४	अल्पप्राण ५
१. कण्ठ्य	क वर्ग	क्	ख्	ग्	घ्	[ङ्]
२. तालव्य	च वर्ग	च्	छ्	ज्	झ्	[ञ्]
३. मूर्धन्य	ट वर्ग	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
४. दन्त्य	त वर्ग	त्	थ्	द्	ध्	[न्]
५. ओष्ठ्य	प वर्ग	प	फ्	ब्	भ्	म्

अन्तःस्थ (अर्धस्वर)—

तालव्य	मूर्धन्य	दन्त्य	दन्त-ओष्ठ्य
[य्]	र्	ल्	व्

—सभी घोष एवं अल्पप्राण

ऊष्म—

दन्त्य	कण्ठ्य
स्	ह्

—दोनों महाप्राण, 'स' अघोष एवं 'ह' घोष

अनुस्वार – ं }
अनुनासिक– ँ } नासिक्य एवं घोष

[**विशेष विचार—**

१. स्वर—

(क) प्राकृत में 'ऋ, ॠ, ऌ, ऐ, औ' इन पाँच स्वर-वर्णों का सर्वथा अभाव है। 'अयौ वैत' हे० ८·१·१६९ से 'अयि' अव्यय को 'ऐ' विशेष प्रयोग हुआ है।

(ख) 'एॅ' और 'ओॅ' ये ह्रस्व स्वर संयुक्त व्यञ्जनों के पूर्व होते हैं। जैसे—एॅक्क, तेॅल्ल, सोॅत्त, तोॅत्त, खेॅत्त, जोॅव्वण, पेॅम्म, ओॅट्ट आदि। परन्तु व्यवहार में ह्रस्व स्वर बोधक चिह्न ॅ का प्रयोग सर्वत्र नहीं मिलता है। भाषा-वैज्ञानिकों के द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में ही ऐसे चिह्न का प्रयोग मिलता है।

(ग) प्लुत स्वर नहीं होता है।

२. व्यञ्जन—

(क) 'ङ्' और 'ञ्' इनका प्रयोग सरल व्यञ्जन (असंयुक्त व्यञ्जन या स्वरयुक्त व्यञ्जन) के रूप में प्रायः नहीं होता है। इनका प्रयोग स्ववर्गीय वर्णों के साथ संयुक्तरूप में ही कहीं-कहीं देखा जाता है। जैसे—ङ्क, ङ्ख, ञ्च, ञ्छ आदि। अन्यथा प्रायः सर्वत्र अनुस्वार हो जाता है।

(ख) 'न्' प्रायः सर्वत्र 'ण्' में बदल जाता है। हेमचन्द्राचार्य के अनुसार शब्द के आदि में स्थित 'न्' का 'ण्' विकल्प से होता है। जैसे—णरो, नरो (नरः); णई, नई (नदी)। वस्तुतः 'न्' के प्रायः निम्न परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं—

(१) न् > ण् में परिवर्तन।

(२) अनुस्वार।

(३) समानवर्गीय वर्णों के साथ 'न्' की यथास्थिति।

(ग) सामान्य प्राकृत में वस्तुतः [कुछ विशेष प्राकृत प्रयोगों को छोड़कर] मूल 'य्' का अभाव है। क्योंकि वह सामान्य रूप से 'ज्' हो जाता है। सामान्य प्राकृत के प्रयोग स्थलों में जो 'य्' दृष्टिगोचर होता है वह प्रायः 'य' श्रुति है अर्थात् क्, ग् आदि व्यञ्जन वर्णों के लोप होने पर यदि वहाँ 'अ' अथवा 'आ' शेष

रहता है [कुछ विशेष स्थलों पर 'इ' शेष रहने पर भी] तो लुप्त व्यञ्जन के स्थान पर लघु ध्वनि से उच्चारित 'य्' विकल्प से होता है। इसे ही 'य' श्रुति कहते हैं। मागधी आदि प्राकृतों में स्थिति कुछ भिन्न है।

(घ) श्, ष् तथा विसर्ग का प्रयोग नहीं होता है। 'श्' और 'ष्' सर्वदा [मागधी प्राकृत में ष्, स् > श् में परिवर्तित होते हैं। जैसे—पुरुषः = पुलिशे, हंसः = हंशे] 'स्' में तथा विसर्ग 'ओ' अथवा 'ए' में परिवर्तित होते हैं। जैसे—यशः = जसो, मनुष्यः = मणुस्सो, सः=से।

(ङ) संयुक्तावस्था को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी व्यञ्जन वर्ण स्वरहीन (हलन्त) प्रयुक्त नहीं होता है। किञ्च, प्रायः समानवर्गीय या समान आकार के व्यञ्जन ही संयुक्त रूप में प्रयुक्त होते हैं, अन्यवर्गीय वर्णों के साथ नहीं। जैसे—सव्व=सर्व, कल्लाण = कल्याण, चक्क = चक्र, पुप्फ = पुष्प।

(च) अनुस्वार (ं) और अनुनासिक (ँ) में निश्चित भेद परिलक्षित नहीं होता है। डा० आर० पिशल के अनुसार—'जहाँ अनुस्वार का पता लग जाता है कि यह 'न्' या 'म्' से निकला है तो उस शब्द में मैं अनुस्वार मानता हूँ; अन्यथा नियमितरूप से अनुनासिक मानता हूँ।']

द्वितीय अध्याय : ध्वनि-परिवर्तन

(स्वर-व्यञ्जन परिवर्तन)

संस्कृत-शब्दराशि में ध्वनि-परिवर्तन (वर्ण-विकृति) के आधार पर प्राकृत-शब्दराशि का निर्वचन किया जाता है। इस सन्दर्भ में प्राकृत-वैयाकरणों ने जो नियम बनाये हैं उनमें से अधिकांश वैकल्पिक हैं क्योंकि प्राकृत में अनियमित (वैकल्पिक) शब्द-प्रयोगों की बहुलता पाई जाती है। इन ध्वनि-परिवर्तनों का कारण है--उच्चारण-सौकर्य। प्राकृत की शब्दराशि को निम्न तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) तत्सम—जो संस्कृत के शब्द ज्यों के त्यों प्राकृत में स्वीकार किए गए हैं। जैसे—देव, राम आदि।

(२) तद्भव--जो संस्कृत से वर्ण-विकृति द्वारा निष्पन्न होते हैं। जैसे—सागर=सायर, शाखा=साहा आदि।

(३) देशज--जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत से सिद्ध नहीं होती है। जैसे—डाल (शाखा), लडह (रम्य) आदि।

इस अध्याय में प्रायः तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति से सम्बन्धित कुछ सामान्य नियमों को समझाया गया है जिससे प्राकृत-शब्दराशि में प्रवेश संभव हो सके। सुबोधता की दृष्टि से इस अध्याय को तीन उपभागों में विभक्त किया गया है—(१) स्वर-परिवर्तन, (२) असंयुक्त व्यञ्जन-परिवर्तन और (३) संयुक्त व्यञ्जन-परिवर्तन।

(क) स्वर-परिवर्तन :

(१) 'ऋ' और 'ॠ' के स्थान पर अ, इ; उ; रि और ए आदेश यथावसर होते हैं। जैसे—

ऋ > अ[1]—तृणम् = तणं। नृत्यम् = णच्चं। मृगः = मओ। घृतम् = घअं। कृतम् = कअं। वृद्धिः = वड्ढी। वृषभः = वसभो।

ऋ > इ[2]—कृपा = किवा। दृष्टम् = दिट्ठं। सृष्टिः = सिट्ठी। शृङ्गारः = सिंगारो। शृगालः = सिगालो। नृपः = निवो। ऋषिः = इसी। वृद्धिः = विड्ढी। मृगः = मिओ। तृणम् = तिणं। मातृ = माइ। समृद्धिः = सामिद्धी।

ऋ > उ[3]—ऋतुः = उदू, उउ। प्रवृत्तिः = पउत्ति। ऋजुः = उजू। मातृ = माऊ, मादु। पृथिवी = पुहुवी। पृच्छति = पुच्छइ। वृद्धः = वुड्ढो। मृणालः = मुणालो। कर्तॄणाम् = कत्तूण, कत्ताराणं।

ऋ > रि[4]—ऋद्धिः = रिद्धी। ऋणम् = रिणं। ऋजुः = रिज्जू, उज्जू। ऋतुः = रिऊ, उदू। ऋषिः = रिसी, इसी। सदृशः = सरिसो।

ऋ > ए[5]—गृहम् = गेहं। गृह्यते = गेज्झइ। वृन्त = वेंट (विण्ट, वोण्ट)।

(२) 'लृ' के स्थान पर 'इलि'[6] आदेश होता है। जैसे—क्लृप्त = किलित्त। क्लृन्न = किलिण्ण।

(३) 'ऐ' के स्थान पर 'ए' और 'अइ' आदेश होते हैं। जैसे—

'ऐ > ए'[7]—शैलः = सेलो। वैद्यः = वेज्जो। कैलासः = केलासो। वैधव्यम् = वेहव्वं। त्रैलोक्यम् = तेलोक्कं, तेलुक्कं। नैमित्तिकम् = नेमित्तिअं।

ऐ > अइ[8]—दैत्यम् = दइच्चं। दैन्यम् = दइण्णं। भैरवः = भइरवो।

---

१. ऋतोत् (आदेर्ऋकारस्य अत्वं भवति)। हे० ८. १. १२६.

२. इत्कृपादौ (कृपा इत्यादिषु शब्देषु आदेर्ऋत इत्वं भवति)। हे० ८. १.. १२८.

३. उदृत्वादौ (ऋतु इत्यादिषु शब्देषु आदेर्ऋत उद्भवति)। हे० ८. १. १३१.

४. रिः केवलस्य। हे० ८. १. १४०.

५. इदेदोद्वृन्ते। हे० ८. १. १३९.

६. लृत इलिः क्लृप्त-क्लृन्ने। हे० ८.१.१४५.

७. ऐत एत्। हे० ८.१.१४८.

८. अइर्दैत्यादौ च। वैरादौ वा। हे० ८.१.१५१-१५२.

दैवतम् = दइवअं । वैरम् = वइरं, वेरं । दैवः = दइवो । कैलासः = कइलासो, केलासो । वैदर्भः = वइअब्भो ।

(४) 'औ' के स्थान पर 'ओ', 'उ' और 'अउ' आदेश होते हैं । जैसे—

औ > ओ[1]—कौमुदी = कोमुई । यौवनम् = जोव्वणं । सौभाग्यम् = सोहग्गं । कौशिकः = कोसिओ । कौशाम्वी = कोसंबी । पौराणिकम् = पोराणिअं ।

औ > उ[2]—सौन्दर्यम् = सुन्देरं, सुंदरिअं । दौवारिकः = दुवारिओ । सौवर्णिकः = सुवण्णिओ । पौलोमी = पुलोमी ।

औ > अउ[3]—पौरः = पउरो । कौरवः = कउरवो । मौलिः = मउली । मौनम् = मउणं । पौरुषम् = पउरिसं । सौधम् = सउहं ।

(५) **दीर्घ स्वरों का ह्रस्वीकरण**[4]—दीर्घ स्वर के वाद यदि संयुक्त वर्ण हो तो दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया जाता है । जैसे—

आ > अ—आम्र = अम्व । ताम्र = तम्व । आचार्यः = आचरिओ । मार्गः = मग्गो । वार्ता = वत्ता । पाण्डवो = पंडवो । कांस्यम् = कंसं ।

ई > इ—तीर्थ = तित्थ । मुनीन्द्रः = मुणिंदो । जीर्णम् = जिण्णं, जुण्णं ।

ऊ > उ—चूर्णः = चुण्णो । कण्डूयते = कंडुअइ ।

ए > इ, ऍ—नरेन्द्रः = णरिंदो । क्षेत्रम् = खेॅत्तं । मिलेच्छः = मिलिच्छो ।

ओ > उ, ओॅ—नीलोत्पलम् = नीलुप्पलं । ओष्ठम् = ओॅट्ठं ।

[अन्यत्र भी ह्रस्वीकरण पाया जाता है । जैसे—तदानीम् = तयाणि । द्वितीयम् = दुइअं । गभीरम् = गहिरं । मांसम् = मंसं । यथा = जह । कुमारः = कुमरो । पांसु = पंसु । हनूमान् = हणुमंतो । कुतूहलम् = कोउहलं, कोऊहलं ।]

---

१. औत ओत । हे० ८.१.१५९.

२. उत् सौन्दर्यादौ । हे० ८.१.१६०.

३. अउः पौरादौ च । हे० ८.१.१६२.

४. ह्रस्वः संयोगे । हे० ८.१.८४.

(६) **ह्रस्व स्वरों का दीर्घीकरण**[1]--'श', 'ष्' और 'स्' के आगे अथवा पीछे यदि य् र् व् श् ष् और स् वर्ण किसी वर्ण (श्, ष् और स्) के साथ संयुक्त रूप में आते हैं तो प्राय: विकल्प से (द्वित्वाभाव पक्ष में) श्, ष् और स् के पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है [तथा य् र् व् आदि का लोप भी होता है ।] जैसे--

अ > आ--काश्यप: = कासवो, कस्सवो । पश्यति = पासइ, पस्सइ । स्पर्श: = फासो । अश्व: = आसो, अस्सो । वर्ष: = वासो ।

इ > ई--विश्राम: = वीसामो, विस्सामो । निस्सहम् = नीसहं, निस्सहं । निषिक्त: = नीसित्तो । विश्वास: = वीसासो । निस्सरति = नीसरइ, निस्सरइ ।

उ > ऊ--दुश्शासन: = दूसासणो, दुस्सासणो । दुस्सह: = दूसहो, दुस्सहो । पुष्य: = पूसो । मनुष्य: = मणूसो ।

[अन्यत्र भी दीर्घीकरण देखा जाता है । जैसे--प्रतिसिद्धि: = पाडिसिद्धी, पडिसिद्धी । प्रवचनम् = पावयणं, पवयणं । प्रसिद्धि: = पासिद्धी, पसिद्धी । परकीयम् = पारकेरं, परकेरं । सिंह: = सीहो । विंशति = वीसा । जिह्वा = जीहा । मुसलम् = मूसलं, मुसलं । सुभग: = सूहवो, सुहवो । उत्सव:=ऊसवो । उच्छ्वास: = ऊसासो । समृद्धि: = सामिद्धी । भृकुटि: = भिउडी ।]

(७) **स्वर-भक्ति**—प्राकृत में समानवर्गीय संयुक्त व्यञ्जनों का प्रयोग होने से कभी-कभी विभिन्नवर्गीय संयुक्त व्यञ्जनों को प्राकृत में बदलते समय जब व्यञ्जन वर्ण को किसी स्वर (अ, इ, ई, और उ) से विभक्त करके स्वरयुक्त व्यञ्जन बना दिया जाता है तो उसे 'स्वरभक्ति' कहते हैं। यह स्वरभक्ति प्राय: तब देखी जाती है जब संयुक्त व्यञ्जनों में से एक व्यञ्जन अन्त:स्थ या अनुनासिक हो । जैसे--रत्नम् = रयणं । अग्नि: = अगणी । स्नेह: = सणेहो । क्षमा = छमा, खमा । गर्हा=गरिहा, गरहा । आचार्य:=आयरियो । क्रिया=किरिया । स्वप्न: = सिविणो । श्लोक: = सिलोओ । भार्या=भारिआ । हर्ष: = हरिसो । कृष्ण=कसण । पद्म = पउम । छद्म = छउम । वर्षशतम् = वरिससयं । ज्या = जीआ । पृथिवी = पुहुवी । तन्वी = तणुई । श्व: = सुवे । स्यात् = सिया । वर्ष = वरिस ।

---

[1] लुप्त य र व श ष सां श ष सां दीर्घ: । हे० ८. १. ४३.

(८) स्वर लोप—अपि = पि, वि। तथापि = तहवि। इति=ति, त्ति। किमिति=किं ति। तथैति = तह त्ति। इव = व, व्व। पततीव = पडइव्व। गृहमिव=गेहं व। अरण्यम् = रण्णं। असि = म्हि। अस्मि = सि। अलाबुम् = लाउं। अहम् = हं। उदकम् = दगं।

(९) **सम्प्रसारण**–कभी-कभी अर्धस्वर य् और व् का सम्प्रसारण होने से उन्हें क्रमशः इ और उ हो जाता है। जैसे—व्यतिक्रान्तम् = वीइक्कंतं। चोरयति = चोरेइ (अ+य = ए)। कथयति = कहेइ। त्वरितम् = तुरियं। अवतीर्णः = ओइण्णो (अ+व = अ+उ = ओ)। लवणम् = लोणं।

(ख) असंयुक्त व्यञ्जन-परिवर्तन :

(१०) श्, ष् > स्[1]—'श्' और 'ष्' को प्रायः सर्वत्र 'स्' में बदल दिया जाता है [मागधी प्राकृत को छोड़कर]। जैसे—कषायः=कसाओ। पुरुषः= पुरिसो। शब्दः=सद्दो। ऋषिः=इसी। शीकरः = सीहरो। कुशः = कुसो। शुद्धम् = सुद्धं। रसना = रसणा। भूषणम् = भूसणं।

[विशेष नियम—

कहीं-कहीं निम्न परिवर्तन भी होते हैं। जैसे—

श् > छ्—शमी = छमी। शिरा = छिरा।
श् > ह्—दशमुखः = दहमुहो। द्वादश = बारह। दशरथः = दहरहो।
ष् > ण्ह्—स्नुषा—सुण्हा।
स् > छ्—सप्तपर्णः = छत्तपण्णो। सुधा = छुहा।
स् > ह—दिवसः = दिवहो। पाषाण > पासाण = पाहाण।]

११, न् > ण्—[2]'न्' को प्रायः 'ण्' में बदल दिया जाता है। जैसे—नरः = णरो। वचनम् = वयणं। नयनम् = णयणं। नदी = णई।

[विशेष विचार—

१. हेमचन्द्राचार्य के मतानुसार आदि 'न्' का 'ण्' विकल्प से

---

[1] शषोः सः। हे० ८. १. २६०.

[2] नो णः सर्वत्र। वर० २. ४२.

होता है ।[1] जैसे--नाथः = नाहो, णाहो । नटः = नडो, णडो । नाम = णाम, नाम । नगरम् = णअरं, नयरं । नरः = णरो, नरो ।

२. तवर्गीय (स्ववर्गीय) वर्णों के साथ संयुक्त रहने पर विकल्प से 'न्' का प्रयोग होता है । टवर्गीय वर्णों के साथ संयुक्त रहने पर विकल्प से 'ण्' का प्रयोग होता है । विकल्पभाव में अनुस्वार होता है । ग्रन्थिम् = गण्ठि, गंठि । स्फुरन्ति = फुरन्ति, फुरंति । सन्तिष्ठते = संठाइ, सण्ठाइ ।

३. 'ण्हाविओ' (स्नापितः) और 'लिंबो' (निम्बः) में क्रमशः 'न्' को 'ण्ह' और 'ल्' हुआ है ।]

(१२) पदान्त वर्ण--

प्राकृत में पदान्त व्यञ्जन वर्ण नहीं होते । पदान्त 'म्' को सर्वत्र अनुस्वार हो जाता है । जैसे--उत्पलम् = उप्पलं । नयनम् = णयणं ।

[अन्य पदान्त व्यञ्जन वर्णों का या तो लोप हो जाता है या उसे स्वरयुक्त कर दिया जाता है ।[2] कहीं-कहीं उसे मकार में परिवर्तित करके अनुस्वार भी कर दिया जाता है ।[3] जैसे—(क) **लोप**--देवात् = देवा । पश्चात्-पच्छा । तावत् = ताव । मनस् = मण । जगत् = जग । पुनर् = पुणो । (ख) **स्वरागम**--शरद् = सरओ । दिश् = दिशा । वणिज् = वणिअ । सरित् = सरिआ । (ग) **अनुस्वार**—साक्षात् = सक्खं । भगवान् = भगवं । यत् = जं ।]

(१३) आदिवर्ण—

'य् > ज्'—[4] आदि 'य्' को 'ज्' होता है । जैसे—यशः = जसो । यमः = जमो । यज्ञः = जग्गो । युग्मम् = जुग्गं । याति = जाइ । यथा = जहा । योगः = जोगो ।

[विशेष विचार—

कहीं-कहीं 'य' के निम्न परिवर्तन भी होते हैं। जैसे—

य् > लोप—दो स्वरों के मध्यवर्ती होने पर । देखिए नियम १४, अन्यत्र श्यामा = सामा ।

---

[1] नो णः । वादौ । हे० ८. १. १२८, २२९.

[2] अन्त्यव्यञ्जनस्य । स्त्रियामादविद्युतः । शरदादेरत् । हे० ८. १.११,१५,१८.

[3] बहुलाधिकाराद् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः । हे० वृत्ति ८.१. २४.

[4] आदेर्यो जः । हे० ८. १. २४५.

य् > ज्ज्[1]—उत्तरीयम् = उत्तरिज्जं । तृतीयः = तइज्जो ।
य् > त्[2]—युष्मदीयः=तुम्हकेरो । युष्मद् = तुम्ह ।
य् > ल्[3]—यष्टि=लट्ठी ।
य् > व्, ह्[4]—कतिपयम्=कइअवं । छाया = छाही । सच्छायम्=सच्छाहं ।
य् > इ् (सम्प्रसारण)—प्रत्यनीकम् = पडिणीयं ।]

(१४) **मध्यवर्ती वर्ण**—

(स्वर-मध्यवर्ती) क् ग् च् ज् त् द् प् य् व् > लोप[5]—स्वरों के मध्यवर्ती क्, ग् आदि अल्पप्राण वर्णों का प्रायः लोप हो जाता है। दूसरे शब्दों में अर्थात् टवर्ग को छोड़कर अन्य मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यञ्जनों का लोप हो जाता है। इन व्यञ्जनों के लोप होने पर यदि वहाँ 'अ' या 'आ' शेष रहे तो लुप्त व्यञ्जन के स्थान पर 'य' श्रुति (मूल 'य' न होकर लुप्त व्यञ्जन का स्थानापन्न लघु प्रयत्नोच्चारित ध्वनि) विकल्प से कहीं-कहीं होती है। जैसे—तीर्थङ्करः = तित्थयरो। लोकः = लोओ। नगरम् = णयरं, णअरं। सागरः = सायरो; साअरो। रोचते = रोअइ। शची = सई। वचनम् = वयणं, वअणं। रति = रई। माता = माया। अतीत = अईअ। राजा = राया। भुजा = भुआ। प्रजा=पया। रजनी = रअणी। आदेशः=आएसो। प्रदोषः=पओसो। दिशापालः=दिसायालो। गजः = गओ। प्रजापतिः = पआवई। लता = लया, लआ। रसातलम्=रसाअलं। रत्नम् = रयणं, रअणं। यदि = जइ। मदनः = मयणो, मअणो। कपिः = कइ। विपुलम् = विउलं। नयनम्=णयणं, णअणं। वायुना = वाउणा। दिवसः=दिअहो। प्रयोजनम् = पओजणं। मयूरः = मऊरो। कायः = काओ। भुवनम् = भुअणं। लावण्यम् = लावण्णं। सकलः = सअलो। शकुन = सउण। अटवी = अडई। अनुरागः = अणुराओ। प्रचुरः = पउरो। विचारः = वियारो।

---

[1] वोत्तरीयानीय-तीयकृद्ये ज्ज। हे० ८.१.२४८.

[2] युष्मद्यर्थपरे तः। ८.१.२४७.

[3] यष्ट्यां लः। हे० ८.१.२४७.

[4] छायायां हो कान्तौ वा। हे० ८·१·२४९.

[5] क ग च ज त द प य वां प्रायो लुक्। अवर्णो यश्रुतिः। हे० ८·१·१७७,१८०.

[**विशेष विचार—**

१. कुछ विद्वानों के मत से 'क्' के स्थान पर 'ग्' होता है परन्तु यह जैन शौरसेनी की विशेषता है । जैसे--एक: = एगो । आकार: = आगारो ।

२. 'अ' के बाद आने वाले 'प्' को 'व्' होता है । यदि वह शब्द के प्रारम्भ में न हो ।[1] जैसे--कपिल:=कविलो उपाय:=उवायो । उपहास: = उवहासो । पापम् = पावं । कपोल: = कवोलो । रूप=रूव । अन्यत्र--सर्प: = सप्पो । ('अ' के बाद नहीं है) । पति=पई (शब्दारम्भ में है) ।

३. 'आपीड' और 'नीप्' शब्द के 'प्' का विकल्प से 'म्' होता है ।[2] जैसे--आपीड: = आमेलो (आवेडो) । नीप:-नीमो (नीवो) ।

४. प्रति उपसर्ग के 'त्' का प्राय: 'ड्' होता है ।[3] जैसे--प्रतिपन्नम्= पडिवण्णं । प्रतिहार:=पडिहारो । प्रतिसिद्धि: = पडिसिद्धि । प्रतिमा = पडिमा । प्रतिपत् = पडिवया । प्रभृति = पहुडि । प्राभृतम् = पाहुडं । पताका = पडाया ।

५. शौरसेनी प्राकृत में अनादि असंयुक्त 'त्' का 'द्' होता है ।[4] जैसे— ऋतु: = उदू । रजतम् = रअदं । आगत: = आअदो, आअओ । संयत:=संजदो । प्रतिपत्ति = पडिवद्दी । लता = लदा ।]

(१५) स्वरों के मध्यवर्ती (असंयुक्त एवं अनादि) वर्णों को निम्न आदेश होते हैं—

(क) ख्, घ्, थ्, ध्, फ्, भ्. > ह्[5]— वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ वर्णों में 'ह्' ध्वनि रहती है (जैसे--ख् = Kh = क् + ह्; घ् = Gh = ग् + ह् आदि) । इनमें से टवर्गीय 'ठ्, ढ्' तथा चवर्गीय 'छ्, झ्' को छोड़कर शेष मध्यवर्ती महाप्राण व्यञ्जन वर्णों में मात्र 'ह्' ध्वनि शेष रहती है । जैसे—मुखम् = मुहं । मयूख = मऊह । मेखला = मेहला । सखी=सही । शाखा=साहा । लेख:=लेहो । मुखर:=

---

[1] पो व: । हे० ८.१.२३१. नावर्णात्प: । हे० ८·१·१७९.

[2] नीपापीडे मो वा । हे० ८. १. २३४.

[3] प्रत्यादौ ड: । हे० ८. १. २०६.

[4] तो दोऽनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य । हे० ८. ४. २६०.

[5] ख-घ-थ-ध-भाम् । फो भहौ । हे० ८.१.१८७, २३६.

मुहरो। जघन = जहण। मेघः = मेहो। लघुः = लहू। नाथः = णाहो। गाथा = गाहा। कथम् = कहं। कथा = कहा। रथः = रहो। साधुः = साहू। वधिरः = वहिरो। अधरः = अहरो। मधु = महु। प्रधान=पहाण। राधा=राहा। मुक्ताफलम्=मुत्ताहलं। सफलम् = सहलं। सभा=सहा। स्वभावः = सहावो। नभः= णहं। प्रभातः = पहायो। आभरणम् = आहरणं।

[विशेष--'फ्' का 'भ्' भी होता है। जैसे--सफलम् = सभलं। रेफः = रेभो।]

(ख) ट्, ठ्, ड् > (क्रमशः) ड्, ढ्, ल्[1]— टवर्गीय 'ट्, ठ्, ड्' को क्रमशः 'ड्, ढ्, ल्' आदेश होते हैं। जैसे—चेटी=चेडी। नटः = नडो। घटः = घडो। कुटिलः=कुडिलो। छटा = छडा। विटपः = विडवो। मठः = मढो। शठः=सढो। कठोर = कढोर। कठिनम् = कढिणं। कमठः = कमढो। कुठारः = कुढारो। गरुडः=गरुलो। तडागो = तलायो। क्रीडा = कीला। व्रीडा = वीला।

[विशेष—१. सटा, शकट और कैटभ में 'ट्' को 'ढ्' होता है।[2] जैसे—सटा = सढा। शकटः=सयढो। कैटभः = केढवो।[3]

२. स्फटिक के 'ट्' को 'ल्' होता है।[4] जैसे—स्फटिकः = फलिहो।]

(ग) ब > व[5] (विकल्प से)--अलाबू = अलावू, अलाऊ। सबलः=सवलो। शिबिका=सिविया।

[विशेष--कबन्ध शब्द के 'व्' को 'म्' या 'य्' होता है।[6] जैसे-कबन्धः= कमंधो, कयंधो।]

---

[1] टो डः। ठो ढः। डो लः। हे० ८. १. १९५, १९९, २०२.

[2] सटा-शकट-कैटभे ढः। हे० ८ १. १९६.

[3] कैटभे भो वः। हे० ८. १. २४०.

[4] स्फटिके लः। हे० ८. १. १९७.

[5] बो वः। हे० ८.१. २३७.

[6] कबन्धे मयौ। हे० ८. १. २३९.

(१६) र् > ल्[1]—हरिद्रादि गण के शब्दों में असंयुक्त 'र्' का 'ल्' होता है। जैसे—हरिद्रा = हलिद्दी। दरिद्रः = दलिद्दो। दारिद्र्यम् = दालिद्दं। युधिष्ठिरः = जुहिट्ठिलो। चरणः = चलणो। मुखरः = मुहलो वरुणः = वलुणो। करुणः = कलुणो। अङ्गारः = इंगालो। सत्कारः = सक्कालो। सुकुमारः = सोमालो। किरातः = चिलाओ ('किराते चः' हे० ८.१.१८३ से 'क्' को 'च्')। परिखा = फलिहा। परिघः = फलिहो। भ्रमरः = भसलो। निष्ठुरः = निट्ठुलो।

(१७) विशिष्ट शब्दों के कुछ परिवर्तन निम्न हैं—

म् > ढ्[2]—विषमः = विसमो, विसढो।
म् > व्[3]—मन्मथः = वम्महो। अभिमन्युः = अहिमन्नू, अहिवन्नू।
म् > स्[4]—भ्रमरः = भसलो, भमरो।
ल् > र्[5]—स्थूलम् = थोरं।
ल् > ण्[6]—लाङ्गूलम् = णांगूलं, ललाटम् = णडालं (वर्ण विपर्यय भी)।
व् > म्[7]—स्वप्नः = सिमिणो, सिविणो। नीवी = नीमी; नीवी।
ह् > घ्[8]—सिंहः = सिंघो, सीहो। दाहः = दाघो। संहारः = संघारो।
त > ह[9]—भरतः = भरहो। वितस्तिः = विहत्थी। कातरः = काहलो।

(१८) अनेक शब्दों में स्वर सहित व्यञ्जन वर्णों का लोप भी देखा जाता है। जैसे—हृदयम् = हिअं। स्थविरः = थेरो। यावत् = जा। चतुर्दश = चोद्दह।

---

१. हरिद्रादौ लः। हे० ८. १. २५४.
२. विषमे मो ढो वा। हे० ८. १.२४१.
३. मन्मथे वः। हे० ८.१.२४२. तथा हे०८. १.२४३.
४. भ्रमरे सो वा। हे० ८.१.२४४.
५. स्थूले लो रः। हे० ८.१.२५५.
६. हे० ८. १. २५६-२५७.
७. हे० ८. १.२५९.
८. हे० ८. १. २६४.
९. हे० ८. १. २१४.

कालायस = कालास । राजकुलम् = राउलं । त्रयोदश = तेरह । उदुम्बरः = उम्बरो । भाजनम् = भाणं । शिविका = सीया ।

(१९) द्वित्वीकरण—तैलम् = तेल्लं । प्रेम = पेम्म । एक = एक्क । निहितम् = निहित्तं । परवशः = परव्वसो ।

(२०) वर्ण-व्यत्यय—वाराणसी = वाणारसी । आश्चर्यम् = अच्छेरं । महाराष्ट्र = मरहट्ठ । दीर्घम् = दीहरं ।

(ग) संयुक्त-व्यञ्जन परिवर्तन :

[प्राकृत में भिन्नवर्गीय (अलग-अलग वर्ग के व्यञ्जन वर्ण एक साथ नहीं रहते[1] तथा दो से अधिक व्यञ्जन संयुक्त रूप में प्रयुक्त नहीं होते हैं (जैसे—मन्त्र = मन्त । रन्ध्र = रन्ध । शस्त्र = सत्थ । ज्योत्स्ना = जोण्हा । सत्त्व = सत्त । सामर्थ्य = सामत्थ) । अतः उनमें या तो 'समानीकरण' किया जाता है या फिर 'स्वरभक्ति' । 'स्वरभक्ति' को स्वर-परिवर्तन में स्पष्ट किया गया है । यहाँ समानीकरण (समीकरण) को स्पष्ट किया जायेगा ।]

(२१) **आदि संयुक्त व्यञ्जन**—प्राकृत में शब्द के प्रारम्भ में प्रायः संयुक्त व्यञ्जन नहीं आते हैं । संस्कृत में प्रयुक्त आदि संयुक्त व्यञ्जन का अग्रिम नियम नं० २२ (छ) के अनुसार या तो (बलाबल के अनुसार) लोप हो जाता है (जैसे—स्नेहः = णेहो । स्वभावः = सहावो । ग्रामः = गामो । न्यायः = णायो । व्यतिकर = वइयर । स्थगित = थइअ ।) या स्वरागम हो जाता है (जैसे—स्नेहः = सणेहो । ग्लान = गिलाण । स्मरण = सुमरण । द्वार = दुवार । श्री = सिरी । स्निग्ध = सिणिद्ध । स्त्री = इत्थी ।)

---

[1] 'प्राकृते भिन्नवर्गीयानां वर्णानां संयोगो न भवति' ।

(क) प्राकृत में 'ह' के साथ अपवाद स्वरूप भिन्नवर्गीय व्यञ्जन वर्ण भी पाये जाते हैं (ण्ह; म्ह; ल्ह) जैसे—उष्णः = उण्हो । ग्रीष्मः = गिम्हो । प्रह्लादः = पल्हाओ ।

(ख) 'द्र' (ह्रदः = द्रहो) और च्म (रुक्मी = रुच्मी) भी अपवादस्थल हैं ।

[अपवाद स्वरूप ण्ह (स्नान = ण्हाण । स्नुषा = ण्हुसा । स्नायु = ण्हाउ), न्ह (स्नपन = न्हवण), म्ह (अस्मि = म्हि । स्मः = म्हः); ल्ह (लशुन = ल्हसुण । स्रस्त = ल्हसिअ), द्रहो (ह्लदः) तथा व्रंद (वृन्द) पाये जाते हैं। समास-स्थल में भी द्वितीय पद का प्रारम्भिक वर्ण विकल्प से संयुक्त पाया जाता है। जैसे—नदीग्रामः = नइग्गामो, नइगामो। देवस्तुतिः = देवत्थुई, देवथुई।]

(२२) मध्यवर्ती संयुक्त व्यञ्जन—

(क) यदि समान बलवाले हों तो प्रायः पूर्ववर्ती वर्ण का लोप करके परवर्ती वर्ण का द्वित्व कर दिया जाता है। यदि आदि-वर्ण संयुक्त होगा तो वहाँ द्वित्व नहीं होगा। जैसे—शब्दः = सद्दो। स्वरः = सरो।

(ख) यदि असमान बल वाले वर्ण हों तो प्रायः कम बल वाले का लोप करकें अन्य वर्ण को द्वित्व कर दिया जाता है। जैसे—अन्वेषणम् = अण्णेसणं। समग्रम् = समग्गं।

(ग) द्वित्व होने के बाद पूर्ववर्ती वर्ण यदि महाप्राण (वर्ग का द्वितीय या चतुर्थ वर्ण) हो तो उसे क्रमशः प्रथम एवं तृतीय वर्ण (हकार-रहित वर्ण) में (अल्पप्राण में) परिवर्तित कर दिया जाता है। अर्थात् यदि संयुक्त व्यञ्जन का एक वर्ण महाप्राण हो तो उसके द्वित्व होने के बाद पूर्ववर्ती महाप्राण वर्ण को अल्पप्राण में बदल देते हैं तथा द्वितीयवर्ण महाप्राण ही रहता है। जैसे—सद्भावः = सब्भावो। विघ्नः = विग्घो। अभ्यन्तर = अब्भंतर।

(घ) 'य् र् व् श् ष् स्' इन वर्णों का जब लोप हो और इनके पहले या बाद में 'श् ष् स्' वर्ण हों तो उस सकार के आदि स्वर को (द्वित्वाभाव पक्ष में) दीर्घ कर दिया जाता है। जैसे—काश्यपः = कासवो, कस्सवो। दुर्भगः = दूभगो। शिष्यः = सीसो।

(ङ) ऊष्म वर्ण (स्, श्, ष्) के साथ अल्पप्राण वाले वर्ण का संयोग होने पर अल्पप्राण व्यञ्जन ऊष्म वर्ण के प्रभाव से महाप्राण में बदल जायेगा। पश्चात् ऊष्मवर्ण का लोप करके द्वित्वादि कार्य नियम २२ (ग) के समान होंगे। जैसे—अक्षि=अक्खि। कष्ट=कट्ठ। हस्त = हत्थ। पश्चिम=पच्छिम।

(च) कभी-कभी संयुक्त वर्ण से अव्यवहित पूर्ववर्ती दीर्घ वर्ण को ह्रस्व भी कर दिया जाता है। जैसे—मूर्खः = मुक्खो।

(छ) वर्णों का बलाबल निम्न प्रकार है :—

१. सर्वाधिक बलवान्—प्रत्येक वर्ण के प्रथम चार वर्ण।

२. कम बलवान्—प्रत्येक वर्ग के पञ्चम वर्ण (अनुनासिक)।

३. क्रमशः निर्बलतर—ल्→स्→व्→य्→र्।

उदाहरण—(क) उत्पलम्=उप्पलं। काव्यम् = कव्वं। शल्यम्=सल्लं। सर्वः = सव्वो। नग्नः = नग्गो, णग्गो। शब्दः = सद्दो। शक्रः = सक्को। सुप्तः = सुत्तो। निश्चलः = णिच्चलो। निष्ठुरः = निट्ठुरो। मुक्तम् = मुत्तं। षट्पदः = छप्पओ। मूर्च्छितः = मुच्छिओ। निर्झरः = णिज्झरो। समर्थः = समत्थो। विख्यातः = विक्खायो। गोष्ठी = गोट्ठी। मुग्धः = मुद्धो। वर्गः = वग्गो। रात्रिः = रत्ती। चन्द्रः = चंदो। व्याख्यानम् = वक्खाणं। विस्फुरितः = विप्फुरियो। अर्घः = अग्घो। तीर्थम् = तित्थं। विरहाग्निः = विरहग्गी। उपलब्धः = उवलद्धो। पुष्करः=पुक्खरं। पुष्पम् = पुप्फं। दुर्लभः=दुल्लहो। सर्वः = सव्वो। शल्यम् = सल्लं। हिरण्यम् = हिरण्णं। मन्ये = मण्णे। कन्या = कण्णा। अन्वेषणं = अण्णेसणं। निम्नगा = णिण्णआ। चत्वारि = चत्तारि। विप्लवः = विप्पवो। पक्वः=पक्को। शक्यः=सक्को। जन्म=जम्मं। उन्मुखः=उम्मुहो। चूर्णम्=चुण्णं। म्लेच्छः=मिलिच्छो। नीलोत्पलम्=णीलुप्पलं। कल्मषम्=कम्मसं। अर्कः=अक्को। कर्णः=कण्णो। अल्पम्=अप्पो। मार्गः=मग्गो। शीघ्रम्=सिग्घं। तीर्थम्=तित्थं। विकल्पः=विअप्पो। पराक्रमः=परक्कमो। राज्यम्=रज्जं। पूर्णः=पुण्णो। शून्यम्=सुण्णं।

(ख) संस्पर्शः=संफासो, संफस्सो।

[अपवाद—शक्तः = सक्को। मुक्तः = मुक्को। उत्सवः = उस्सवो, उच्छवो। उच्छ्वासः = उस्सासो।]

विशेष नियम—

१. तालव्यीकरण—दन्त्य वर्ण जब 'य' अथवा 'व' से संयुक्त होते हैं तो वे दन्त्यवर्ण को तालव्यवर्ण में बदल देते हैं। जैसे—

(क) **दन्त्य वर्ण+य = तालव्य वर्ण**[1] ('त्य, थ्य, द्य, ध्य' को क्रमशः 'च, छ, ज, झ' आदेश होते हैं, पश्चात् द्वित्वादि कार्य)—अत्यन्तम् = अच्चन्तं। प्रत्यक्षम्=पच्चक्खं। नित्यम्=णिच्चं। सत्यम्=सच्चं। द्युतिः = जुई। नेपथ्यम्=णेवच्छं। मिथ्या=मिच्छा। रथ्या=रच्छा। पथ्य=पच्छ। मध्यम् = मज्झं। अद्य=अज्ज। उद्यानम् = उज्जाणं। विद्या = विज्जा। त्यागः = चाओ। त्यागी=चाई। साध्यम्=सज्झं। उपाध्यायः = उवज्झाओ। अयोध्या=अओज्झा। त्यजति=चयइ। प्रत्ययः = पच्चओ। मद्यम्—मज्जं।

(ख) **दन्त्य वर्ण+व = तालव्य वर्ण**[2] (कहीं-कहीं 'त्व, थ्व, द्व, ध्व' को क्रमशः 'च, छ, ज, झ' आदेश होते हैं, पश्चात् द्वित्वादि कार्य)—चत्वरम् = चच्चरं। साध्वसम् = सज्झसं। पृथ्वी = पिच्छी। विद्वान् = विज्जं। बुद्ध्वा = बुज्झा। ध्वजः = झओ (आदि में होने से द्वित्व नहीं हुआ)। ज्ञात्वा = णच्चा। श्रुत्वा = सोच्चा। कृत्वा = किच्चा।

२. **मूर्द्धन्यीकरण**—'र' के साथ दन्त्य वर्ण का संयोग होने पर धूर्तादि शब्दों को छोड़कर अन्यत्र प्रायः दन्त्य वर्ण को मूर्द्धन्य वर्ण मे बदल दिया जाता है।[3] जैसे—चक्रवर्ती = चक्कवट्टी। नर्तकी=णट्टई। कैवर्त=केवट्ट। छिद्रः = छिड्डो। अर्थः = अट्ठो। गर्दभः = गड्डहो। ऋद्धि=इड्ढि। मृत्तिका = मट्टिआ। अर्धम्=अद्ध। श्रद्धा=सड्ढा। अर्धम् = अड्ढं (यह प्रायः अर्ध-मागधी में पाया जाता है)। संमर्दः–संमड्डो।

३. **अनुस्वारीकरण**—

(क) अनुनासिक के बाद यदि समामवर्गीय व्यञ्जन वर्ण आता है तो उसे विकल्प से अनुस्वार हो जाता है और तब द्विस्वादि कार्य नहीं होते हैं। जैसे—चन्द्रः = चंदो, चन्दो,। पङ्कः = पंको, पङ्को।

---

१. त्यथ्यद्यां चछजाः। ध्यह्योर्झः। वर० ३.२७-२८.

२. त्वथ्वद्वध्वां चछजझाः क्वचित्। हे० ८.२.१५.

३. र्तस्याधूर्तादौ। स्त्यान चतुर्थार्थे वा। गर्दभे वा। श्रद्धर्द्धिमूर्धार्धेन्ते वा।
हे० ८. २. ३०, ३३, ३७, ४१.

(ख) यदि 'ङ्म, ण्म' हो अथवा 'म्' के बाद कोई ऊष्म वर्ण (श, ष, स; ह) हो तो वहाँ भी अनुस्वार होता है और तब द्वित्वादि कार्य नहीं होते हैं। जैसे–सम् + शुद्धि = संसुद्धी । दिङ्मुखः = दिंमुहो । षण्मुखः = छंमुहो । संहारः = संहारो । भ्रंशः = भंसो ।

४. लोप एवं हकारीकरण—'श, ष, स' के साथ वर्ग के प्रथम वर्ण के संयुक्त होने पर ऊष्म वर्ण (श, ष, स) का लोप करके प्रथम वर्ण को द्वितीय वर्ण (हकार युक्त वर्ण) में बदल दिया जाता है, पश्चात् पूर्ववत् द्वित्व होता है और पूर्ववर्ती द्वितीय वर्ण को प्रथम वर्ण में बदल दिया जाता है (उत्तरवर्ती द्वितीय वर्ण ज्यों का त्यों रहता है)। जैसे—आश्चर्यम् = अच्छरिअं। पुष्करम् = पोक्खरं। दृष्टिः = दिट्ठी। यष्टिः = लट्ठी। अस्ति = अत्थि। स्तुतिः = थुई (आदि वर्ण होने से द्वित्व नहीं)। पुष्पम्=पुप्फं। हस्तः = हत्थो। बृहस्पतिः = बुहप्फइ। स्तोकं = थोअं। स्तम्भः = थंभो, खंभो। स्तोत्रम् = थोत्तं। स्पर्शः = फंसो। स्पन्दनम् = फंदणं। कष्टम् = कट्ठं। इष्टः = इट्ठो। पुष्टः = पुट्ठो। मुष्टिः = मुट्ठी। पश्चात् = पच्छा। स्तब्धः = थद्धो। स्त्यानम् = थीणं। प्रस्तरः= पत्थरो। प्रशस्तः = पसत्थो। पर्यस्तः = पल्लत्थो।

नोट—इस नियम को निम्न प्रकार भी समझा जा सकता है[1]—

(क) ष्क, स्क, क्ष > ख ।

(ख) श्च (त्स, प्स) > छ ।

(ग) ष्ट > ठ ।

(घ) स्त > थ ।

(ङ) ष्प, स्प > फ ।

[अपवाद—उष्ट्रः = उट्टो । संस्कृतम् = सक्कयं। दुष्करम् = दुक्करं। नमस्कारः=णमोक्कारो ।]

---

[1] ष्कस्कक्षां खः । श्चत्सप्सां छः । ष्टस्य ठः । स्तस्य थः । ष्पस्य फः । स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य । वर० ३. २९, ४०, १०, १२, ३५; ३६.

(२३) विशिष्ट संयुक्त व्यञ्जन परिवर्तन—

१. क्ष > ख (कहीं-कहीं 'छ, झ' भी होता है)[1]—क्षयः = खओ। लक्षणम् = लक्खणं। क्षमा = छमा (पृथ्वी), खमा (माफी मांगना)। अक्षि = अच्छी। क्षीणम् = छीणं, झीणं, खीणं। क्षणः = छणो (उत्सव), खणो (समय)। क्षिद्यति=झिज्जइ। इक्षुः = उच्छू। लक्ष्मी = लच्छी। क्षीरम्=छीरं। वृक्षः= वच्छो। क्षेत्रम् = खेत्तं। क्षुधा = छुहा। मक्षिका=मच्छिआ। कक्षा=कच्छा। तीक्ष्णम्=तिक्खं। वृक्षः=वच्छो। दक्षः=दच्छो (मध्यवर्ती 'क्ष' होने से द्वित्वादि कार्य भी होंगे)।

२. ज्ञ>ण, ज[2]—ज्ञानम् = णाणं, जाणं। प्रज्ञा = पण्णा, पज्जा। सर्वज्ञः= सव्वण्णू, सव्वज्जो। संज्ञा=सण्णा, संजा। अभिज्ञः=अहिज्जो, अहिण्णो। मनोज्ञम्= मणोज्जं, मणोण्णं। आज्ञा = आणा, अज्जा। दैवज्ञः = दइवण्णू, दइवज्जो। विज्ञानम्=विण्णाणं (यहाँ 'ज' नहीं होगा)।

३. त्स, प्स (थ्व, थ्य, श्च) > छ[3] (ह्रस्व स्वर परे होने पर)—उत्साहः= उच्छाहो। अप्सरा = अच्छरा। पथ्यम् = पच्छं। लिप्सति = लिच्छइ। वत्सः = वच्छो। मत्सरः = मच्छरो। आश्चर्यम् = अच्छेरं।

४. त्स > स्स (कहीं-कहीं)—उत्सवः = उस्सवो, ऊसवो।

५. द्य, र्य, द्य > ज्ज[4]—जय्य = जज्ज। कार्यम् = कज्जं। भार्या = भज्जा। शय्या = सेज्जा। मद्यम् = मज्जं। मर्यादा = मज्जाया। विद्या = विज्जा। पर्यन्तम्=पज्जन्तं। सूर्यः=सुज्जो। आर्या = अज्जा।

---

[1] क्षः खः क्वचित्तु छझौ। हे० ८. २. ३.

[2] म्नज्ञोर्णः। ज्ञोञः। हे० ८. २. ४२, ८३.

[3] ह्रस्वात् थ्य श्च त्स प्सामनिश्चले। हे० ८. २. २१.

[4] द्यय्यर्यां जः। हे० ८.२. २४.

६. ह्य, ध्य > झ[1]—गुह्यम् = गुज्झं। सह्यम्=सज्झं। ध्यानम्=झाणं। साध्यम्=सज्झं। मह्यम्=मज्झं।

७. ह्व > भ[2]—जिह्वा=जिब्भा। विह्वल: = विब्भलो।

८. श्म, ष्म, स्म, ह्म, क्ष्म > म्ह[3]—ग्रीष्म:=गिम्हो। विस्मय:=विम्हओ। ब्राह्मण:=बम्हणो, बंभणो। काश्मीर:=कम्हारो। अस्मादृश:=अम्हारिसो। ब्रह्मा = बम्हा। ब्रह्मचर्यम् = बम्हचेरं, बंभचेरं। ऊष्मा = उम्हा। पक्ष्मलम्=पम्हलं।

९. स्थ > ठ – अस्थि:=अट्ठी।

१०. श्न, ष्ण, स्न, ह्न, ह्ण, क्ष्ण > ण्ह[4]—प्रश्न:=पण्हो। उष्ण:=उण्हो। स्नानम्=ण्हाणं! वह्नि:=वण्ही। पूर्वाह्णम्=पुव्वण्हो। तीक्ष्णम्=तिण्हं। विष्णु:=विण्हू। कृष्ण:=कण्हो। ज्योत्स्ना=जोण्हा। स्नायु:=ण्हाऊ। अपराह्णम्=अवरण्हो। श्लक्ष्णम्=सण्हं।

११. ह्ल > ल्ह[5]—प्रह्लाद:=पल्हाओ। कह्लारम्=कल्हारं।

१२. त्म > प्प—आत्मा=अप्पा।

१३. क्म > प—रुक्मिणी=रुप्पिणी।

१४. र्ष, ष्प > ह—कार्षापण:=काहावणो। बाष्प: = वाहो (नेत्र जल)।

[**विशेष**—

(क) दीर्घ स्वर एवं अनुस्वार से परे संयुक्त व्यञ्जन को द्वित्व नहीं होता है।[6] जैसे—ईश्वर:=ईसरो। लास्यम्=लासं। सन्ध्या=संझा।

---

[1] साध्वस-ध्य-ह्यां झः। हे० ८.२.२६.

[2] ह्वो भो वा। वा विह्वले वौ वश्च। हे० ८.२.५७-५८.

[3] पक्ष्म श्म ष्म स्म ह्मां म्हः। हे० ८. २. ७४.

[4] सूक्ष्म–श्न–ष्ण–स्न–ह्न–क्ष्णां ण्हः। हे० ८. २. ७५.

[5] ह्लो ल्हः। हे० ८.२. ७६.

[6] न दीर्घानुस्वारात्। हे० ८. २. ९२.

(ख) रेफ और हकार को द्वित्व नहीं होता है।[1] जैसे—सौन्दर्यम्=सुन्देरं। ब्रह्मचर्यम्=बम्हचेरं। धैर्यम्=धीरं। विह्वलः=विहलो, विब्भलो ('ह्व' को 'भ' होने पर) भिब्भलो[2]। कार्षापणः=कहावणो, काहावणो।

(ग) तैलादि गण (प्राकृत-प्रकाश के अनुसार नीडादि गण) के शब्दों में कहीं अनन्त्य और कहीं अन्त्य सरल व्यञ्जनों को द्वित्व होता है।[3] जैसे—तैलम्=तेल्लं। प्रेमम्=पेम्मं। स्रोतम्=सोत्तं। मंडूकः=मंडुक्को। ऋजुः=उज्जू। व्रीडा=विड्डा। यौवनम्=जोव्वणं। बहुत्वम्=बहुत्तं।

(घ) संयुक्त वर्ण का अन्त यदि 'ल' में हो तो पूर्ववर्ती अक्षर में 'इ' जोड़कर विप्रकर्ष (पृथक्करण) कर दिया जाता है।[4] वस्तुतः यह स्वरभक्ति ही है। जैसे—श्लोकः=सिलोओ। श्लिष्टम्=सिलिट्ठं। क्लिष्टम्=किलिट्ठं। क्लेशः=किलेसो। म्लानम्=मिलाणं।

(ङ) र्ह, र्श, र्ष, र्य>(क्रमशः) रिह, रिस, रिस, रिअ (वस्तुतः यह भी स्वरभक्ति ही है)—अर्हति=अरिहइ। गर्हा=गरिहा। आदर्शः=आयरिसो। दर्शनम्=दरिसणं। सुदर्शनम्=सुदरिसणं। वर्षम्=वरिसं। वर्षा=वरिसा। वर्षशतम्=वरिससयं। आचार्यः=आयरिओ। गाम्भीर्यम्=गंभीरिअं। चौर्यम्=चोरिअं। धैर्यम्=धीरिअं। सूर्यः=सूरिओ। सौन्दर्यम्=सुन्दरिअं। ब्रह्मचर्यम्=बम्हचरिअं।

(च) कुछ विशेष परिवर्तित रूप—रुग्णः=लुक्को। पत्तनम्=पट्टणं। मृत्तिका=मट्टिआ। गर्तः=गड्डो। दग्धः=दड्ढो। वृद्धः=वुड्ढो। स्तब्धः=ठड्ढो। पञ्चदश=पण्णरह। पञ्चाशत=पण्णासा। दत्तम्=दिण्णं। आम्रम्=अंबं। ताम्रम्=तंबं। ब्राह्मणः=बम्भणो। दुःखम्=दुहं। दीर्घः=दीहो। कार्षापणः=काहावणो। कुष्माण्डम्=कोहण्डं। वाष्पः=बाहो। चतुर्गुणः=चोग्गुणो। चतुर्थी=चोत्थी, चउत्थी। चतुर्दश=चोद्दह, चउदह।

---

[1] रहोः। हे० ८. २. ९३.

[2] वा विह्वले वौ वश्च। हे० ८. २. ५८.

[3] तैलादौ। हे० ८.२.९८.

[4] लात्। हे० ८.२.१०६.

कुतूहलम् = कोहलं; कोउहलं। चतुर्थः = चोत्थो; चउत्थो। कदलम्=केलं, कयलं। आश्चर्यम्=अच्छरिअं, अच्छरिज्जं। विंशतिः=वीसा। लवणम्=लोणं। स्थविरः=थेरो। नवनीतम्=लोणीअं। आयुः=आउसं। आरब्धः=आढत्तो। अधस् = हेट्ठं। अप्सराः = अच्छरसा। दंष्ट्रा = दाढा। वैडूर्यम्=वेसलिअं। वनिता = विलया। पदाति = पाइक्को। धनुः = धणुहं। दुहिता=धूआ। गृहम् = घरं। तिर्यक् = तिरिच्छि। भगिनी = बहिणी। वृक्षः=रुक्खो। शुक्तिः=सिप्पी। श्मशानम्=मसाणं, सुसाणं। महाराष्ट्रम्=मरहट्ठं। स्तोकम्=थोक्कं, थोवं। वाराणसी = वाणारसी। लघुकम् = हलुअं। करेणूः = कणेरू। ललाटम् = णडालं। चन्द्रिका=चदिमा। स्फटिकः=फलिहो। निकषः=निहसो। कन्दुकम्=गेन्दुअं। शृङ्खलम्=सङ्कलं। दुर्भगः = दूहवो। जटिलः=झडिलो, जडिलो।]

तृतीय अध्याय : लिङ्गानुशासन

संस्कृत के समान प्राकृत में भी तीन लिङ्ग माने गये हैं। सामान्यतया लिङ्ग-व्यवस्था संस्कृत के ही समान है परन्तु वहुत स्थलों में प्राकृत में संज्ञाओं का लिङ्ग बदल गया है। कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) (दामन्, शिरस् और नभस् शब्दों को छोड़कर शेष) नकारान्त और सकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग में होते हैं[1]। जैसे—

(क) सकारान्त (संस्कृत में जो नपुं० हैं)—जसो (यशस् = यशः), मणो (मनस् = मनः), तमो (तमस् = तमः), तेओ (तेजस् = तेजः), पओ (पयस् = पयः), सरो (सरस् = सरः), उरो (उरस् = उरः)।

(ख) नकारान्त (संस्कृत में जो नपुं० हैं)—कम्मो (कर्मन्=कर्म); धम्मो (धर्मन् = धर्म), वम्मो (वर्मन्=वर्म), जम्मो (जन्मन्=जन्म), नम्मो (नर्मन् = नर्म); धामो (धामन्=धाम), मम्मो (मर्मन् = मर्म)।

[**अपवाद**—

(संस्कृत के समान नपुं० ही हैं)—वयं (वयस् = वयः); सेयं (श्रेयस् = श्रेयः), सुमण (सुमनस् = सुमनः), सिरं (शिरस् = शिरः), नहं (नभस्=नभः), दामं (दामन् = दाम), सम्मं (शर्मन् = शर्म), चम्मं (चर्मन्=चर्म)।]

(२) प्रावृष्, शरद् और तरणि (ये सभी शब्द संस्कृत में स्त्रीलिङ्ग हैं। 'तरणि' शब्द संस्कृत में पुं० भी है) ये पुं० हैं[2]—पाउसो, सरओ और एस तरणी।

---

[1] स्नमदाम-शिरो-नभः। हे० ८. १. ३२.

[2] प्रावृट्-शरत्तरणयः पुंसि। हे० ८. १. ३१.

(३) अक्षि (आंख) के पर्यायवाचक शब्द तथा वचनादिगण में पठित शब्द विकल्प से पुं० (विकल्पाभाव में नपुं०) में प्रयुक्त होते हैं।[1] 'अक्षि' शब्द अञ्जल्यादिगण में पठित होने से वह स्त्री० में भी प्रयुक्त होता है—

(क) अक्षिवाचक—अच्छी (पुं०), अच्छिं (नपुं०), एसा अच्छी (स्त्री०), अक्खी अक्खिं (अक्षि), णयणं णयणो (नयनम्), नेत्तो नेत्तं (नेत्रम्), चक्खू चक्खुं (चक्षुः), लोअणो लोअणं (लोचनम्) (संस्कृत में सभी नपुं०)।

(ख) वचनादिगण—वयणो वयणं (वचनम्), कुलो कुलं (कुलम्), माहप्पो माहप्पं (माहात्म्यम्), छन्दो छन्दं (छन्दम्), दुक्खो दुक्खं (दुःखम्), भायणो भायणं (भाजनम्), कमलो कमलं (कमलम्) (संस्कृत में सभी नपुं०)।

(४) गुणादि शब्द (जो संस्कृत में पुं० हैं) विकल्प से नपुं० (अन्यत्र पुं०) में प्रयुक्त होते हैं[2]—गुणं गुणो (गुणः), देवं देवो (देवः), खग्गं खग्गो (खड्गः), मंडलग्गं मंडलग्गो (मंडलाग्रः), कररुहं कररुहो (कररुहः), रुक्खं रुक्खो (वृक्षः), बिन्दूइं बिन्दुणो (बिन्दवः)।

(५) अञ्जल्यादि गण के शब्द विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं[3]—एसा अंजली एसो अंजली (एष अञ्जलिः), पिट्ठी पिट्ठं (पृष्ठम्), एसा अच्छी एसो अच्छी (पुं०) अच्छिं (अक्षिः, सं० नपुं०), पण्हा पण्हो (प्रश्नः), चोरिआ चोरिओ (चौर्यम्), एसा कुच्छी एसो कुच्छी (कुक्षिः), एसा बली एसो बली (बलिः), एसा निही एसो निही (निधिः); एसा रस्सी एसो रस्सी (रश्मिः), एसा विही एसो विही (विधिः), एसा गंठी एसो गंठी (ग्रन्थिः)।

(६) इमनान्त ('इमन्' प्रत्ययान्त) शब्द विकल्प से स्त्रीलिङ्ग (विकल्पा-

---

[1] वाक्यार्थवचनाद्याः। हे० ८. १. ३३.

[2] गुणाद्याः क्लीबे वा। हे० ८. १. ३४.

[3] पृष्ठाक्षिप्रश्नाः स्त्रियां वा। वर० ४. २०.
वही, वृत्ति (अञ्जल्यादिपाठादक्षिशब्दः स्त्रीलिङ्गेऽपि)।

भाव में संस्कृतवत् पुं०) में प्रयुक्त होते हैं[1]—एसा गरिमा एसो गरिमा (गरिमन्=एष गरिमा)। इसी प्रकार—महिमा (महिमन्=महिमा), धुत्तिमा (धूर्तिमन्=धूर्तता); निल्लज्जिमा (निर्लज्जिमन्=निर्लज्जता)।

(७) 'बाहु' शब्द पुं० और स्त्री० दोनों में प्रयुक्त होता[2] है—एसा बाहा एसो बाहू (पुं०, एष बाहुः)।

(८) दोनों लिङ्गों (नपुं० तथा पुं०) में प्रयोग मिलते हैं (संस्कृत में नपुं० में प्रयुक्त होते हैं)—मित्तं मित्तो, धम्मं धम्मो, मणं मणो, वणं वणो, ठाणं ठाणो, अत्थं अत्थो (अर्थः), बलं बलो आदि।

---

[1] वही तथा 'वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम्'। हे० ८. १. ३५.

[2] बाहोरात्। हे० ८. १. ३६.

चतुर्थ अध्याय : सन्धि

दो वर्णों के निकट आने पर उनमें वर्ण-विकृति के नियमानुसार परिवर्तन (लोप, आगम अथवा आदेश) होकर मिलने को सन्धि कहते हैं अर्थात वर्णों के विना विकृति के मिलने मात्र को संयोग कहते हैं और वर्ण-विकृतिसहित मिलने को सन्धि कहते हैं। प्राकृत में सन्धि की व्यवस्था वैकल्पिक है। जैसे—वासेसी वास इसी (व्यासर्षिः), दहीसरो दहि ईसरो (दधीश्वरः)। एक पद में प्रायः सन्धि नहीं होती है।[1] जैसे—कइ (कवि), गअ (गज), रुइ (रुचि), काअव्वं (कर्त्तव्यम्), विइओ बीओ (द्वितीयः), राएसि (राजर्षिः), निसाअरो (निशाचरः)। चूँकि प्राकृत के वैयाकरणों ने संस्कृत के शब्दों में विकार के नियमों का प्रतिपादन करके प्राकृत के शब्दों की निष्पत्ति बतलाई है, अतः संस्कृत के नियमों का यहाँ पूर्ण परिपालन नहीं हुआ है। जहाँ कहीं भी सन्धि के नियमों का पालन किया गया है, वहाँ वह प्रायः वैकल्पिक है।

प्राकृत के सन्धि सम्बन्धी नियमों को समझने के लिए उसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) स्वर सन्धि, (२) अव्यय सन्धि और (३) व्यञ्जन सन्धि। प्राकृत में विसर्ग का अभाव होने से यहाँ विसर्ग सन्धि नहीं होती है। प्राकृत में अव्ययों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः इस सन्धि को यहाँ स्वतन्त्र सन्धि के रूप में दिखलाया गया है।

(क) स्वर (अच्) सन्धि

१. दीर्घ सन्धि (सवर्ण स्वर सन्धि)—ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ के बाद यदि सवर्ण स्वर आता है तो उन दोनों के स्थान में सवर्ण दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे—

---

[1] पदयोः सन्धिर्वा (संस्कृतोक्तः सन्धिः सर्वः प्राकृते पदयोर्व्यवस्थित-विभाषया भवति। बहुलाधिकारात् क्वचिद् एकपदेऽपि)। हे० ८.१.५.

(क) अ, आ+अ, आ = आ—दंड+अहीसो = दंडाहीसो; दंड अहीसो (दण्डाधीशः), णर+अहिवा = णराहिवा (नराधिपाः), ण+आगओ = णागओ (नागतः), रमा+अहीणो = रमाहीणो (रमाधीनः), ण+आलवइ=णालवइ (नालपति)।

(ख) इ, ई+इ, ई = ई—मुणि+ईसरो = मुणीसरो (मुनीश्वरः), पुहवी+ईसो = पुहवीसो (पृथिवीशः), रयणी+ईसो = रयणीसो (रजनीशः)।

(ग) उ, ऊ+उ, ऊ = ऊ—वहू+उअरं = वहूअरं (वधूदरम्), भाणु+उवाज्झाओ = भाणूवज्झाओ (भानूपाध्यायः), सादु+उदगो = सादूदगो (स्वादूदकम्), साहु+ऊसवो = साहूसवो (साधूत्सवः)।

२. गुण सन्धि (असवर्ण स्वर सन्धि)—अ, आ के बाद असवर्ण ह्रस्व या दीर्घ इ उ हो तो दोनों के स्थान में क्रमशः ए और ओ गुणादेश विकल्प से हो जाते हैं। जैसे—

(क) अ, आ+इ, ई=ए—वास+इसी=वासेसी वास इसी (व्यासर्षिः), दिण+ईसो = दिणेसो (दिनेशः), जाया+ईसो = जायेसो (जायेशः); महा+इसी = महेसी (महर्षिः)।

(ख) अ, आ+उ, ऊ = ओ—सामा+उअअं=सामोअअं (श्यामोदकम्); सास+ऊसासा = सासोसासा (श्वासोच्छ्वासः), गूढ+उअरं = गूढोअरं (गूढोदरम्)।

३. एक स्वरलोप सन्धि—सन्धि-योग्य स्वर के बाद स्वर होने पर कहीं-कहीं एक स्वर का लोप हो जाता है।[1] यह नियम गुणसन्ध्यादि का अपवादक है। जैसे—

पूर्व स्वर लोप—

(क) अ, आ+ए = ए (नित्य 'अ' एवं 'आ' स्वर का लोप=वृद्धयभाव =

---

[1] —लुक्। हे० १. १. १०.

पररूप सन्धि)—तहा+एअ—तहेअ (तथैव), पातुक्ख+एव—पातुक्खेव (पादोत्क्षेप:), ण+एव—णेव (नैव) ।

(ख) अ, आ+ओ=ओ (नित्य 'अ, आ' स्वर का लोप=वृद्ध्यभाव=पररूप सन्धि)—पहा+ओलि=पहोलि (प्रभावलि:), जाल+ओलि—जालोलि (ज्वालावलि:), मट्टिअ+ओलित्तो=मट्टिओलित्तो (मृत्तिकावलिप्त:), जल+ओहो=जलोहो (जलौघ:), वासेण+ओल्लो=वासेणोल्लो (वर्षार्द्र:) ।

(ग) अ, आ+इ, ई, उ, ऊ=पूर्वस्वर अ, आ लोप=गुणाभाव या पररूप सन्धि—देव+इड्ढि=देविड्ढि (देवर्द्धि:), महा+इड्ढिय=महिड्ढिय (महर्द्धित:), राअ+ईसरो—राईसरो राअेसरो वा (राजेश्वर:), तिदस+ईसो=तिदसीसो तिदसेसो वा (त्रिदशेश:), महा+इंदो=महिन्दो (महेन्द्र:), जिण+इंदो=जिणिन्दो (जिनेन्द्र:); गअ+इंदो—गइन्दो (गजेन्द्र:), माअ+इन्दजालं=माइन्दजालं (मायेन्द्रजालम्), एग+इन्दियो=एगिंदियो (एकेन्द्रिय:), फास+इन्दियं=फासिंदियं (स्पर्शनेन्द्रिम्), सोअ+इन्दिय=सोइन्दिय (श्रोत्रेन्द्रिय), जिभ+इन्दिय=जिभिंदिय (जिह्वेन्द्रिय), महा+ऊसवो=महूसवो (महोत्सव:), वसंते+ऊसवो=वसंतूसवो (वसन्तोत्सव:), एग+ऊणो=एगूणो (एकोन:), कअ+ऊसासा=कऊसासा (कृतोच्छ्वास:), णील+उप्पलं=णीलुप्पलं (नीलोत्पलम्), राअ+उलं=राउलं (राजकुलम्), नीसास+ऊसासा=नीसासूसासा (निश्वासोच्छ्वास:), कण्ण+उप्पलं—कण्णुप्पलं (कर्णोत्पलम्) ।

(घ) इ+अ=अ (पूर्वस्वर इ लोप=यण् सन्ध्याभाव=पररूप सन्धि)—ददामि+अहं=ददामहं (ददाम्यहम्); तम्मि+अंसहर=तम्मंसहर (तस्मिन्नंसहर:), रमामि+अहं=रमामहं (रमाम्यहम्) ।

अपवाद—कहीं-कहीं परस्वर लोप—ए, ओ+अ=परवर्ती अ स्वरलोप=अयादिसंध्याभाव=पूर्वरूपसन्धि)—बालो+अवरुज्झइ=बालोवरुज्झइ (बालोऽपराध्यति), फासे+अहियासए=फासेहियासए (स्पर्शमधिसहते) ।

४. सन्ध्यभाव—

(क) उद्वृत्त स्वर—

व्यञ्जन के लुप्त हो जाने पर जो स्वर शेष रहता है उसे उद्वृत्त स्वर कहते हैं। उद्वृत्त स्वर की किसी अन्य स्वर के साथ प्रायः सन्धि नहीं होती है[1] क्योंकि इस सन्ध्यभाव से लुप्त व्यञ्जन की प्रतीति होती है। जैसे—निसा+अरो=निसाअरो (निशाचरः), गन्ध+उडि=गंधउडि (गन्धकुटिम्), रयणी+अरो=रयणीअरो (रजनीकरः), का+अव्वं=काअव्वं (कर्त्तव्यम्), मणु+अत्तं=मणुअत्तं (मनुजत्वम्)।

[अपवाद—

कहीं-कहीं सन्धि भी हो जाती है। कहीं नित्य और कहीं विकल्प से। जैसे—म+ऊरो=मोरो (मयूरः), बि+इओ=बीओ; बिइओ (द्वितीयः); राअ+उलं=राउलं (राजकुलम्), कुम्भ+आरो=कुम्भारो; कुम्भआरो (कुम्भकारः), चक्क+आओ=चक्काओ (चक्रवाकः), च+उद्दसी=चोद्दसी (चतुर्दशी), थ+इरो=थेरो (स्थविरः)।]

(ख) प्रकृतिभाव—

सन्धि न होना ही प्रकृतिभाव (यथास्थिति) है। इसमें उद्वृत्तस्वर वाले स्थल तथा उद्वृत्तस्वर से भिन्न स्थलों का सन्ध्यभाव बतलाया गया है। प्राकृत में सन्धि का निषेध अधिक पाया जाता है। निम्न परिस्थितियों में प्रायः प्रकृति-भाव होता है—

(१)इ, ई, उ, ऊ+असवर्ण स्वर=यथास्थिति[2]—जाइ+अंध=जाइअंध (जात्यन्ध=जन्मान्ध); पुढवी+आउ (देशी शब्द)=पुढवी आउ (पृथ्वी+

---

[1] स्वरस्योद्वृत्ते। हे० १.१.८.

[2] न युवर्णस्यास्वे। हे० ८.१.६.

जल), जइ+एवं=जइ एवं (यद्येवम्), वि+अ=विअ (इव), महु+इँ=महुइँ (मधूनि), वहू+अवऊढो=वहू अवऊढो (वध्ववगूढः), बहु+अट्ठिओ=(बहु+अस्थिकः) ।

(२) ए, ओ+कोई स्वर[1] = यथास्थिति—देवीए+एत्थ=देवीए एत्थ (देव्या अत्र), वणे+अडइ=वणे अडइ (वने अटति), अहो+अच्छरियं=अहो अच्छरियं (अहो आश्चर्यम्), एओ+एत्थ=एओ एत्थ (एकोऽत्र), लच्छीए+आणंदो=लच्छीए आणंदो (लक्ष्म्याः आनन्दः) ।

(३) तिप् आदि प्रत्ययों के स्वर–क्रियापद के तिपादि प्रत्ययों के स्वर की अन्य किसी भी स्वर के साथ सन्धि नहीं होती ।[2] जैसे–गच्छउ (गच्छतु), होइ+इह=होइ इह (भवतीह), गच्छइ+अयं=गच्छइ अयं (गच्छत्ययम्) ।

(४) नाम विभक्ति के साथ—रमाए (रमया), सव्वओ (सर्वतः) ।

[अपवाद—

काहिइ=काही (करिष्यति), होहिइ=होही (भविष्यति) ।]

(ख) अव्यय सन्धि

(१) सर्वनाम सम्बन्धी (त्यदादि) स्वरों की अव्यय सम्बन्धी स्वरों के साथ सन्धि होने पर प्रायः आदि स्वर का लोप होता है ।[3] जैसे—अम्हे+एत्थ=अम्हेत्थ (वयमत्र), तुब्भे+इत्थ=तुब्भित्थ (यूयमत्र), जइ+इमा=जइमा (यदीयम्), जइ+अहं=जइहं (यद्यहम्), अम्हे+एव्व=अम्हेव्व (वयमेव) ।

(२) 'अपि' अव्यय जब किसी पद के बाद आता है तो उसके 'अ' का लोप विकल्प से होता है ।[4] ऐसी स्थिति में जब 'अपि' अनुस्वार के बाद आता

---

[1] एदोतोः स्वरे । हे० ८. १. ७.

[2] त्यादेः । हे० ८. १. ९.

[3] त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक् । हे० ८. १. ४०.

[4] पदादपेर्वा । हे० ८. १. ४१.

है तो उसे 'पि' या 'अवि' विकल्प से होते हैं और जब स्वर के बाद आता है तो उसे 'वि' या 'अवि' विकल्प से होते हैं। जैसे—किं+अपि=किंपि किमवि (किमपि), तं+अपि=तंपि तमवि (तमपि), कहं+अपि=कहंपि कहमवि (कथमपि), केण+अपि=केणवि केणावि (केनापि), एगो+अपि=एगोवि एगो अवि (एकोऽपि)।

(३) पद के बाद आने वाले 'इति' अव्यय के 'इ' का लोप होता है। ऐसी स्थिति में 'इति' जब अनुस्वार के बाद आता है तो उसे 'ति' होता है और जब स्वर के बाद आता है तो 'त्ति' (पूर्व स्वर को विकल्प से ह्रस्व भी) होता है।[1] जैसे—किं+इति=किंति (किमिति), जुत्तं+इति=जुत्तंति (युक्तमिति,) तहा+इति=तहात्ति तहत्ति (तथेति), पुरिसो+इति=पुरिसोत्ति पुरिसुत्ति (पुरुष इति), पिओ+इति=पिओत्ति पिउत्ति (प्रिय इति), झ+इति=झत्ति (झगिति)। यदि 'इति' अव्यय पद के आदि में हो तो 'इति' का 'इअ' होगा 'ति' या 'त्ति' नहीं होगा। जैसे—इअ विज्झ गुहा-निलयाए (इति विन्ध्यगुहा-निलयायाः)।

(४) 'इव' जब अनुस्वार के बाद आता है तो उसे 'व' और जब स्वर के बाद आता है तो 'व्व' होता है।[2] जैसे—चंदो+इव=चंदो व्व (चन्द्र इव), गेहं+इव=गेहं व (गृहमिव)।

(ग) व्यञ्जन सन्धि

प्राकृत में व्यञ्जनान्त पदों का अभाव होने से[3] यद्यपि व्यञ्जन सन्धि का प्रश्न उपस्थित नहीं होता है, परन्तु पदान्त 'म्' में तथा अनुनासिक वर्णों के साथ व्यञ्जन वर्णों में विकार पाया जाता है। जैसे—

(१) पदान्त 'म्' को अनुस्वार होता है।[4] जैसे—गिरिम्=गिरिं, फलम्=फलं, वृक्षम्=वच्छं।

---

[1] इतेः स्वरात् तश्च द्विः। हे० ८. १. ४२.

[2] पि० प्रा० पारा नं० ९२, १३५.

[3] अन्त्यव्यञ्जनस्य। हे० ८. १. ११.

[4] मोऽनुस्वारः। हे० ८. १. २३.

(२) पदान्त 'म्' के बाद स्वर आने पर 'म' का अनुस्वार विकल्प से होता है।[1] जैसे—यम्+आहु=यमाहु यं आहु, नगरम्+आगच्छइ=नगरमागच्छइ नगरं आगच्छइ।

(३) ङ्, ञ्, ण् तथा न् के बाद कोई भी व्यञ्जन वर्ण हो तो उसे अनुस्वार हो जाता है। यदि 'क'वर्गादि में से किसी भी वर्ग का कोई भी वर्ण हो तो अनुस्वार को विकल्प से तद्वर्गीय पञ्चम वर्ण (अनुनासिक वर्ण) भी हो जाता है।[2] जैसे—संखो सङ्खो (शङ्खः), पंको पङ्को (पङ्कः), चंदो चन्दो (चन्द्रः); पंथो पन्थो (पन्था), उक्कंठा उक्कण्ठा (उत्कण्ठा), संझा सञ्झा (सन्ध्या); अंगणं अङ्गणं (अङ्गनम्), बंधवो बन्धवो (बान्धवः), आरंभो आरम्भो (आरम्भः); कंपइ कम्पइ (कम्पते), कंचुओ कञ्चुओ (कञ्चुकः), छंमुहो छम्मुहो (षण्मुखः)।

(४) कुछ शब्दों के अन्तिम व्यञ्जन का मकार होकर अनुस्वार हो जाता है।[3] जैसे—सम्यक् > सम्मम् > सम्मं। साक्षात् > सक्खं, यत् > जं, पृथक् > पिहं, पुहं।

[अपवाद—

कहीं-कहीं अन्तिम व्यञ्जन का लोप न होकर वह परवर्ती स्वर के साथ मिल जाता है। जैसे—किम्+इहं = किमिहं, पुनर्+अपि = पुणरवि, दुर्+अतिक्रमः > अइक्कमो = दुरइक्कमो (दुरतिक्रमः), यद्+अस्ति = जदत्थि।]

(५) कुछ शब्दों (विशेषकर द्विरुक्त पदों) में दो पदों के मध्य में 'म्' का आगम विकल्प से हो जाता है, यदि बाद में कोई स्वर हो।[4] जैसे एक्क+एक्कं = एक्कमेक्कं एक्केक्कं (एकैकम्), अंग+अंगम्मि = अंगमंगम्मि अंगअंगम्मि (अङ्गे अङ्गे), चित्त+आणंदिय = चित्तमाणंदिय (चित्तमानन्दितः), इह+आगओ = इहमागओ (इहागतः)।

---

[1] वा स्वरे मश्च। हे० ८. १. २४.

[2] ङ ञ ण नो व्यञ्जने। हे० ८. १. २५. वर्गेन्त्यो वा। हे० ८. १.३०.

[3] बहुलाधिकारादन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः। हे० ८. १. २४ वृत्ति।

[4] वीप्स्यात्स्यादेर्वीप्स्ये स्वरे मो वा। हे० ८. ३. १.

(६) भूतकृदन्त क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर होने वाले तूण, तुआण, ऊण और उआण के णकार पर, तृतीया एकवचन तथा षष्ठी बहुवचन के 'ण' प्रत्यय पर तथा सप्तमी बहुवचन के 'सु' प्रत्यय पर अनुस्वार का आगम विकल्प से होता है।[1] जैसे—काऊण काऊणं (कृत्वा), काउआण काउआणं (कृत्वा); कालेण कालेणं (कालेन), तेण तेणं (तेन), वच्छेसु वच्छेसुं (वृक्षेसु), वच्छाण वच्छाणं (वृक्षाणाम्), वच्छेण वच्छेणं (वृक्षेण)।

(७) प्रयोगानुसार कुछ शब्दों (वक्रादिगण) के प्रथम, द्वितीय या तृतीय वर्ण पर अनुस्वार का आगम होता है[2]—(क) **प्रथम वर्ण पर**; जैसे—वंकं (वक्रम्), मंसू (श्मश्रु), फंसो (स्पर्शः), पुंछं (पुच्छम्), अंसुं (अश्रु), तंसं (त्र्यसं); मंजारो (मार्जारः), दंसणं (दर्शनम्)। **द्वितीय वर्ण पर**, जैसे—इहं (इह); मणंसी (मनस्वी), मणंसिणी (मनस्विनी)। **तृतीय वर्ण पर**, जैसे—उवरिं (उपरि), अणिउंतयं अइमुंतयं (अतिमुक्तकम्), अवरिं (उपरि)।

(८) अनुस्वार का लोप भी बहुलता से प्राकृत में पाया जाता है। जैसे—(क) विंशति आदि के अनुस्वार का लोप होता है[3]—विंशति=वीसा, त्रिंशत्=तीसा; संस्कृतम्=सक्कयं, संस्कारः=सक्कारो, संस्तुतम्=सत्तुअं। (ख) मांसादिगण के अनुस्वार का लोप विकल्प से होता है[4]—**प्रथम स्वर में**—मंसं मासं (मांसम्); पंसू पासू (पांसुः=पांशुः), सिंघो सीहो (सिंहः), मंसलं मासलं (मांसलम्)। **द्वितीय स्वर में**—कहं कह (कथम्), नूणं नूण (नूनम्), एवं एव (एवम्)। **तृतीय स्वर में**—इआणिं इआणि (इदानीम्), संमुहं संमुह (सम्मुखम्)।

◆

---

[1] क्त्वा-स्यादेर्ण-स्वोर्वा। हे० ८. १. २७.

[2] वक्रादावन्तः। हे० ८. १. २६.

[3] विंशत्यादेर्लुक्। हे० ८. १. २८.

[4] मांसादेर्वा। हे० ८. १. २९.

पञ्चम अध्याय : कृत् प्रत्यय

धातुओं से संज्ञा विशेषण, अव्यय आदि शब्द बनाने के लिए जिन प्रत्ययों को जोड़ा जाता है, उन्हें कृत् प्रत्यय कहते हैं। इनके जुड़ने पर जो संज्ञादि शब्द बनते हैं उन्हें 'कृदन्त' (कृत्+अन्त) कहते हैं। प्रमुख कृत्-प्रत्यय निम्न हैं :—

१. वर्तमानकालिक कृदन्त

[न्त, माण और ई]

वर्तमान काल में किसी कार्य के लगातार होते रहने के अर्थ में न्त (शतृ), माण (शानच्) और ई प्रत्यय होते हैं।[1] 'ई' प्रत्यय केवल स्त्रीलिङ्ग में जोड़ा जाता है जो कभी न्ती और माणी के रूप में और कभी केवल 'ई' के रूप में प्रयुक्त होता है। इन प्रत्ययों के जुड़ने पर पूर्ववर्ती 'अ' का विकल्प से 'ए' होता है। इस तरह ईकारान्त और आकारान्त दोनों रूप स्त्रीलिङ्ग में होने से स्त्रीलिङ्ग में १० (४+४+२) रूप बनते हैं। संस्कृत में इस अर्थ में परस्मैपदी धातुओं में 'शतृ' (अत्) और आत्मनेपदी धातुओं में एवं कर्मणि प्रयोग में 'शानच्' (आन या मान) प्रत्यय होते हैं। परन्तु प्राकृत में ऐसा भेद नहीं है। जैसे—

धातु	पुं०	नपुं०	स्त्री०
हस् > हस = हंसना	हसन्तो हसमाणो हसेन्तो हसेमाणो	हसन्तं हसमाणं हसेन्तं हसेमाणं	हसन्ती हसेन्ती हसंता हसेंता हसमाणी हसेमाणी हसमाणा हसेमाणा हसई हसेई
भू > हो=होना	होअंतो होअमाणो होएंतो होएमाणो होंतो होमाणो	होअंतं होअमाणं होएंतं होएमाणं	होअंती होअमाणी होअइ होएई

---

[1] न्तमाणौ शतृशानचोः। ई च स्त्रियाम्। वर० ७.१०-११.
शत्रानशः। ई च स्त्रियाम्। हे० ८.३.१८१-१८२.

धातु	पुं०	नपुं०	स्त्री०
नी = ले जाना	नेंतो नेमाणो	नेन्तं नेमाणं	नेंती नेमाणी नेई
चल् > चल्ल = चलना	चल्लंतो चल्लमाणो	चल्लंतं चल्लमाणं	चल्लंती चल्लमाणी चल्लई
भण् > भण = कहना	भणंतो भणमाणो	भणंतं भणमाणं	भणंती भणमाणी भणई
पा = पाना	पाअंतो पाअमाणो	पाअंतं पाअमाणं	पाअंती पाअमाणी पाअई पांती पामाणी पाई

अन्य उदाहरण—गम् > गच्छंतो गच्छमाणो। वस् > वसंतो वसमाणो। कंप् > कंपंतो कंपमाणो। दा > देंतो देयमाणो। गा > गायंतो गायमाणो। वप् > वेवंतो वेवमाणो।

[**अन्य प्रयोग**—

(१) **कर्मणि वर्तमान कृदन्त**—(धातु+कर्मप्रत्यय+वर्तमान कृत् प्रत्यय) धातु में कर्मवाच्य के प्रत्यय (ईअ, इज्ज) जोड़कर न्त, माण और ई प्रत्यय जोड़ने पर कर्मवाच्य में वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप बनते हैं। जैसे—हस > हसीअंतो, हसीअमाणो, हसिज्जंतो, हसिज्जमाणो। भण् > भणीअंतो, भणीअमाणो, भणिज्जंतो, भणिज्जमाणो।

(२) **भावि वर्तमान कृदन्त**—(धातु+भावि प्रत्यय+वर्तमान कृत् प्रत्यय) धातु में भावि प्रत्यय (ईअ और इज्ज) जोड़कर वर्तमान कृदन्त के प्रत्यय जोड़ने पर भावि वर्तमान कृदन्त के रूप बनेंगे। जैसे—भण् > भणिज्जंतं, भणिज्जमाणं, भणीअंतं, भणीअमाणं।

(३) **प्रेरक कर्तरि वर्तमान कृदन्त**—(धातु + प्रेरक प्रत्यय + वर्तमान कृत् प्रत्यय) धातु के प्रेरक रूप (अ, ए, आव, आवे प्रत्ययान्त) में न्त, माण और ई प्रत्यय जोड़ने पर कर्तृवाच्य में प्रेरणार्थक वर्तमान कृदन्त के रूप बन

जाते हैं। जैसे--हस (हस्) ▷ हासन्तो हासेन्तो हासमाणो हासेमाणो हसावंतो हसावेंतो हसावमाणो हसावेमाणो। कर (कृ) ▷ कारंतो कारेंतो करावंतो करावेंतो कारमाणो कारेमाणो करावमाणो करावेमाणो।

(४) **प्रेरक कर्मणि वर्तमान कृदन्त**—(धातु+प्रेरक प्रत्यय+कर्म प्रत्यय+वर्तमान कृत् प्रत्यय) धातु में प्रेरक प्रत्यय जोड़कर उसमें कर्म प्रत्यय (ईअ; इज्ज) जोड़ें, पश्चात् न्त, माण और ई प्रत्यय जोड़ने पर कर्मवाच्य में प्रेरणार्थक वर्तमान कृदन्त के रूप बनेंगे। जैसे—हस (हस्) ▷ हासीअंतो (हस+अ+ईअ+न्त), हासीअमाणो, हासिज्जमाणो, हसावीअंतो, हसावीअमाणो, हसाविज्जंतो, हसाविज्जमाणो। कर (कृ) ▷ कारीअंतो, कारीअमाणो; कारिज्जंतो, कारिज्जमाणो; करावीअंतो, करावीअमाणो, कराविज्जंतो, कराविज्जमाणो।]

२. भूतकालिक कृदन्त

['अ']

भूतकाल में किसी कार्य की समाप्ति के अर्थ को प्रकट करने के लिए 'अ' का प्रयोग होता है। संस्कृत में एतदर्थ क्त (त) और क्तवतु (तवत्) प्रत्ययों का प्रयोग होता है। बहुत से ऐसे भूतकालिक कृदन्तों के प्रयोग मिलते हैं जो संस्कृत से ध्वनि परिवर्तन के नियमों से बने हैं। 'अ' को कहीं-कहीं 'द' और 'त' भी हो जाता है। भूतकालिक अ; द या त प्रत्ययों के जुड़ने पर धातु के अन्त्य 'अ' का 'इ' हो जाता है।[1] जैसे—गम (गम्) >गमि+अ=गमिअ।

धातु	अ (पुं०)	द (पुं०)	त (पुं०)	संस्कृत रूप
गम् ▷ गम—	गमिओ	गमिदो	गमितो	गतः (गया)
पठ् ▷ पढ—	पढिओ	पढिदो	पढितो	पठितः (पढ़ा)
कृ ▷ कर—	करिओ	करिदो	करितो	कृतः (किया)

अन्य उदाहरणं (नपुं०)—

हस >हसिअं (हसितम् = हँसा)। तुर >तुरिअं (त्वरितम् = शीघ्रता

---

[1] क्ते। हे० ८. ३. १५६।

की)। झा > झाअं (ध्यातम्=ध्यान किया)। चल > चलिअं (चलितम्=चला)। लु > लुअं (लूनम् = काटा)। चंकम > चंकमिअं (चङ्क्रमितं=घूमा)। लस > लसिअं (लसितम्=चमका)। हू > हूअं (भूतम् = हुआ)। सुस्सूस > सुस्सूसिअं (शुश्रूषितम्=सेवा की)। इसी तरह—पडिअं (पतितम्); पेसिअं (प्रेषितम्), गहीअं (गृहीतम्), पुच्छिअं (पृष्टम्), इच्छिअं (इच्छितम्)।

संस्कृत के सिद्ध शब्दों से ध्वनि परिवर्तन द्वारा निष्पन्न--

गयं (गतम्=गया)
मडं (मृतम् = मरा)
दड्ढं (दग्धम् = जला)
तत्तं (तप्तम्=तप्त)
जिअं (जितम् = जीता)
आणत्तं (आज्ञप्तम् = आज्ञा दी)
पण्णत्तं, पन्नत्तं (प्रज्ञप्तम्=जाना)
लुद्धं (लुब्धम्=लुब्ध हुआ)
सुयं (श्रुतम् = सुना)
गीयं (गीतम् = गाया)
संतं (श्रान्तम् = थका)

कडं (कृतम् = किया)
दिट्ठं (दृष्टम् = देखा)
नट्टं (नष्टम्=नष्ट हुआ)
हडं (हृतम् = हरण किया)
जाअं (जातम् = पैदा हुआ)
ठिअं (स्थितम् = स्थित हुआ)
भग्गं (भग्नम् = नष्ट किया)
संखयं, सक्कयं (संस्कृतम्=संस्कृत किया)
परूपिअं (प्ररूपितम् = निरूपित)
पीयं (पीतम् = पिया)
खित्तं (क्षिप्तम् = फेंका)

अन्य उदाहरण—भिण्णं (भिन्नम्), छिण्णं (छिन्नम्), दिण्णं (दत्तम्), जिण्णं (जीर्णम्), लीणं (लीनम्)।

[प्रेरणार्थक भूतकृदन्त—प्रेरणार्थक आवि और इ ('इ' प्रत्यय होने पर उपान्त्य 'अ' को 'आ' होता है) जोड़ने के बाद भूतकृदन्त प्रत्यय धातु में जोड़ने से प्रेरणार्थक भूतकृदन्त के रूप बनते हैं। जैसे—कर+आवि=करावि+अ=कराविअं (कारितम् = करवाया या कराया), हस > हसाविअं हासिअं (हासितम् = हँसवाया या हँसाया), कर + इ = कारि + अ = कारिअं (कारितम्)।

विशेष—

[प्राकृत में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के भूतकृदन्त में यद्यपि कोई भेद नहीं है परन्तु कहीं-कहीं संस्कृत के कर्मणि भूतकृदन्त में 'वं' जोड़कर भेद करते हैं। जैसे—कृ > कय+वं = कयवं (कृतवान्), पुट्ठवं (स्पृष्टवान्)]

३. भविष्यत् कृदन्त

[इस्संत, इस्समाण और इस्सई]

भविष्यत् काल में जब किसी कार्य के होते रहने का बोध होता है तो वहाँ इस्संत, इस्समाण और इस्सई ('इस्सई' केवल स्त्रीलिङ्ग में) प्रत्यय होते हैं। संस्कृत में स्यतृ और स्यमाण प्रत्यय होते हैं। वस्तुतः वर्तमानकालिक प्रत्ययों में भविष्यत् बोधक 'इस्स' जोड़ने से ही भविष्यत्कालिक प्रत्यय बने हैं। जैसे—कर+इस्संत = करिस्संतो (करिष्यन् = करता होगा), करिस्समाणो (करिष्यमाणः), करिस्सई (करिष्यन्ती = करती होगी), भविस्संतो भविस्समाणो भविस्सई आदि।

४. सम्बन्ध सूचक भूत कृदन्त (पूर्वकालिक क्रिया)

[तुं, तूण तथा—अ, तुआण, इत्ता, इत्ताण, आय, आए]

'कर' या 'करके' अर्थ में अर्थात् जब एक कर्ता की एकाधिक क्रियाएँ होती हैं तो पूर्वकालिक क्रिया बोधक धातुओं में तुं (उं), तूण (ऊण) आदि प्रत्यय जोड़े जाते हैं।[1] तुआण (उआण); इत्ता, इत्ताण, आय और आए प्रत्ययों का प्रयोग प्रायः अर्धमागधी प्राकृत में होता है। संस्कृत में इस प्रयोजन के लिए उपसर्गरहित धातुओं में क्त्वा (त्वा) और सोपसर्ग धातुओं में ल्यप् (य) प्रत्यय जुड़ता है। परन्तु प्राकृत में ऐसा भेद नहीं है।

नियम—(१) सम्बन्ध सूचक भूत कृदन्त के प्रत्ययों (आय और आए को छोड़कर) के पूर्ववर्ती 'अ' को 'इ' और 'ए' आदेश होते हैं। (२) तूण, तुआण और इत्ताण के णकार पर विकल्प से अनुस्वार होता है। जैसे—हस+तुं =

---

[1] क्त्वस्तुमत्तूणतुआणाः। हे० ८. २. १४६.

हसिउं, हसेउं (हसित्वा)। हस+अ=हसिअ, हसेअ (हसित्वा)। हस+तूण=हसिऊण,–णं, हसेऊण,–णं (हसित्वा)। हस + तुआण=हसिउआण,–णं हसेउआण,–णं (हसित्वा)। हस+इत्ता=हसित्ता, हसेत्ता (हसित्वा)। हस+इत्ताण=हसित्ताण,–णं, हसेत्ताण,–णं (हसित्वा)। गह+आय=गहाय (गृहीत्वा)। संपेह+आए=संपेहाए (संप्रेक्ष्य)। आया+आए=आयाए (आदाय)।

तुं और तूण के अन्य उदाहरण—हो>होउं होऊण,–णं (भूत्वा), भण>भणिउं भणिऊण (भणित्वा), नम>नमिउं नमिऊण (नमित्वा), दा>दाउं दाऊण (दत्वा), कर>करिउं करिऊण (कृत्वा), पढ>पढिउं पढिऊण (पठित्वा), गच्छ>गच्छिउं गच्छिऊण (गत्वा), ठा>ठाउं ठाऊण (स्थित्वा), पा>पाउं पाऊण (पीत्वा), लिह>लिहिउं लिहिऊण (लिखित्वा)।

तूण के अन्य उदाहरण—'तूण' प्रत्यय का विशेष रूप से प्रयोग होता है। अतः उसके कुछ अन्य उदाहरण हैं--पासिऊण (देखकर), इच्छिऊण (इच्छाकर), खेलिऊण (खेलकर), वंदिऊण (वन्दनाकर); भुंजिऊण (भोजनकर), धाविऊण (दौड़कर), णच्चिऊण (नाचकर), सयिऊण, सोऊण (सोकर), णेऊण (ले जाकर), खाऊण (खाकर), लिहिऊण (लिखकर), पुच्छिऊण (पूंछकर), कहिऊण (कहकर), दाऊण (देकर) आदि।

अनियमित सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त—काउं काऊण (कृत्वा), घेत्तुं घेत्तूण (गृहीत्वा), दट्ठुं दट्ठूण (दृष्ट्वा), भोत्तुं भोत्तूण (भुक्त्वा), मोत्तुं मोत्तूण (मुक्त्वा), वोत्तुं वोत्तूण (उक्त्वा) आदि।

ध्वनि परिवर्तन से बने भूतकृदन्त—सुत्ता (सुप्त्वा), बुज्झा (बुद्ध्वा), णच्चा नच्चा (ज्ञात्वा); आयाय (आदाय), गत्ता गच्चा (गत्वा), वंदित्ता (वन्दित्वा), आहच्च (आहृत्य), समेच्च (समेत्य) आदि।

[**प्रेरणार्थक सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त**—प्रेरणार्थक प्रत्यय जोड़ने के बाद तुं, तूण आदि को जोड़ने से प्रेरणार्थक सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त के रूप बनते हैं। जैसे – भण+आवि=भणावि+तूण=भणाविऊण (भाणयित्वा=कहलाकर); कर+आवि=करावि+तूण=कराविऊण (कारयित्वा=करवाकर)।]

५. हेत्वर्थक या निमित्तार्थक कृदन्त

[तुं, दुं और त्तए]

जब कोई क्रिया किसी दूसरी क्रिया के निमित्त से की जाती है तो उसे हेत्वर्थक या निमित्तार्थक ('को' या 'के लिए' अर्थ में) क्रिया कहते हैं। इस अर्थ में तुं (उं), दुं और त्तए प्रत्यय होते हैं। 'त्तए' प्रत्यय का प्रयोग अर्धमागधी में ज्यादा होता है। शौरसेनीं में 'दुं' का प्रयोग होता है। संस्कृत में निमित्त अर्थ में 'तुमुन्' (तुम्) प्रत्यय होता है। हेत्वर्थक कृत् प्रत्ययों के जुड़ने पर पूर्ववर्ती 'अ' के स्थान पर 'इ' और 'ए' हो जाते हैं।[1] सम्बन्ध-सूचक भूतकृदन्त का 'तुं' प्रत्ययान्त रूप तथा हेत्वार्थक 'तुं' प्रत्ययान्त रूप एक समान होते हैं। जैसे—

हस+तुं (उं)=हसिउं, हसेउं (हसितुम्=हँसने के लिए)। हस+दुं=हसिदुं, हसेदुं (हसितुम्)। हस+त्तए=हसित्तए हसेत्तए (हसितुम्)।

अन्य उदाहरण—भण+तुं=भणिउं, भण+दुं=भणिदुं (भणितुम्)। खेलिउं खेलिदुं (खेलितुम्)। पढिउं पढिदुं (पठितुम्)। कर+त्तए=करित्तए (कर्तुम्)। गम+त्तए=गमित्तए (गन्तुम्)। पास+त्तए=पासित्तए (द्रष्टुम्)। दा > दाउं (दातुम्)। पा > पाउं (पातुम्)। नी > णेउं (नेतुम्)।

अनियमित (ध्वनि परिवर्तन से सिद्ध) हेत्वर्थक कृदन्त—काउं (कर्तुम्), घेत्तुं (ग्रहीतुम्), दट्ठुं (द्रष्टुम्), भोत्तुं (भोक्तुम्), रोत्तुं (रोदितुम्), लद्धुं (लब्धुम्), जोद्धुं (योद्धुम्), वोत्तुं (वक्तुम्) आदि।

[**प्रेरणार्थक हेत्वर्थक कृदन्त**—एतदर्थ धातु में प्रेरणार्थक प्रत्यय जोड़ने के बाद हेत्वर्थक प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे—भण+आवि=भणावि=तुं = भणाविउं। कर+आवि+तुं=कराविउं।]

६. विध्यर्थक कृत्य प्रत्यय

[तव्व, अणिज्ज और अणीअ]

विधि, चाहिए, योग्यता आदि अर्थों में तव्व (अव्व), अणिज्ज और अणीअ

---

[1] एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु। हे० ८. ३. १५७.

प्रत्यय होते हैं। संस्कृत में इस अर्थ में तव्यत्, अनीयर् आदि (तव्य, केलिमर्, यत्, क्यप और ण्यत्) प्रत्यय होते हैं। प्राकृत में विध्यर्थक मुख्य प्रत्यय 'अणिज्ज' है। 'अणीअ' प्रायः मागधी और शौरसेनी में मिलता है।

नियम एवं उदाहरण—'तव्व' प्रत्यय के पूर्ववर्ती 'अ' के स्थान पर प्रायः 'इ' और 'ए' होता है।[1] अन्यत्र 'अ' का लोप हो जाता है। जैसे—हस+तव्व (अव्व)=हसिअव्वं हसेअव्वं (हसितव्यम्)। हस+अणिज्ज=हसणिज्जं। हस+अणीअ=हसणीअं (हसनीयम्)।

धातु	तव्व (अव्व)	अणिज्ज	अणीअ
कृ > कुण	कुणिअव्वं	कुणणिज्जं	कुणणीअं
स्तु > थुण	थुणिअव्वं	थुणणिज्जं	थुणणीअं
ज्ञा > जाण	जाणिअव्वं	जाणणिज्जं	जाणणीअं
ज्ञा > मुण	मुणिअव्वं	मुणणिज्जं	मुणणीअं
स्था > थक्क	थक्किअव्वं	थक्कणिज्जं	थक्कणीअं
स्था > चिट्ठ	चिट्ठिअव्वं	चिट्ठणिज्जं	चिट्ठणीअं

अन्य उदाहरण—जैसे—श्रु (सुण)–सुणिअव्वं, सुणणिज्जं सुणणीअं (श्रोतव्यम्, श्रवणीयम्)। पा (पिज्ज)–पिज्जिअव्वं। हन् (हण)—हणिअव्वं। भू (हुव)–हुविअव्वं। लू (लुण)–लुणिअव्वं। धृ (धर)—धरिअव्वं। तृ (तर)–तरिअव्वं। हृ (हर)–हरिअव्वं। स्मृ (सुमर)–सुमरिअव्वं। जागृ (जग्ग)–जग्गिअव्वं। गर्ज (बुक्क)–बुक्किअव्वं। कथ् (बोल्ल)–बोल्लिअव्वं। खिद् (खिज्ज)–खिज्जिअव्वं। क्रुध् (कुज्झ)–कुज्झिअव्वं। स्वप् (लोट्ट)—लोट्टिअव्वं। लिप् (लिम्प)–लिम्पिअव्वं। क्षुभ् (खुब्भ)–खुब्भिअव्वं। दृश् (दट्ठ)–दट्ठिअव्वं। स्पृश् (फास)–फासिअव्वं। भाष् (बुक्क)–बुक्किअव्वं। मृग (मग्ग)–मग्गिअव्वं। ग्रह् (घेत्त)–घेत्तव्वं। नम् (नव)–नविअव्वं। नृत् (नच्च)–नच्चिअव्वं। वृध् (वड्ढ)–वड्ढिअव्वं। बुध् (बुज्झ)- बुज्झिअव्वं। युध् (जुज्झ)–जुज्झिअव्वं। इष् (इच्छ)–इच्छिअव्वं। रम (मोट्टाय)–मोट्टायअव्वं। पूज् (पूअ)–पूअणिज्जं, पूअणीअं;

---

[1] वही।

पूअव्वं । कृ (कर)–कातव्वं । मुच् (मुच) मोत्तव्वं । भुज (भुज)–भोत्तव्वं । दृश्, (देक्ख)–देक्खिअव्वं, । दृश् (दट्ठ)–दट्ठव्वं । वच् (वच)–वोत्तव्वं ।

अनियमित अन्य विध्यर्थ कृदन्त—कज्जं (कार्यम्), जन्नं (जन्यम्), भव्वं (भव्यम्), पेज्जं (पेयम्), गेज्जं (गेयम्), सज्झं (सह्यम्), देज्जं देअं (देयम्), पच्चं (पाच्यम्), वक्कं (वाक्यम्), वज्जं (वर्ज्यम्), गुज्झं (गुह्यम्), गेज्झं (ग्राह्यम्), किच्चं (कृत्यम्) ।

[**प्रेरक विध्यर्थ कृदन्त**—धातु में प्रेरक प्रत्यय जोड़ने के वाद विध्यर्थ प्रत्यय जोड़े जाते हैं । जैसे—हस्+आवि=हसावि+तव्व=हसाविअव्वं (हसापयितव्यम्) ।]

७ शीलधर्मवाचक (कर्तृवाचक) कृदन्त

[इर]

शीलधर्म (स्वभाव) वाचक अर्थ में 'इर' प्रत्यय होता है[1] (संस्कृत में इस अर्थ में = कर्ता अर्थ में तृच्, णिनि आदि प्रत्यय होते हैं) । जैसे—हस+इर=हसिरो (हसनशीलः), हस+इर+आ=हसिरा, हस+इर+ई=हसिरी (हसनशीला) । नव+इर=नविरो (नमनशीलः) ।

अनियमित—पायगो पायओ (पाचकः), लेहओ (लेखकः), हंता (हन्ता), कुंभआरो (कुम्भकारः), वत्ता (वक्ता), कत्ता (कर्त्ता), विज्जं (विद्वान्), नायगो नायओ (नायकः), कम्मआरो (कर्मकारः), थणंधयो (स्तनंधयः) ।

---

[1] १–शीलाद्यर्थस्येरः । हे० ८.२. १४५.

षष्ठ अध्याय : तद्धित प्रत्यय

किसी विशेष अर्थ को प्रकट करने के लिए संज्ञादि शब्दों में जिन प्रत्ययों को जोड़ा जाता है उन्हें तद्धित (तत्+हित=तेभ्य: प्रयोगेभ्य: हिता इति तद्धिता: =जो विभिन्न प्रयोगों के काम आवें) प्रत्यय कहते हैं। इन प्रत्ययों के जुड़ने पर जो शब्द बनते हैं, उन्हें तद्धितान्त कहते हैं। प्रमुख तद्धित प्रत्यय निम्न हैं—

१. अपत्यार्थक

[अ, ई, आयण, एय आदि]

अपत्य (सन्तान=पुत्र या पुत्री) अर्थ में अ, ई, आयण, एय आदि (ईण आदि) प्रत्यय संस्कृतवत् होते हैं।[1] किसी वंश या गोत्र में उत्पन्न पौत्र आदि के लिए भी अपत्यार्थक प्रत्ययों का प्रयोग होता है। संस्कृत में अपत्यादि के अर्थ में अण् (अ), इञ् (इ) आदि (यत्=य, ढक्=एय, ण्य=य, घ=इय, ठक्=इक; अञ्=अ, यञ्=य, फक्=आयन् आदि) प्रत्यय होते हैं।

उदाहरण—वसुदेव+अ=वासुदेवो (वसुदेवस्स अपत्तं)=वासुदेव:। दसरह+ई=दासरही (दसरहस्स अपत्तं)=दाशरथि:। सिव (शिव)+अ=सेवो (सिवस्स अपत्तं)=शैव:। नड+आयण=नाडायणो (नडस्य अपत्तं) = नालायन:। नर+आयणो=नारायणो (नरस्य अपत्तं)=नारायण:। कुलडा+एय=कोलडेया (कुलडाए अपत्तं)=कौलडेय:।

२. अतिशयार्थक=तुलनार्थक

[अर, अम, ईअस और इट्ठ]

जब दो की तुलना में किसी एक का उत्कर्ष या अपकर्ष बतलाया जाता है (Comparative degree) तो विशेषण वाचक शब्द में अर और ईअस प्रत्यय होते हैं तथा जब दो से अधिक की तुलना में किसी एक का उत्कर्ष या अपकर्ष बतलाया जाता है (Superlative degree) तो अम और इट्ठ प्रत्यय

होते हैं। ये चारों प्रत्यय संस्कृत के तरप्, तमप्, ईयसुन्, और इष्ठन् के ही प्राकृत रूप हैं।[1] जैसे—

विशेषण शब्द	**तरप् (अर)**	**तमप् (अम)**
अहिअ (अधिक)	अहिअअर	अहिअअम
अप्प (अल्प)	अप्पअर	अप्पअम
हलु (लघु)	हलुअर	हलुअम
उज्जल (उज्ज्वल)	उज्जलअर	उज्जलअम
तिक्ख (तीक्ष्ण)	तिक्खअर	तिक्खअम
पिअ (प्रिय)	पिअअर	पिअअम
थूल (स्थूल)	थूलअर	थूलअम
मिउ (मृदु)	मिउअर	मिउअम
खुद्द (क्षुद्र)	खुद्दअर	खुद्दअम
विउस (विद्वस्)	विउसअर	विउसअम
दीहर (दीर्घ)	दीहरअर	दीहरअम

विशेषण शब्द	**ईयसुन् (ईअस)**	**इष्ठन् (इट्ठ**
गुरु > गर	गरीअस	गरिट्ठ
वहु > भू	भूयस	भूइट्ठ
अप्प > कण (अल्प)	कणीअस	कणिट्ठ
वुड्ढ > जा (वृद्ध)	जायस	जेट्ठ
पावी (पापी)	पावीयस	पाविट्ठ

३. मत्वर्थीय

[आलु, इल्ल, उल्ल, आल, वंत, मंत, इत्त, इर और मण]

किसी वस्तु का स्वामी होना (जिसे हिन्दी में 'वान्' अथवा 'वाला' के द्वारा प्रकट किया जाता है) अर्थ में आलु, इल्ल, उल्ल; आल, वंत, मंत आदि

---

[1] अतिशायिकात्त्वातिशायिका: संस्कृतवदेव सिद्धः। हे० ८.२.१७२ (वृत्ति)।

प्रत्यय होते हैं ।[1] संस्कृत में इस अर्थ में 'मतुप्' (मत् या वत्) आदि (इनि, ठन्, इतच् आदि) प्रत्यय होते हैं । मत्वर्थीय शब्दों का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है-(१) तद् अस्य अस्ति (इसके पास है) और (२) तद् अस्मिन् अस्ति (इसमें है) । जैसे—

आलु—ईसा+आलु=ईसालु > ईसालू (ईर्ष्यावान्), दया+आलु=दयालू (दयावान्), लज्जा+आलु=लज्जालू (लज्जावान्), नेह+आलू=नेहालू (स्नेहवान्); संकालू, सद्धालू, णिद्दालू ।

इल्ल—सोहा+इल्ल=सोहिल्ल > सोहिल्लो (शोभावान्), घाम+इल्ल= छाया+इल्ल=छाइल्लो, घामिल्लो (घर्मवान्), (छायावान्), गव्विल्लो (गर्ववान्), गुणिल्लो (गुणवान्) कंटइल्लो (कंटकितः) ।

उल्ल—दप्प+उल्ल=दप्पुल्ल > दप्पुल्लो (दर्पवान्), वियार+उल्ल=वियारुल्लो (विचारवान्), मंस+उल्ल=मंसुल्लो (श्मश्रुवान्) ।

आल—रस+आल=रसाल > रसालो (रसवान्), जोण्हा+आल=जोण्हालो (ज्योत्स्नावान्), सद्द+आल=सद्दालो (शब्दवान्), जडा+आल=जडालो (जटावान्), धण+आल=धणालो (धनवान्) ।

वंत—भत्ति+वंत=भत्तिवंत > भत्तिवंतो (भक्तिमान्); धणवंतो (धनवान्) ।
मंत—सिरि+मंत=सिरिमंत > सिरिमंतो (श्रीमान्), पुण्णमंतो (पुण्यवान्) ।
इत्त—कव्व+इत्त=कव्वइत्त > कव्वइत्तो (काव्यवान्), माणइत्तो (मानवान्) ।
इर—गव्व+इर=गव्विर > गव्विरो (गर्ववान्), रेहिरो (रेखावान्) ।
मण—धण+मण=धणमण > धणमणो (धनवान्), बीहामणो (भीमान्) ।

४. इदमार्थक

[केर, एच्चय]

इदमर्थ ('यह इसका') इस सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने के लिए 'केर' प्रत्यय

---

१. आल्विल्लोल्लाल-वन्त-मन्तेत्तेर-मणा मतोः । हे० ८. २. १५९.

जोड़ा जाता है ।[1] संस्कृत में छ (ईय), अण् और खञ् (ईन्) प्रत्यय जोड़े जाते हैं । युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे संस्कृत के 'अण्' के स्थान पर 'एच्चय' आदेश होता है ।[2] जैसे--पर+केर=परकेरं (परस्य इदं=परकीयम्=दूसरे का), राजन् >राय+केर=रायकेरं (राज्ञः इदं=राजकीयम्=राजा का), पर+क्क=परक्कं पारक्कं (परकीयम्)[3] । अम्ह (अस्मद्)+केर=अम्हकेरं (अस्माकमिदम्=अस्मदीयम्=हमारा); अम्ह+एच्चय=अम्हेच्चयं (आस्माकम्=हमारा); तुम्ह+केर=तुम्हकेरं (युष्माकमिदम् =युष्मदीयम्=तुम्हारा), तुम्ह+एच्चय=तुम्हेच्चयं (यौष्माकम्=तुम्हारा)। राजन्+इक्क=राइक्कं (राजकीयम्) ।[4]

५ भावार्थक

[डिमा, त्तण]

भाववाचक संज्ञायें (हिन्दी में जिसे 'पन' जोड़कर और अंग्रेजी में 'Ness' जोड़कर प्रकट करते हैं) बनाने के लिए डिमा (इमा) और त्तण प्रत्यय होते हैं ।[5] संस्कृत में त्व, तल् (ता), ष्यञ् (य), इमनिच् (इमन्) आदि प्रत्यय होते हैं । डिमा प्रत्ययान्त शब्द सदा स्त्रीलिङ्ग में और त्तण प्रत्ययान्त शब्द सदा नपुं० होते हैं । जैसे--

पुप्फ+डिमा (इमा)=पुप्फिमा (पुष्पत्वम्) । लघु >लघिमा । पुप्फ+त्तण=पुप्फत्तणं (पुष्पत्वम्) । फलत्तणं, माणुसत्तणं; देवत्तणं, महुरत्तणं । पीण+डिमा =पीणिमा (पीनत्वम्), पीण+त्तण=पीणत्तणं ।

विशेष—कभी-कभी संस्कृत के त्व और तल् (ता) का भी प्रयोग होता है । प्राकृत में त्व का 'त्त' हो जाता है ।[6] जैसे—पुप्फत्तं (पुष्पत्वम्), पीणत्तं पीणया (पीनता), फलत्तं; माणुसत्तं ।

---

१. इदमार्थस्य केरः । हे० ८. २ १४७.

२. युष्मदस्मदोऽञ एच्चयः । हे० ८. २. १४९.

३. परराजभ्यां क्क-डिक्कौ च । हे० ८. २. १४८.

४. वही ।

५. त्वस्य डिमा त्तणौ वा । हे० ८. २.१५४.

६. त्वादे सः । हे० ८. २. १७२.

६. भवार्थक

[इल्ल और उल्ल]

किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु के वर्तमान होने के अर्थ में इल्ल और उल्ल प्रत्यय होते हैं ।[1] संस्कृत में इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं । जैसे—गाम+इल्ल=गामिल्लो (ग्रामे भवः=गाँव में है), गामिल्ली (ग्रामे भवा), उवरि+इल्ल=उवरिल्लं (उपरि भवम्), हेट्ठ (अधस्)+इल्ल=हेट्ठिल्लं (अधो भवम्); पुर+इल्ल=पुरिल्लं (पुरे भवम्), अप्प+उल्ल=अप्पुल्लं (आत्मनि भवम्), नयर+उल्ल=नयरुल्लं (नगरे भवम्) ।

७. सादृश्यार्थक

[व्व]

सादृश्य (यह इसके समान है) अर्थ में संस्कृत के वति (वत्) प्रत्यय के स्थान पर 'व्व' होता है ।[2] जैसे—महु+व्व=महुव्व (मधुवत्); चंदव्व (चन्द्रवत्) ।

८. आवृत्यर्थक

[हुत्त, खुत्त]

'दो बार, तीन बार' आदि अर्थ प्रकट करने के लिए (कितने बार क्रिया की आवृत्ति की गई है, इसकी गणना करने के लिए) संख्यावाची शब्दों में 'हुत्त' प्रत्यय होता है ।[3] इसे ही आर्ष प्राकृत में 'खुत्त' हो जाता है । संस्कृत में कृत्वसुच्, सुच् आदि प्रत्यय होते हैं । जैसे—एय+हुत्त=एयहुत्तं (एककृत्वः = एकवारम्), दु+हुत्त = दुहुत्तं (द्विवारम्), ति+हुत्त=तिहुत्तं (त्रिः = त्रिवारम्), सयहुत्तं (शतवारम्), सहस्सहुत्तं (सहस्रवारम्) ।

९. विभक्त्यर्थक क्रिया-विशेषण

[त्तो, दो, हि, ह, त्थ]

(१) **पञ्चम्यर्थक** (त्तो, दो)—पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में त्तो और दो

---

[1] डिल्ल–डुल्लौ भवे । हे० ८. २. १६३.

[2] वतेर्व्वः । हे० ८. २. १५०.

[3] कृत्वसो हुत्तं । हे० ८. २. १५८.

प्रत्यय होते हैं।[1] संस्कृत में इस अर्थ में तसिल् (तः) प्रत्यय होता है। जैसे--सव्व+त्तो, सव्व+दो=सव्वदो सव्वओ (सर्वतः), अन्नत्तो (अन्यतः), एकत्तो (एकतः), तत्तो (ततः), इत्तो (इतः), जत्तो (यतः), कुत्तो (कुतः)।

(२) **सप्तम्यर्थक** (हि, ह, त्थ)—सप्तमी विभक्ति के अर्थ में संस्कृत के त्रल् (त्र) के स्थान पर 'हि, ह और त्थ' प्रत्यय होते हैं।[2] जैसे—त+हि=तहि, त+ह=तह, त+त्थ=तत्थ (तत्र); कहि, कह, कत्थ (कुत्र); अन्नत्थ (अन्यत्र); जत्थ (यत्र)।

१०. परिमाणार्थक

[इत्तिअ; डेत्तिअ, डेत्तिल, डेद्दह]

परिमाण अर्थ प्रकट करने के लिए इत्तिअ, डेत्तिअ (एत्तिअ), डेत्तिल (एत्तिल) और डेद्दह (एद्दह) प्रत्यय होते हैं जो यद्, तद् आदि शब्दों में जुड़ते हैं।[3] संस्कृत में इस अर्थ में वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है। जैसे—ज (यत्) + इत्तिअ=जित्तिअं (यावत्), ज+एत्तिअ=जेत्तिअं (यावत्), ज+एत्तिल=जेत्तिलं (यावत्), ज+एद्दह=जेद्दहं (यावत्)। इसी प्रकार–तित्तिअं, तेत्तिअं, तेत्तिलं, तेद्दहं (तावत्), इत्तिअं (एतावत्), केत्तिअं कित्तियं केत्तिलं, (कियत्)।

११. कालार्थक

[सि, सिअं, इआ]

जब, तब आदि काल का बोध कराने के लिए एक्क (एक) शब्द में सि, सिअं और इआ प्रत्यय होते हैं।[4] अन्यत्र संस्कृत में प्रयुक्त 'दा' प्रत्यय ही ध्वनि-परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होता है। जैसे—एक्क+सि=एक्कसि (एकदा), एक्कसिअं, एक्कइआ (एकदा), सव्वआ (सर्वदा), कया (कदा)।

---

[1] त्तो दो तसो वा। हे० ८. २. १६०.

[2] त्रयो हि-ह-त्थाः। हे० ८. २. १६१.

[3] यत्तदेतदोतोरित्तिअ एतल्लुक् च। इदं किमश्च डेत्तिअ–डेत्तिल–डेद्दहाः। हे० ८. २. १५६–१५७.

[4] वैकाद्दःसि सिअं इआ। हे० ८. २. १६२.

१२. स्वार्थिक

[अ, इल्ल, उल्ल, ल, ल्ल आदि]

संस्कृत के स्वार्थिक 'क' प्रत्यय के स्थान पर अ, इल्ल, उल्ल, ल, तथा ल्ल आदेश होते हैं ।[१] जैसे—चंद+अ=चंदओ चंदो (चन्द्रकः) । हिअय+अ=हिअयअं हिअयं (हृदयकम्) । पल्लव+इल्ल=पल्लविल्लो पल्लवो (पल्लवः) । पुरो या पुरा+इल्ल=पुरिल्लो । हत्थ+उल्ल=हत्थुल्लो हत्थो (हस्तः) । पत्त+ल=पत्तलं । अन्ध+ल=अंधलो । विज्जु+ल=विज्जुला । नव+ल्ल=नवल्लो । एक+ल्ल=एकल्लो । [**विशेष**—अन्य स्वार्थिक प्रत्ययों के प्रयोग–(१)–मानाक् शब्द से डयम् (अय) और डिअम् (इय)[२]—मण् (मनाक्)+अय=मणय >मणयं; मण+इय=मणिय > मणियं, मणा (मनाक्) । (२) शनि शब्द से डिअम (इय)[३]—सणिअं (शनैः) । (३) दीर्घ शब्द से रो (र)[४]—दीह (दीर्घ)+रो=दीहरं दीहं (दीर्घम्) । (४) विद्युत, पत्र, पीत और अन्ध शब्द से ल[५]—विज्जुला विज्जू (विद्युत्), पत्तलं (पत्रम्); पीअलं (पीतम्) । (५) नव और एक शब्द से ल्लो[६]—नवल्लो (नवकः), एकल्लो एक्को (एककः) । (६) भ्रू को मया और डमया (अमया)[७]–भुमया, भमया । (७) 'ऊपर का कपड़ा' अर्थ में ल्ल[८]—अवरिल्लो = अवरि (उपरि) + ल्ल (उपरितनः) । अन्यत्र केवल ऊपर अर्थ में अवरिं (उपरि) । (८) मिश्र शब्द में विकल्प से डालिअ (आलिअ) प्रत्यय होता है ।[९]—मीसालिअं (मिश्रम्) अथवा मीसं ।]

---

१. स्वार्थे कश्च वा । हे० ८. २. १४६.

२. मनाको न वा डयम् । हे० ८. २. १६९.

३. शनैः सो डिअम् । हे० ८. २. १६८.

४. रो दीर्घात् । हे० ८. २. १७०.

५. विद्युत्पत्रपीतान्धाल्लः । हे० ८. २. १७३.

६. ल्लो नवैकाद्वा । हे० ८. २. १६५.

७. भ्रुवो मया डमया । हे० ८. २. १६७.

८. उपरेः संव्याने । हे० ८. २. १६६.

९. मिश्राड्डालिअः । हे० ८. २. १७०.

सप्तम अध्याय : स्त्री प्रत्यय

पुंल्लिङ्ग संज्ञाओं से स्त्रीलिङ्ग की संज्ञायें बनाने के लिए जिन प्रत्ययों को जोड़ा जाता है उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते हैं। संस्कृत में ये आठ प्रकार के हैं—टाप्, डाप्, चाप् ('आ' वर्ग), ङीप्, ङीष्, ङीन् ('ई' वर्ग), ऊङ् (ऊ) और ति। सामान्यरूप से प्राकृत में संस्कृत के ही समान स्त्री प्रत्ययों का विधान है। प्राकृत में ये ३ प्रकार के हैं—आ, ई और ऊ। जैसे—

(क) 'आ' प्रत्यय—

प्रायः अकारान्त शब्दों में 'आ' जोड़ा जाता है—वाल+आ = वाला (वाला), वच्छा (वत्सा), मूसिया (मूषिका), चडआ (चटका), पोढा (प्रौढा); अजा (अजा), कोइला (कोकिला), निउणा (निपुणा), पढमा (प्रथमा), मलिणा (मलिना), चउरा (चतुरा)।

(ख) 'ई' प्रत्यय—

(१) संस्कृत के नकारान्त और तकारान्त (मतुप् एवं शतृ प्रत्ययान्त) शब्दों में 'इ' प्रत्यय होता है। जैसे—

क. नकारान्त—राया+ई = राणी (राजन्=राज्ञी), बंभण+ई = बंभणी (ब्रह्मन् = ब्राह्मणी), हत्थिणी (हस्तिन् = हस्तिनी), मालिणी (मालिन्=मालिनी)।

ख. तकारान्त—सिरीमअ+ई=सिरीमई (श्रीमत्=श्रीमती), धणवअ+ई=धणवई (धनवत्=धनवती), हसन्ती (हसन्=हसन्ती), पाअंती (पिबत्=पिबन्ती), पठन्ती (पठन्ती), पुत्तवई (पुत्रवती); गुणवई (गुणवती)।

(२) संस्कृत के षित् (नर्तक, खनक, पथिक आदि) और गौरादिगण (गौर, मत्स्य, मनुष्य आदि) में पठित अकारान्त शब्दों में—णट्टअ+ई=णट्टई (नर्तकी), खणअ+ई=खणई (खनकी); पहिअ + ई=पहिई (पथिकी), गोर+ई=गोरी (गौरी), माणुस+ई=माणुसी (मानुषी), णअ+ई=णई (नटी), मंडल+ई=मंडली (मण्डली), कअल+ई=कअली (कदली), सुंदरी (सुन्दरी); पडी (पटी), माआमही (मातामही), मच्छी (मत्सी)।

(३) अकारान्त जातिवाचक शब्दों में (पत्नी अर्थ में)—बंभण=बंभणी (ब्राह्मण=ब्राह्मणी), हंसी, सीही (सिंही), वग्घी (व्याघ्री), मअ >मई (मृगी), हरिणी, घोडी (देशी शब्द), सारसी, चंडाली, रक्खसी (राक्षसी), निसाअरी (निशाचरी), गोवी (गोपी), सियाली (शृगाली)।

(४) संस्कृत के इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम (महत् अर्थ में), अरण्य (महत् पर्व में), यव (दुष्ट अर्थ में), यवन् (लिपी अर्थ में), मातुल, उपाध्याय (इन दोनों में 'आण' का आगम नहीं भी होता है) और आचार्य शब्दों में पत्नी अर्थ में स्त्री प्रत्यय 'ई' के पूर्व 'आण' जोड़ा जाता है। जैसे–इंद+आण+ई=इंदाणी (इन्द्रस्य जाया=इन्द्राणी), भवाणी (भवानी=पार्वती), सव्वाणी (शर्वाणी), रुद्दाणी (रुद्राणी), मिडाणी (मृडाणी), जवणाणी (यवनानां लिपिर्यवनानी), जवाणी (दुष्टो युवा युवानी), माउलाणी माउली (मातुलानी, मातुली), उवज्झायाणी उवज्झाया (उपाध्यायानी=उपाध्याय की पत्नी उपाध्यायी, उपाध्याया = अध्यापिका), हिमाणी (महद् हिमं हिमानी), आयरिअ >आयरियाणी (आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी, स्वयं व्याख्यात्री आचार्या), खत्तियाणी खत्तिया (क्षत्रियाणी क्षत्रिया), अय्याणी अय्या (अर्याणी अर्या)।

(५)–निम्न स्थलों में विकल्प से 'ई' होता है—

क. अजातिवाचक शब्दों में[1]–नीली नीला, काली काला, इमीए इमाए, हसमाणी हसमाणा (हसमाना)।

ख. संस्कृत के छाया और हरिद्रा शब्दों में[2]—छाही छाया, हलद्दी हलद्दा।

ग. नखान्त और मुखान्त शब्दों में वज्जणही वज्जणहा (वज्रनखा), सुप्पणही सुप्पणहा (शूर्पणखा), गोरमुही गोरमुहा (गौरमुखी), कालमुही कालमुहा।

घ. संस्कृत के नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दन्त, कर्ण और शृङ्ग शब्दों में—तुंगनासिई तुंगनासिआ (तुङ्गनासिका), दीहोअरी दीहोअरा (दीर्घोदरा)।

---

[1] अजातेः पुंसः। हे० ८. ३. ३२.

[2] छाया-हरिद्रयोः। हे० ८. ३. ३४.

ङ. संस्कृत के जानपद कुण्ड, गोण, स्थल, भाग, नाग, कुश, कामुक आदि शब्दों में––जाणवदी जाणवदा (जानपदी=वृत्तिश्चेद् वर्ततेऽनयेति जीविका; जानपदा=जनपदवासिनी), कुण्डी कुण्डा (कुण्डी=कमण्डलुः या जारजा स्त्री; कुण्डा=दहनीया), थली थला (स्थली आकृत्रिमा भूमिः, स्थला परिष्कृता भूमिः); गोणी गोणा (गोणी=आवपनम्=ओप्यते निक्षिप्यते धान्यं यस्मिन्, गोणा=यादृच्छिक नाम), भाजी भाजा (भाजी=पक्व, भाजा=अपक्व), कुसी कुसा (कुशी=लौह-विकार, कुशा=रस्सी), कामुई कामुआ (कामुकी=मैथुनेच्छा वाली, कामुका=धनादि की इच्छावाली)।

च. बहुव्रीहि समास में अवयव-वाचक शब्द में––चंदमुही चंदमुहा (चन्द्रमुखी), सुएसी सुएसा (सुकेशी)।

छ. धर्मपत्नी के अर्थ में––पाणिगहीदी (पाणिगृहीती), अन्यत्र पाणिगहीदा (पाणिगृहीता)।

(ग) 'ऊ' प्रत्यय—कहीं-कहीं आर्य शब्द में 'ऊ' जुड़ता है––अज्ज+ऊ=अज्जू अज्जआ (आर्या)

कुछ अन्य स्त्री-प्रत्ययान्त शब्द—गिहवइ >गिहवण्णी (गृहपत्नी), अहिवइ >अहिवण्णी (अधिपत्नी), सहा >सही (सखी), जुवा >जुवती (युवती), सुद्द >सुद्दा सुद्दी (शूद्री=शूद्रपत्नी, शूद्रा=जाति), तुअ >तुअंती (तुदन्ती तुदती=व्यथित करती हुई), कुम्भआरो >कुम्भआरी (कुम्भकारी), सुवण्णआरो >सुवण्णआरी (स्वर्णकारी), बालओ >बालिआ (बालिका), पुरिसो >इत्थी (स्त्री), माहणो >माहणी (ब्राह्मणी), गोवो >गोवी गोवा (गोपी गोपा), मऊरो >मऊरी (मयूरी); पिओ >माआ (माता), भाया >बहिणी (भगिनी), सुत्तगारो >सुत्तगारी (सूत्रकारी), सीसो >सीसा (शिष्या), सेट्ठि >सेट्ठिणी (श्रेष्ठिनी), पइ >भज्जा (भार्या), बीयो >बीया (द्वितीया), निउणो >निउणा (निपुणा), अयलो >अयलो (अचला), महिसो >महिसी (महिषी), अओ >अआ (अजा), संखपुप्फो >संखपुप्फी (शंखपुष्पी), तरुणो=तरुणी (तरुणी), णायओ=णायिआ (नायिका), विउसो >विउसी (विदुषी)।

●

अष्टम अध्याय : अव्यय एवं उपसर्ग

(क) अव्यय—

अव्यय पद हमेशा सभी विभक्तियों, सभी वचनों और सभी लिङ्गों में अविकृत होते हैं। कुछ अव्यय तो संस्कृत-अव्ययों के स्वर-व्यञ्जन परिवर्तन के द्वारा बने हैं तथा कुछ स्वतन्त्र अव्यय हैं जो संस्कृत में नहीं मिलते हैं। उपसर्ग भी अव्यय होते हैं। अतः उनका भी यहाँ निर्वचन किया गया है।

अकारादि क्रम से कुछ प्रसिद्ध अव्यय[1]—

अ (च) और
अइ (अति) अतिशय
अइ (अयि) सम्भावना
अइरं (अचिरम्) शीघ्र
अइरेण (अचिरेण)
अईव (अतीव) अत्यधिक
अओ (अतः) इसलिए
अकट्टु (अकृत्वा) नहीं करके
अग्गओ (अग्रतः) आगे
अग्गे (अग्रे) पहले
अच्चत्थं (अत्यर्थम्) अधिक अर्थ
अज्ज (अद्य) आज
अण, णाइं (अन = नञ्) निषेध
अण्णमण्णं, अण्णोण्णं, अन्नमन्नं, अन्नोन्नं (अन्योन्यम्) आपस में
अण्णहा (अन्यथा) विपरीत
अण्णया (अन्यदा) दूसरे समय
अणंतरं (अनन्तरम्) पश्चात्, विना
अप्पणो, सयं (आत्मनः, स्वयम्) खुद
अवरज्ज (अपरेद्युः) दूसरे दिन
अभिक्खं, अभिक्खणं (अभीक्ष्णम्) बारम्बार
अभितो (अभितः) चारों ओर
अम्मो—आश्चर्य
अरे—रतिकलह (अरे मए समं मा करेसु उवहासं=अरे मया समं मा कुरु उपहासम्)
अलं (अलम्) बस, पर्याप्त
अलाहि–निवारण (अलाहि किं वाइएण लेहेण=मा, किं वाचितेन लेखेन)

---

[1] देखें, हेमचन्द्र-व्याकरण ८. २. १७५ से २१८ तक।

अव्वो—सूचना; दुःख; संभाषण; अपराध, विस्मय; आनन्द; आदर; भय, खेद, विषाद, पश्चात्ताप

अवस्सं (अवश्यम्) अवश्य

अवरिं (उपरि) ऊपर

पि, वि, अपि (अपि) प्रश्न, सम्भावना, समुच्चय

असइं (असकृत्) कई बार

अह (अथ) पश्चात्

अह, अहे (अधस्) नीचे

अहत्ता, हेट्ठा (अधस्तात्) नीचे

अहइं (अथ किम्) और क्या

अहत्ताः (अधस्तात्) नीचे

अहव, अहवा, अदुवा, अदुव (अथवा) पक्षान्तर

अहुणा (अधुना) इस समय

अहे, अह (अधः) नीचे

आम (ओम्) स्वीकृतिसूचक (आम बहला वणोली=हाँ, यह सघन वनपंक्ति है)

इ, जे, र—पादपूरक

इओ (इतः) यहाँ से

इच्चत्थो (इत्यर्थः) भावार्थ

इत्थ (अत्र) यहाँ

इयाणिं (इदानीम्) इस समय

इर (किल) निश्चय

इव, मिव, पिव; विव; व्व, व, विअ (इव) सादृश्य

इह (इह) यहाँ

इहरा, इयरथा (इतरथा) अन्यथा

ईसिं, ईसि (ईषत्) थोड़ा

उअ—देखो (उअ णिच्चलणिप्फंदा = पश्य निश्चलनिष्पन्दा)

उअ (उत्) विकल्प; प्रश्न

उच्चअ (उच्चैः) उन्नत

उवरिं, उवरि, उप्पि (उपरि) ऊपर

ऊ—गर्हा=निन्दा, आक्षेप=तिरस्कार, विस्मय, सूचना (ऊ णिल्लज्ज = अरे धिक् निर्लज्ज। ऊ किं मए भणिअं=ऊ, किं मया भणितम्? ऊ कह मुणिआ अहयं= ऊ कथं ज्ञाता अहम्? ऊ केण न विण्णायं = ऊ केन न विज्ञातम्)

एअं (एतत्) यह

एकइआ, एक्कइआ, एक्कया, एगइया, एगदा (एकदा) एक समय

एक्कसरिअं—शीघ्र, सम्प्रति

एगयओ (एकैकतः) एक-एक

एतावता, एयावया (एतावता) इतना

एत्थं, एत्थ, इत्थ (अत्र) यहाँ

एव (एव) ही

एवं (एवम्) इस तरह

एमेव, एवमेव (एवमेव) इसी तरह

ओ—सूचना, पश्चात्ताप
कओ (कुतः) कहाँ से
कत्थइ (कुत्रचित्) कहीं
कल्लं (कल्यम्) कल (आने वाला)
कह, कहं (कथम्) कैसे
कहि, कहिं (कुत्र) कहाँ
काहे (कर्हि) कब, किस समय
किणा, किण्णा, किणो (किन्नु) प्रश्न
किर, किल, इर, हिर (किल) निश्चय
केवच्चिरं, केवच्चिरेण (कियच्चिरम् कियच्चिरेण) कितनी देर से
केवलं (केवलम्) सिर्फ
खलु, खु, हु (खलु) निश्चय, वितर्क, संभावना, विस्मय
चिअ, च्च, चेअ, जेव, ज्जेव, ज्जेव्व, जेव्व (एव) निश्चय ही
जइ (यदि) जो
जओ (यतः) क्योंकि
जत्थ (यत्र) जहाँ
जह, जहा (यथा) जैसे
जहेव (यथैव) जिस प्रकार से
जं (यत्) जो, क्योंकि
जाव (यावत्) जब तक
जे, इ, र—पादपूरक
जेण (येन) किसी एक वस्तु को जानकर उससे सम्बन्धित अन्य वस्तु की कल्पना (भमररुअं जेण कमलवणं = भ्रमर का शब्द होने से कमल का वन है)
जेव, ज्जेव, ज्जेव्व, जेव्व (एव) निश्चय
झत्ति (झटिति) शीघ्र
ण (न) निषेध
णवि—वैपरीत्य
णइ—अवधारण (गईए णइ=गत्या एव= गति से ही)
णं (नं) वाक्यालंकार
णमो (नमः) नमस्कार
णवर, णवरं—केवल (णवर पिआइं = केवलं प्रियाणि)
णवरि—अनन्तर (णवरि अ से रहुवइणा = अनन्तरं च तस्य रघुपतिना)
णाइं, अण (नञ्) नहीं।
णाणा (नाना) अनेक
णूणं, णूण (नूनम्) निश्चय
णो (नो) निषेध
तए, ताहे (तदा) तब
तओ, तत्तो, तत्तो (ततः) इसके बाद
तं (अथ) वाक्यारम्भ में शोभारूप (तं तिअसवंदिमोक्खं=अथ त्रिदशबंदिमोक्षम्
तत्थ, तहिं, तहि (तत्र) वहाँ
तह, तहा (तथा) उस तरह

तहेव (तथैव) उसी तरह
तिरियं (तिर्यक्) तिरछा
तीअं (अतीतम्) बीता हुआ
तु (तु) किन्तु
तेण (तेन) जेण के समान (भमररुअं तेण कमलवणं)
थू (थूत्) कुत्सा=घृणा
दर—आधा, थोड़ा, (दर विअसिअं= अर्धमीषद्वा विकसितम्)
दिवारत्तं (दिवारात्रम्) दिन रात
दुहओ, दुहा (द्विधा) दो प्रकार
दे—संमुखीकरण एवं सखि-आमन्त्रण (दे पसिअ ताव सुन्दरि=हे सुन्दरि प्रसीद तावत् । दे आ पसिअ निअत्तसु=हे सखि ! आ प्रसीद निवर्त्तस्व)
धुवं (ध्रुवं) निश्चय
धाह (धिक्) निर्वेद तिरस्कार
णिच्चं, निच्चं (नित्यम्) हमेशा
पइदिणं (प्रतिदिनम्) प्रतिदिन
पच्चुअ (प्रत्युत) विपरीत
पगे—प्रातःकाल में
पच्छा (पश्चात्) पीछे
पडिरूवं (प्रतिरूपम्) समान
परज्जु (परेद्युः) कल, दूसरे दिन
परं (परम्) परन्तु
परंमुहं (पराङ्मुखम्) विमुख
परसवे (परश्वः) परसों आने वाला
परितो (परितः) चारों ओर
परोप्परं, परुप्परं (परस्परम्) आपस में
पसय्ह (प्रसह्य) जबर्दस्ती
पाडिक्कं, पाडिएक्कं (प्रत्येकम्) प्रत्येक
पातो (प्रातः) प्रातःकाल
पायो, पाओ (प्रायः) बहुधा
पि (अपि) भी
पुण, पुणो (पुनः) फिर
पुणरुत्तं—किए हुए को बारंबार करना (पेच्छ पुणरुत्तं=बारबार देखो)
पुणरवि (पुनरपि) फिर भी
पुरओ (पुरतः) आगे, सम्मुख
पुरत्था (पुरस्तात्) आगे, सम्मुख
पुरा (पुरा) पहले
पुहं, पिहं (पृथक्) अलग
पेच्च (प्रेत्य) परलोक में
बले—निर्धारण एवं निश्चय (बले पुरिसो धणंजओ खत्तिआणं=क्षत्रियों में वास्तविक पुरुष धनञ्जय है । बले सीहो=सिंह एवायम्=यह सिंह ही है)
बहिं (बहिः) बाहर
भुज्जो (भूयः) बार-बार
मणयं (मनाक्) थोड़ा
मणे, मण्णे (मन्ये) वितर्क
मुसा (मृषा) झूठ

मुहु (मुहुः) बार-बार

मा (मा) निषेध

माइं (मा) नहीं (माइं काहीअ रोसं =माऽकार्षीद् रोषम्)

मामि, हला, हले, दे, सहि—सखि के आमन्त्रण में

मोरउल्ला (मुधा) व्यर्थ

य (च) और

ह्यो (ह्यः) कल (बीता हुआ)

र, इ, जे–पादपूरक

रहो (रहः) एकान्त

रे–संभाषण

लहु (लघु) शीघ्र

वणे–निश्चय, विकल्प, अनुकम्पा

वे (वै) निश्चय

वेअ (एव) अवधारण

वेव्व–आमन्त्रण

वेव्वे–भय, वारण, विषाद; आमन्त्रण

व्व, व, विअ (इव) समान

सइ (सदा) सदा

सइ (सकृत्) एक बार

सक्खं (साक्षात्) प्रत्यक्ष

सज्जो (सद्यः) शीघ्र

सद्धिं (सार्धम्) साथ

सणिअं (शनैः) धीरे

सपक्खिं (सपक्षम्) सपक्ष

समं (समम्) साथ

सम्मं (सम्यक्) भली प्रकार

सयं (स्वयम्) स्वयं

सया (सदा) हमेशा

सव्वओ (सर्वतः) सभी ओर

सह (सह) साथ

सहसा (सहसा) अचानक

सिय, सिअ (स्यात्) कथञ्चित्

सुवत्थि (स्वस्ति) कल्याण

सुवे (श्वः) कल (आने वाला)

सू—निन्दासूचक

हरे (अरे) आक्षेप, रतिकलह, संभाषण

हला—सखी के लिए सम्बोधन

हला (हला) सखी के आमन्त्रण में

हले, मामि (हले) सखी के आमन्त्रण में

हद्धि (हा धिक् !) निर्वेद, खिन्नता

हन्द—ग्रहण करो

हन्दि—विषाद, पश्चात्ताप आदि

हिर (किल) निश्चय

हु, खु—निश्चय, वितर्क, संभावना; विस्मय

हुं (हुम्) दान, पृच्छा और निवारण (हुं गेण्ह अप्पणो च्चिअ = हुं गृहाण आत्मनः एव। हुं साहसु सब्भावं= हुं कथय सद्भावम्। हुं निल्लज्ज समोसर = हुं निर्लज्ज समवसर)

अव्ययों के कुछ प्रकार—

(१) **समुच्चय बोधक**—एक वाक्य को दूसरे वाक्य से जोड़ने वाले। जैसे—

क. संयोजक—य, अह, अहो (अथ), उद, उ (तु), किंच आदि।

ख. वियोजक—वा, किंवा, तु, किंतु आदि।

ग. शर्तसूचक—जइ, चेअ, णोचेअ (नोचेत्), जइवि, तहावि, जदि आदि।

घ. कारणार्थक—हि, तेण आदि।

ङ. प्रश्नार्थक—उद, किं, किमुद, णु आदि।

च. कालार्थक—जाव, ताव, जदा, तदा, कदा आदि।

(२) **मनोविकार सूचक**—मन के भावों के बोधक। जैसे—

क. अव्वो = दुःख, विस्मय, आदर, भय, पश्चात्ताप आदि।

ख. हं = क्रोध।

ग. हन्दि = विषाद, पश्चात्ताप, विकल्प, निश्चय, सत्य, ग्रहण आदि।

घ. वेव्वे = भय, वारण, विषाद।

ङ. हुं, खु = वितर्क, सम्भावना, विस्मय आदि।

च. ऊ = आक्षेप, गर्हा, विस्मय आदि।

छ. अम्मो, अम्हो = आश्चर्य।

ज. रे, अरे, हरे = रतिकलह।

झ. हद्धी = निर्वेद।

उवसग्ग (उपसर्ग)—

जो अव्यय क्रिया के पहले जुड़कर उसके अर्थ में वैशिष्ट्य या परिवर्तन करते हैं उन्हें उपसर्ग कहते हैं। जैसे—हरइ (हरति=ले जाता है), अवहरइ (अपहरति=अपहरण करता है), आहरइ (आहरति=लाता है), पहरइ (प्रहरति=प्रहार करता है), विहरइ (विहरति = विहार करता है) आदि।

संस्कृत के २२ उपसर्गों में से 'निस्' का अन्तर्भाव 'निर्' में और 'दुस्' का अन्तर्भाव 'दुर्' में करके प्राकृत में मूलतः २० उपसर्ग हैं जो स्वर-व्यञ्जन

परिवर्तन से कई रूपों में मिलते हैं। जैसे—प (प्र), परा (परा), ओ-अव (अप), सं (सम्); अणु अनु (अनु), ओ अव (अव), नि नी ओ (निर्), दु दु (दुर्), अहि अभि (अभि), वि (वि), अहि अधि (अधि), सु सू (सु), उ (उत्); अइ अति (अति), णि नि (नि), पडि पइ परि (प्रति), परि पलि (परि), पि वि अवि (अपि), ऊ ओ उव (उप), आ (आङ्) ।

नोट—अप, अव, और उप के स्थान पर 'ओ' विकल्प से होता है।[1] उप के स्थान पर 'ऊ' भी होता है।[2] अपि के अ का लोप भी विकल्प से होता है।[3] स्वर के बाद में आने पर 'पि' को 'वि' हो जाता है। जैसे—केण वि, केणावि; तं पि, तमवि। 'माल्य' शब्द के साथ 'निर्' उपसर्ग को 'ओ' तथा 'स्था' धातु के साथ 'प्रति' उपसर्ग को 'परि' आदेश विकल्प से होते हैं।[4] जैसे–निर्माल्यम् > ओमालं, निम्मल्लं। प्रतिष्ठा >परिट्ठा, पइट्ठा।

अर्थ और प्रयोग—

(१) प (प्रकर्ष)—पभासेइ (प्रभाषते)।
(२) परा (विपरीत)—पराजिअइ (पराजयते)।
(३) ओ, अव (दूर)—ओसरइ, अवसरइ (अपसरति)।
(४) सं (अच्छी तरह)—संखिवइ (संक्षिपति)।
(५) अणु, अनु (पीछे या साथ)–अणुगमइ (अनुगच्छति), अनुमई (अनुमतिः)।
(६) ओ, अव (नीचे, दूर, अभाव)—ओआसो, अवयासो (अवकाशः), ओअरइ (अवतरति)।
(७) ओ, नि, नी (निषेध, बाहर, दूर)—निग्गओ (निर्गतः), नीसहो (निस्सहः), ओमालं, निम्मल्लं (निर्माल्यम्)।

---

[1] अवापोते। हे० ८.१.१७२.
[2] ऊच्चोपे। हे० ८.१.१७३.
[3] पदादपेर्वा। हे० ८.१.४१.
[4] ओत्परीमाल्यस्थोर्वा। हे० ८.१.३८.

(८) दु, दू (कठिन, खराब)—दुन्नयो (दुर्नयः), दूहवो (दुर्भगः) ।

(९) अहि, अभि (ओर)–अहिगमणं(अभिगमनम्), अभिहणइ (अभिहन्ति) ।

(१०) वि (अलग होना; बिना)–विणओ (विनयः), विकुब्बइ (विकुर्वति) ।

(११) अहि, अधि (ऊपर)—अहिरोहइ (अधिरोहति) ।

(१२) सु, सू (सुन्दर, सहज)—सुअरं (सुकरम्), सूहवो (सुभगः) ।

(१३) उ (ऊपर)—उग्गच्छइ (उद्गच्छति), उग्गओ (उद्गतः) ।

(१४) अइ; अति (बाहुल्य, उल्लंघन)— अइसओ अतिसओ (अतिशयः), अच्चंतं (अत्यन्तम्) ।

(१५) णि, नि (अन्दर; नीचे)—णियमइ (नियमति), निविसइ (निविशते) ।

(१६) पडि, पइ, परि (ओर, उलटा)—पडिआरो (प्रतिकारः), परिट्ठा पइट्ठा (प्रतिष्ठा) ।

(१७) परि; पलि (चारों ओर)–परिवुडो (परिवृत्तः), पलिहो (परिघः) ।

(१८) पि, वि, अवि (भी, निकट, प्रश्न)–किमवि, किं पि (किमपि), को वि (कोऽपि) ।

(१९) ऊ, ओ, उव (निकट)–उवासणा (उपासना), ऊआसो; ओआसो, उवआसो (उपवासः), ऊज्झाओ, ओज्झाओ, उवज्झाओ (उपाध्यायः) ।

(२०) आ (तक)—आसमुद्दं (आसमुद्रम्) ।

नवम अध्याय : कारक एवं विभक्ति

प्राकृत में यद्यपि कारक एवं विभक्तियों के प्रयोग-सम्बन्धी नियम संस्कृत के ही समान हैं परन्तु व्यवहार में नियमों वा व्यतिक्रम भी देखा जाता है। जैसे—

(१) चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी[1]—प्राकृत भाषा में चतुर्थी विभक्ति के रूप केवल अवशेष के रूप में मिलते हैं; अन्यथा सर्वत्र षष्ठी विभक्ति के ही रूपों का प्रयोग मिलता है। चतुर्थी के बहुवचन के रूप तो पूर्णरूप से षष्ठी विभक्ति वाले हैं। जैसे—मुणिस्स मुणीण वा देइ (मुनये मुनिभ्यो वा ददाति=मुनि अथवा मुनियों के लिये देता है। नमो देवस्स (देवाय) देवाण वा (नमः देवाय देवेभ्यः वा = देवताओं के लिये नमस्कार है)।

(२) द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी के स्थान पर षष्ठी[2]—कहीं-कहीं द्वितीयादि विभक्तियों के स्थान पर भी षष्ठी देखी जाती है। जैसे—
(क) द्वितीया >षष्ठी—सीमाधरस्स वन्दे (सीमाधरं वन्दे = सीमाधर की वन्दना करता हूँ)। तिस्सा मुहस्स भरिमो (तस्याः मुखं स्मरामः = उसके मुख का स्मरण करते हैं)। **(ख) तृतीया >षष्ठी**—धणस्स लद्धो (धनेन लब्धः = धन से प्राप्त)। चिरस्स मुक्का (चिरेण मुक्ता = चिरकाल से मुक्त हुई)। तेसिमेअमणाइण्णं (तैरेतदनाचरितम् = उनके द्वारा यह आचरित नहीं हुआ है)। **(ग) पञ्चमी >षष्ठी**—चोरस्स बीहइ (चोराद्बिभेति = चोर से डरता है)। **सत्तमी >षष्ठी**—पिट्ठीए केसभारो (पृष्ठे केशभारः = पीठ पर बालों का भार)।

(३) द्वितीया और तृतीया के स्थान पर सत्तमी[3]—कभी-कभी द्वितीया

---

१. चतुर्थ्याः षष्ठी । हे० ८. ३. १३१.

२. क्वचिद्द्वितीयादेः । हे० ८. ३. १३४.

३. द्वितीया-तृतीययोः सप्तमी । हे० ८. ३. १३५.

और तृतीया के स्थान पर सप्तमी होती है। जैसे—(क) गामे वसामि (ग्रामं वसामि = गाँव में रहता हूँ)। नयरे न जामि (नगरं न यामि = नगर को नहीं जाता हूँ)। (ख) मइ वेविरीए मलिआइं (मया वेपित्रा मृदितानि = काँपती हुई मेरे द्वारा मृदित किये गये)। तिसु तेसु अलंकिया पुहवी (त्रिभिः तैरलंकृता पृथ्वी = उन तीनों के द्वारा पृथ्वी अलंकृत हुई है)।

(४) पञ्चमी के स्थान पर तृतीया और सप्तमी[1]—कभी-कभी पञ्चमी के स्थान पर तृतीया एवं सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे—(क) चोरेण बीहइ (चोराद् बिभेति = चोर से डरता है)। (ख) विज्जालयस्मि पढिउं आगओ बालो (विधालयात् पठित्वा आगतो बालः = विद्यालय से पढ़कर बालक आ गया है)।

(५) सप्तमी एवं प्रथमा के स्थान पर द्वितीया[2]—सप्तमी के स्थान पर कभी-कभी द्वितीया होती है। प्रथमा के स्थान पर भी सप्तमी देखी जाती है। जैसे—(क) विज्जुज्जोयं भरइ रत्तिं (विद्युज्ज्योतं स्मरति रात्रौ = रात्रि में विद्युत के प्रकाश का स्मरण करता है)। (ख) चउवीसंपि जिणवरा (चतुर्विंशतिरपि जिनवराः = चौबीस तीर्थङ्कर भी)।

(६) सप्तमी के स्थान पर तृतीया[3]—आर्ष प्राकृत (अर्धमागधी) में सप्तमी के स्थान पर तृतीया भी देखी जाती है। जैसे—तेणं कालेणं, तेणं समएणं (तस्मिन् काले तस्मिन् समये = उस समय में)।

विभक्ति-सम्बन्धी सामान्य नियम—

संस्कृत में छः कारक और सात विभक्तियाँ मानी जाती हैं। सम्बोधन अलग विभक्ति नहीं है, अपितु प्रथमा ही है। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है उसे केवल विभक्ति माना जाता है। कारकों का विभक्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है

---

[1] पञ्चम्यास्तृतीया च। हे० ८. ३. १३६.

[2] सप्तम्या द्वितीया। हे० ८. ३. १३७ तथा वृत्ति।

[3] वही।

क्योंकि विभक्ति शब्द का अर्थ है–'जिसके द्वारा संख्या और कारक का बोध हो' (संख्याकारकबोधयित्री विभक्तिः)। जो किसी न किसी रूप में क्रिया का साधक (निर्वर्तक) होता है, वह कारक कहलाता है। निम्न छः कारक हैं—

१. **कर्तृ कारक**—क्रिया का प्रधान सम्पादक अर्थात् जो क्रिया के करने में स्वतंत्र होता है और धात्वर्थ के व्यापार का आश्रय होता है।

२. **कर्मकारक**—क्रिया के फल का आश्रय अर्थात् क्रिया के द्वारा कर्त्ता जिसे विशेषरूप से प्राप्त करना चाहता है।

३. **करण कारक**—क्रिया के सम्पादन में प्रमुख सहायक (साधकतम)।

४. **सम्प्रदान कारक**—क्रिया का उद्देश्य अर्थात् जिसके लिए क्रिया की जाए या कुछ दिया जाए। प्राकृत में इस कारक के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है (अपवाद के रूप में चतुर्थी विभक्ति का भी प्रयोग मिलता है)।

५. **अपादान कारक**—क्रिया का विश्लेष अर्थात् जिससे कोई वस्तु अलग हो।

६. **अधिकरण कारक**–क्रिया का आधार अर्थात् क्रिया जिस स्थान पर हो।

कारकों का सम्बन्ध बाह्य जगत् के पदार्थों से है क्योंकि बाह्य जगत् में जो क्रिया होती है उसे निष्पन्न करने वाले पदार्थ कारक कहे जाते हैं। विभक्तियाँ भिन्न-भिन्न कारकों को प्रकट करती हैं और उनका सम्बन्ध बाह्य जगत् के पदार्थों से न होकर शब्द रूपों से है। द्वितीयादि विभक्तियाँ कारकों के अतिरिक्त उपपदों के साथ भी प्रयुक्त होती हैं। अतः उन्हें दो भागों में विभक्त किया जाता है—(१) **कारक विभक्ति** (क्रिया को उद्देश्य करके प्रयुक्त होने वाली) और (२) **उपपाद विभक्ति** (अव्यय आदि पदों को उद्देश्य करके प्रयुक्त होने वाली)। दोनों में कारक विभक्ति बलवान् मानी गई है।

सामान्यतः कर्तृ वाच्य के कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, करण में तृतीया, सम्प्रदान में चतुर्थी, अपादान में पञ्चमी, स्व-स्वामिभाव आदि सम्बन्धों में षष्ठी तथा अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है।

कर्मवाच्य के कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है; शेष सम्प्रदान आदि कारक कर्तृवाच्य के ही समान प्रयुक्त होते हैं। इस तरह कर्ता में सर्वदा प्रथमा और कर्म में सर्वदा द्वितीया विभक्ति ही नहीं होती है, अपितु कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा भी होती है। कर्ता और कर्म में (कृदन्त-क्रिया का प्रयोग होने पर) षष्ठी विभक्ति भी देखी जाती है।

वस्तुतः वैयाकरणों के शाब्दबोध के नियमानुसार प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिकार्थ[1] में होती है, कर्ता में नहीं। षष्ठी विभक्ति का क्रिया से सीधा सम्बन्ध न होने के कारण उसे कारक नहीं कहा जाता है।

सातों विभक्तियों के प्रयोग-सम्बन्धी नियम निम्न हैं—

प्रथमा विभक्ति

निम्न स्थलों में प्रथमा विभक्ति होती है[2]—

(क) प्रातिपदिकार्थमात्र में—जब शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना अभीष्ट हो। जैसे—जिणो, वाऊ, सयंभू, णाणं आदि। **(ख) लिङ्गमात्र के आधिक्य में**—इसके वे शब्द उदाहरण होंगे जो अनियतलिंग (विशेष्य के अनुसार जिनका लिंग बदल जाता है) वाले हैं। जैसे—तडो तडी तडं। जो नियतलिंग वाले शब्द हैं वे प्रातिपदिकार्थ के उदाहरण हैं। **(ग) परिमाण-मात्र में**—परिमाण वाचक शब्दों से जब परिमाण सामान्य का बोध कराना अभीष्ट होता है। जैसे—दोणो वीही (द्रोणो व्रीहिः = द्रोण नामक बटखरे से नपा हुआ धान्य)। **(घ) वचन मात्र में**—जब संख्यावाचक शब्दों से

---

[1] शब्द का उच्चारण करने पर जिस अर्थ की नियत-प्रतीति हो उसे प्रातिपदिक (Base or Crude form) का अर्थ कहते हैं 'नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः' अर्थात् जब किसी शब्द से उसके अर्थ मात्र का ज्ञान कराना अभीष्ट होता है (कर्ता आदि का नहीं) तो वहाँ प्रतिपादिकार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है।

[2] प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। सम्बोधने च।
अ० २. ३. ४६-४७.

संख्या-सामान्य का बोध करना अभीष्ट होता है। जैसे—एको (एकः), बहू (बहवः)। (ङ) **सम्बोधन में**—वक्ता का स्रोता को अपनी बात सुनने के लिए अपनी ओर आकृष्ट करना। जैसे—हे देवो (हे देव)।

द्वितीया विभक्ति

निम्न स्थलों में द्वितीया विभक्ति होती है—

(१) कर्तृवाच्य के अनुक्त कर्म (कर्त्ता का जो अभीष्टतम हो) में[1]। जैसे—मासेसु अस्सं बंधइ (माषेषु अश्वं बध्नाति=उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है)। पयेण ओदनं भुंजइ (पयसा ओदनं भुङ्क्ते=दूध से भात खाता है)। यहाँ कर्ता को यद्यपि 'ओदन' और 'पयस्' दोनों अभीष्ट हैं परन्तु अभीष्टतम केवल 'ओदन' है, अतः उसी में कर्मसंज्ञा होने से द्वितीया हुई है। प्रथम उदाहरण में बाँधने की क्रिया के द्वारा कर्ता अश्व को वशवर्ती करना चाहता है। अतः कर्ता को बन्धन-व्यापार द्वारा अश्व ही अभीष्ट है, न की 'माष'। 'माष' तो कर्म-संज्ञक अश्व के लिए अभीष्ट है। इसी प्रकार—हरिं भजइ (हरिं भजति=हरि को भजता है)। **गामं** गच्छइ (ग्रामं गच्छति=गाँव को जाता है)।

(२) द्विकर्मक धातुओं[2] का प्रयोग होने पर गौण कर्म(अकथित=अविवक्षित) में, यदि गौण कर्म में अपादान आदि की विवक्षा न हो।[3] **जैसे—माणवअं** पहं

---

[1] कर्तुरीप्सिततमं कर्म। कर्मणि द्वितीया। अ० १. ४. ४९;२. ३.२.

[2] दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

अर्थ—दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना); रुध् (रोकना); प्रच्छ् (पूछना); चि (चुनना), ब्रू (कहना), शास् (शासन करना), जि (जीतना), मथ् (मथना), मुष् (चुराना); नी (ले जाना), हृ (हरना); कृष् (खींचना) और वह (ढोना) ये १६ धातुयें द्विकर्मक हैं। इनके अतिरिक्त इनके समान अर्थवाली भिक्ष् (माँगना), भाष् (कहना) आदि धातुयें भी द्विकर्मक हैं।

[3] अकथितं च। अ० १. ४. ५१.

पुच्छइ(माणवकं पन्थानं पृच्छति=लड़के से रास्ता पूछता है)। यहाँ'पहं' मुख्य कर्म है क्योंकि कर्त्ता को मार्ग पूछना ही अभीष्टतम है। 'माणवक' अपादान कारक है। द्विकर्मक धातु का प्रयोग होने से तथा माणवक में अपादान कारक की अविवक्षा होने से माणवक गौणकर्म है। अपादान की विवक्षा होने पर पञ्चमी होगी—माणवत्तो पहं पुच्छइ (माणवकात् पन्थानं पृच्छति)। अन्य उदाहरण-- रुक्खं ओचिव्वइ फलाणि (वृक्षम्=वृक्षादवचिनोति फलानि=वृक्ष से फूलों को चुनता है)। **माणवअं** धम्मं सासइ (माणवकं=माणवकाय धर्मं शास्ति=लड़के के लिए धर्म का उपदेश देता है)।

(३) 'अधि' (अहि) उपसर्ग पूर्वक शी (शयन करना), स्था (चिट्ठ=ठहरना) और आस् (बैठना) धातुओं के आधार में[1]। जैसे—अहिचिट्ठइ वइउंठं हरी (अधितिष्ठति वैकुण्ठं हरिः=हरि वैकुण्ठ में रहते हैं)। अन्यत्र सप्तमी होगी—चिट्ठइ वइउंठम्मि हरी।

(४) अहि+नि+विस (विश्) धातु के योग में क्रिया के आधार में[2]। जैसे—अहिनिवसइ सम्मग्गं (अभिनिविशते सन्मार्गम्=सन्मार्ग में प्रवेश करता है)।

(५) उव, अनु, अहि तथा आ उपसर्ग के साथ 'वस' धातु के आधार में[3]। जैसे—हरि वइउंठं उववसइ अहिवसइ, आवसइ वा (हरिः वैकुण्ठमुपवसति अधिवसति आवसति वा=हरि वैकुण्ठ में निवास करते हैं)।

(६) अहिओ (अभितः=दोनों ओर), परिओ (परितः=सब ओर); समया (समीप), निकहा (निकषा=समीप), हा (खेद), पडि (प्रति=ओर); सव्वओ (सर्वतः), धिअ (धिक्), उवरि उवरि (उपरि उपरि=समीप), इन शब्दों के योग में इनका जिससे संयोग हो, उसमें[4]। जैसे—अहिओ परिओ वा

---

१. अधिशीङ्स्थासां कर्म। अ० १. ४. ४६.

२. अभिनिविशश्च। अ० १. ४. ४७.

३. उपान्वध्याङ्वसः। अ० १. ४. ४८.

४. अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि। वार्तिक।
उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। वार्तिक।

किसणं (अभितः परितः वा कृष्णम्=कृष्ण के दोनों ओर अथवा चारों ओर)। **गामं** समया (ग्रामं समया=गांव के पास)। निकहा **लंकं** (निकषा लङ्काम्=लङ्का के समीप)। हा **जिणाभत्तं** (धिक् जिणाभक्तम् = जिनेन्द्र देव के अनुपासक को धिक्कार है)।

तृतीया विभक्ति

निम्न स्थलों में तृतीया विभक्ति होती है—

(१) करण कारक (कर्ता को क्रिया की सिद्धि में सबसे अधिक सहायक) में[1]। जैसे—रामेण **बाणेण** हओ वाली (रामेण बाणेन हतो वालिः = राम के द्वारा बाण से वाली मारा गया)। यहाँ वाली को मारने में कर्ता को सर्वाधिक सहायक बाण है; अतः उसमें तृतीया विभक्ति हुई है। बालो **जलेण** मुहं पच्छालइ (बालो जलेन मुखं प्रक्षालयति=बालक जल से मुख धोता है)।

(२) कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के कर्ता में[2]। जैसे—(क) कर्मवाच्य में—**रामेण** बाणेण हओ वाली। (ख) भाववाच्य में—**मए** गम्मइ (मया गम्यते = मेरे द्वारा जाया जाता है)।

(३) प्रकृत्यादि शब्दों में[3]। जैसे—**पईइअ** चारू (प्रकृत्या चारुः=स्वभाव से मनोहर)। **रसेण** महुरो (रसेन मधुरः=रस से मीठा)। **गोत्तेण** गग्गो (गोत्रेण गर्गः=गोत्र से गर्ग)।

(४) कालवाचक और मार्गवाचक शब्दों में यदि अत्यन्त संयोग के साथ फलप्राप्ति भी हो[4]। जैसे—**दुवालसवरसेहिं** वाअरणं सुणइ (द्वादशवर्षैः व्याकरणं श्रूयते=बारह वर्षों तक व्याकरण सुनता है)। फल प्राप्ति न होने पर द्वितीया होती है।

---

[1] साधकतमं करणम्। कर्तृकरणयोस्तृतीया। अ० १. ४.४२; २. ३. १८.

[2] वही।

[3] प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्। वार्तिक।

[4] कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे। अपवर्गे तृतीया। अ० २. ३. ५-६.

(५) सह, समं, साअं और सद्धं के योग में अप्रधान (जो कर्ता का साथ देता है) में[1]। जैसे–**पुत्तेण** सह आअओ पिआ (पुत्रेण सह आगतः पिता=पुत्र के साथ पिता आया)। लक्खणो **रामेण** साअं समं सद्धं वा गच्छइ (लक्ष्मणः रामेण साकं समं सार्द्धं वा गच्छति=लक्ष्मण राम के साथ जाता है)।

(६) पिधं (पृथक्), विना और नाना (=विना) शब्दों के योग में तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी होती हैं।[2] जैसे--पिधं **रामेण रामं रामत्तो** वा (पृथक् रामेण रामं रामात् वा=राम से अलग)। जलं विना कमलं चिट्ठउं ण सक्कइ (जलं विना कमलं स्थातुं न शक्नोति=जल के विना कमल ठहर नहीं सकता है)।

(७) जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी में विकार मालूम हो, उस अङ्ग में[3]। जैसे--**पाएण** खंजो, **कण्णेण** बहिरो (पादेन खञ्जः कर्णेन बधिरः=पैर से लंगड़ा और कान से बहरा)।

(८) जिस हेतु (प्रयोजन) से कोई कार्य किया जाये, उस हेतु-वाचक में[4]। जैसे–**दंडेण** घडो जाओ (दण्डेन घटो जातः=दण्डे के कारण घड़ा उत्पन्न हुआ)। **पुण्णेण** दिट्ठो हरी (पुण्येन दृष्टो हरिः=भाग्य से हरि के दर्शन हुए)। **अज्झयणेण** वसइ (अध्ययनेन वसति=अध्ययन के हेतु से रहता है)।

(९) जिस चिह्न-विशेष से किसी को पहचाना जाये, उसमें[5]। जैसे— **जडाहि** तावसो (जटाभिः तापसः=जटाओं से तपस्वी प्रतीत होता है)।

चतुर्थी विभक्ति

निम्न स्थलों में चतुर्थी विभक्ति होती है (प्राकृत में चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी होने से वस्तुतः षष्ठी विभक्ति होती है)--

---

१. सहयुक्तेऽप्रधाने। अ० २. ३. १९.

२. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्। अ० २. ३. ३२.

३. येनाङ्गविकारः। अ० २. ३. २०.

४. हेतौ। अ० २. ३.२३.

५. इत्थंभतलक्षणे। अ० २. ३. २१.

(१) दान-कर्म के द्वारा कर्ता जिसे सन्तुष्ट करना चाहता है, उसमें[1] (सम्प्रादान कारक में)। जैसे–**विप्पाय विप्पस्स** वा गावं देइ (विप्राय गां ददाति=ब्राह्मण के लिए गाय दान में देता है)।

(२) रुच्यर्थक धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाले में[2]। जैसे–**हरिणो** रोयइ भत्ती (हरये रोचते भक्तिः=हरि को भक्ति अच्छी लगती है)। तस्स वाआ **मज्झं** न रोयइ (तस्य वार्ता मह्यं न रोचते=उसकी बात मुझे अच्छी नहीं लगती है)। **बालकस्स** मोअआ रोअन्ते (बालकाय मोदकाः रोचन्ते=बालक के लिए लड्डू अच्छे लगते हैं)।

(३) 'कर्ज लेना' धातु के योग में ऋण देने वाले में[3]। जैसे–सामो **अस्सपइणो** सयं धरइ (श्यामः अश्वपतये शतं धारयति = श्याम ने अश्वपति से एक सौ रुपया उधार लिया)। **भत्ताय भत्तस्स** वा धरइ मोक्खं हरी (भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः=भक्त के लिए हरि मोक्ष के ऋणी हैं)।

(४) सिह (स्पृह्) धातु के योग में जिसे चाहा जाये, उसमें[4]। जैसे–**पुप्फाणं** सिहइ (पुष्पेभ्यः स्पृहयति=फूलों को चाहता है)।

(५) कुज्झ (क्रुध्), दोह (द्रुह्), ईस (ईर्ष्य्) तथा असूअ (असूय्) धातुओं के योग में तथा इनके समान अर्थ वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोधादि किया जाये, उसमें[5]। जैसे–**हरिणो** कुज्झइ दोहइ ईसइ असूअइ वा (हरये क्रुध्यति द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति वा=हरि के ऊपर क्रोध करता है, द्रोह करता है, ईर्ष्या करता है, असूया करता है)।

---

[1] कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्। चतुर्थी सम्प्रदाने। अ० १ ४. ३२; २. ३. १३.

[2] रुच्यार्थानां प्रीयमाणः। अ० १. ४. ३३.

[3] धारेरुत्तमर्णः। अ० १. ४. ३५.

[4] स्पृहेरीप्सितः। अ० १. ४. ३६.

[5] क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः। अ० १. ४. ३७.

(६) नमो, सुत्थि (स्वस्ति), सुआहा (स्वाहा); सुहा (स्वधा) तथा अलं के योग में[1] । जैसे–**हरिणो** नमो (हरये नमः=हरि के लिए नमस्कार)। **पआणं** सुत्थि (प्रजाभ्यः स्वस्ति=प्रजा का मङ्गल) । **पिअराणं** सुहा । (पितरेभ्यः स्वधा=पितरों को दान) । अलं महावीरो **मल्लस्स** (अलं महावीरो मल्लाय=मल्ल के लिए महावीर पर्याप्त है)।

(७) परिक्रयण (निश्चित समय के लिए किसी को वेतन आदि पर रखना) में जो करण होता है, उसमें (तृतीया भी विकल्प से होती है)[2] । जैसे—**सयेण सयस्स** वा परिकीणइ (शतेन शताय वा परिक्रीणति=सौ रुपये में परिक्रयण करता है)।

(८) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाये, उस प्रयोजन में[3]। जैसे–**मुत्तिणो** हरिं भजइ (मुक्तये हरिं भजति=मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है) । भत्ती **णाणाय** कप्पइ (भक्तिः ज्ञानाय कल्पते=भक्ति ज्ञान के लिए है)।

(९) हिअ (हित) और सुह (सुख) के योग में[4] । जैसे—**बंभणस्स** हिअं सुहं वा (ब्राह्मणाय हितं सुखं वा=ब्राह्मण के लिए हितकर अथवा सुखकर)।

पञ्चमी विभक्ति

निम्न स्थलों में पञ्चमी विभक्ति होती है––

(१) जिससे किसी वस्तु का अलगाव हो (अपादान कारक), उसमें[5] । जैसे–**धावत्तो अस्सत्तो** पडइ (धावतः अश्वात् पतति=दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है)।

(२) दुगुच्छ (जुगुप्सा), विराम, पमाय (प्रमाद) तथा इनके समानार्थक शब्दों के योग में जिससे जुगुप्सा आदि हो, उसमें[6]। जैसे–**पावत्तो** दुगुच्छइ विरमइ (पापाज्जु-

---

[1] नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च । अ० २. ३. १६.

[2] परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् । अ० १. ४. ४४.

[3] तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या । वार्तिक ।

[4] हितयोगे च । वार्तिक ।

[5] ध्रुवमपायेऽपादानम् । अपादाने पञ्चमी । अ० १. ४. २४ ; २. ३. २८.

[6] जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् । वार्तिक ।

गुप्सते विरमति = पाप से घृणा करता है, दूर रहता है)। **धम्मत्तो** पमायइ विरमइ वा (धर्मात् प्रमाद्यति विरमति वा = धर्म से प्रमाद करता है अथवा विरक्त होता है)।

(३) जिनके भय से रक्षा की जाये (तृतीया, चतुर्थी और षष्ठी भी), उसमें[1]। जैसे—**चोरओ** बीहइ (चोराद् बिभेति = चोर से डरता है)। **सप्पओ** भयं (सपाद् भयम् = साँप से भय)। रामो **कलहत्तो** बीहइ (रामः कलहाद् बिभेति = राम कलह से डरता है)। **चोरस्स** बीहइ (चौरद् बिभेति = चोर से डरता है)। **दुट्ठाण** को न बीहइ (दुष्टेभ्यः को न बिभेति = दुष्टों से कौन नहीं डरता है) ?

(४) परा+जि धातु के योग में जो असह्य हो, उसमें[2]। जैसे—**अज्झयणत्तो** पराजयइ (अध्ययनात् पराजयते=अध्ययन को असह्य जानकर भागता है)।

(५) 'जन्'='जाअ' (पैदा होना) धातु के कर्ता के मूल कारण में[3]। जैसे—**कामत्तो** कोहो अहिजाअइ, **कोहत्तो** मोहो अहिजाअइ (कमात् क्रोधः अभिजायते, क्रोधात् मोहः अभिजायते=काम से क्रोध होता है, क्रोध से मोह होता है)।

षष्ठी विभक्ति

निम्न स्थलों में षष्ठी विभक्ति होती है (चतुर्थी के स्थलों में भी षष्ठी होती है)—

(१) प्रातिपदिक और कारक से भिन्न स्व-स्वामिभावादि सम्बन्धों में[4]। जैसे—**साहुणो** धणं (साधोः धनम्=साधु का धन)। **पिअरस्स** पिउणो वा पुत्तं (पितुः पुत्रः=पिता का पुत्र)। **पसूणो** पाअं (पशोः पादम् = पशु का पैर)। **रामस्स** अंगाणि (रामस्य अङ्गानि = राम के अङ्ग)। देवस्स मंदिरं (देवस्य मन्दिरम् = देवता का मन्दिर)।

---

[1] भीत्रार्थानां भयहेतुः। अ० १. ४. २५.

[2] पराजेरसोढः। अ० १. ४. २६.

[3] जनिकर्तुः प्रकृतिः। अ० १. ४. ३०.

[4] षष्ठी शेषे। अ० २. ३. ५०.

(२) कर्मादि की सम्बन्धमात्र की विवक्षा में[१]। जैसे–**तस्स** कहियं (तस्य कथितम्=उससे कहा) । **माआए सुमरइ** (मातुः स्मरति=माता को याद करता है)।

(३) हेउ (हेतु) शब्द के प्रयोग में जो हेतु होता है उसमें तथा 'हेउ' शब्द में[२] । जैसे–**अन्नस्स हेउस्स** वसइ (अन्नस्य हेतोः वसति=अन्न के प्रयोजन से रहता है) । **कस्स हेउस्स** वसइ (कस्य हेतोः वसति=किस हेतु से रहता है) ?

सप्तमी विभक्ति

निम्न स्थलों में सप्तमी विभक्ति होती है—

(१) अधिकरण (आधार) में[३]। जैसे–**कडे** आसइ कागो (कटे आस्ते काकः=चटाई पर कौआ बैठा है) । **मोक्खे** इच्छा अत्थि (मोक्षे इच्छा अस्ति=मोक्ष के विषय में इच्छा है) । **तिलेषु** तेलं (तिलेषु तैलम्=तिलों में तेल है) ।

(२) सामी (स्वामी), ईसर (ईश्वर), अहिवई (अधिपति); दायाद, साखी (साक्षि), पडिहू (प्रतिभू) और पसूअ (प्रसूत) इन शब्दों के योग में (षष्ठी भी)[४] । जैसे–**गवाणं गोसु** वा सामी (गवां गोषु वा स्वामी=गायों का स्वामी); **गवाणं गोसु** वा पसूओ (गवां गोषु वा प्रसूतः=गायों से उत्पन्न) ।

(३) जिस समुदाय से (किसी की विशेषता बतलाकर) पृथक्करण हो उस समुदाय में (षष्ठी भी)[५] । जैसे–**गवाणं गोसु** वा किसणा बहुक्खीरा (गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा=गायों में काली गाय अधिक दूध देती है) । **कईसु कईणं** वा कालिदासो सेट्ठो (कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः=कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है) । **छत्ताणं छत्तेसु** वा गोइंदो पडु (छात्राणां छात्रेषु वा गोविन्दः पटुः=छात्रों में गोविन्द चतुर है) ।

●

---

१. कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सि० कौ०, पृ० १५१.

२. षष्ठी हेतुप्रयोगे । अ० २. ३. २६.

३. आधारोऽधिकरणम । सप्तम्यधिकरणे च । अ० १. ४. ४५; २. ३. ३६.

४. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च । अ० २. ३. ३९.

५. यतश्च निर्धारणम् । अ० २. ३. ४१.

दशम अध्याय : समास

'समास' (सम्+अस्+घञ्) शब्द का अर्थ है—'संक्षेप' अर्थात् जब दो या दो से अधिक शब्दों (सुवन्त पदों) को आपस में इस प्रकार जोड़ दिया जाता है कि शब्द का आकार छोटा होने पर भी उसके अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है, तो उसे समास कहते हैं (समसनम् एकपदीभवनं समासः)। समास होने पर प्रायः पूर्वपद की विभक्ति का लोप कर दिया जाता है। जैसे—गुरुणो समीवं=उवगुरु (गुरु के समीप), जम्मि देशे बहुवा वीरा सन्ति सो देसो=बहुवीरो देसो (जिस देश में बहुत से वीर हैं, वह देश), राइणो पुरिसो=रायपुरिसो (राजपुरुषः)।

लोक भाषा में समास शैली का प्रचार बहुत कम था परन्तु साहित्यिक प्राकृत भाषा में संस्कृत पण्डितों के प्रभाव के कारण समास शैली का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। प्राकृत वैयाकरणों ने कारक के समान ही समास का संस्कृत से पृथक् विधान नहीं किया है। अतः संस्कृत भाषा के समान ही प्राकृत भाषा के समास विधान को समझना चाहिए।

समास और विग्रह में अन्तर—जब समस्तपद के शब्दों को विभक्ति के द्वारा अलग-अलग करके दर्शाया जाता है तो उसे 'विग्रह' कहते हैं। जैसे—धम्मस्स पुत्तो=धम्मपुत्तो (धर्मपुत्रः)। यहाँ 'धम्मस्स पुत्तो' यह विग्रह वाक्य है और 'धम्मपुत्तो' यह समस्त पद है।

समास के भेद—समास में आये हुए शब्दों की प्रधानता और अप्रधानता के आधार पर समास के प्रमुख छः (४+२) भेद हैं—(१) **अव्वईभाव** (अव्ययीभाव)—इसमें पूर्व पदार्थ=अव्यय की प्रधानता होती है। (२) **तप्पुरिस** (तत्पुरुष)—इसमें उत्तर पदार्थ की प्रधानता होती है। इसके प्रमुख दो भेद हैं—(क) **वधिकरण तप्पुरिस** (व्यधिकरण तत्पुरुष या द्वितीयादि तत्पुरुष या सामान्य तत्पुरुष) और (ख) **समानाधिकरण तप्पुरिस** (समानाधिकरण तत्पुरुष या प्रथमा तत्पुरुष)। इसके दो अवान्तर भेद हैं—**कम्मधारय** (कर्मधारय=विशेषणविशेष्यभाव प्रथमा तत्पुरुष) और **दिगु** (द्विगु=संख्यापूर्व

प्रथमा तत्पुरुष) । (३) दंद (द्वन्द्व)–इसमें उभय पदार्थ का प्राधान्य होता है । (४) बहुव्वीही (बहुव्रीहि)—इसमें अन्य पदार्थ की प्रधानता होती है । कम्मधारय और दिगु को तप्पुरिस से पृथक् गिनने पर छः (४+२) भेद हैं ।

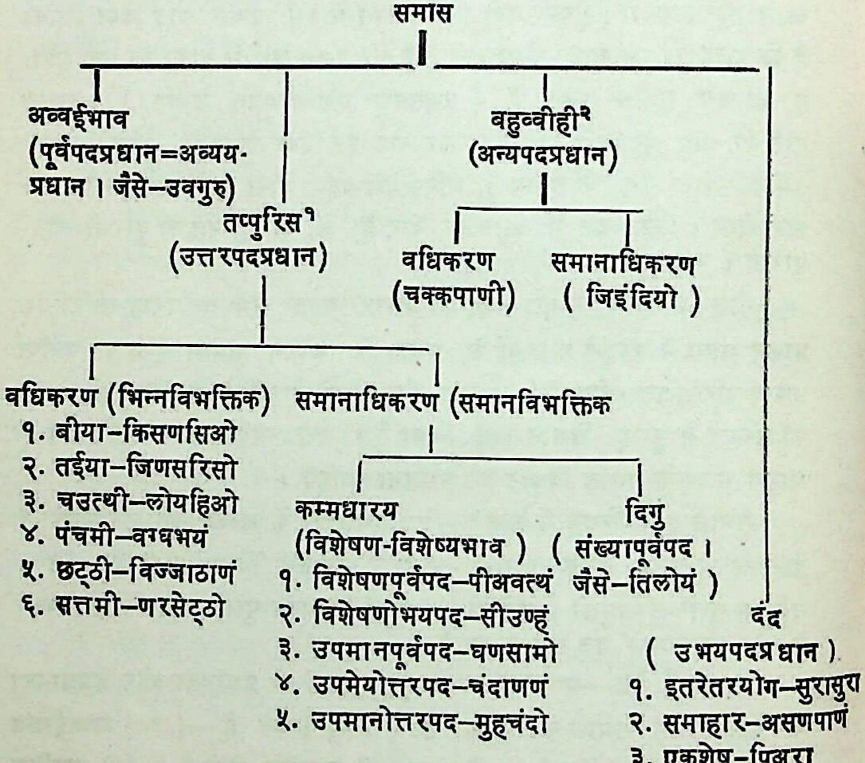
समास
अव्वईभाव
(पूर्वपदप्रधान=अव्यय-प्रधान । जैसे–उवगुरु)
तप्पुरिस[1]
(उत्तरपदप्रधान)
बहुव्वीही[2]
(अन्यपदप्रधान)
वधिकरण
(चक्कपाणी)
समानाधिकरण
(जिइंदियो)
वधिकरण (भिन्नविभक्तिक)
१. बीया–किसणसिओ
२. तईया–जिणसरिसो
३. चउत्थी–लोयहिओ
४. पंचमी–वग्घभयं
५. छट्ठी–विज्जाठाणं
६. सत्तमी–णरसेट्ठो
समानाधिकरण (समानविभक्तिक
कम्मधारय
(विशेषण-विशेष्यभाव)
१. विशेषणपूर्वपद–पीअवत्थं
२. विशेषणोभयपद–सीउण्हं
३. उपमानपूर्वपद–घणसामो
४. उपमेयोत्तरपद–चंदाणणं
५. उपमानोत्तरपद–मुहचंदो
दिगु
(संख्यापूर्वपद । जैसे–तिलोयं)
दंद
(उभयपदप्रधान)
१. इतरेतरयोग–सुरासुरा
२. समाहार–असणपाणं
३. एकशेष–पिअरा

---

१ 'तप्पुरिस' के अन्य भेद—

(क) न तप्पुरिस—अदेवो । (ख) पादि तप्पुरिस–पायरियो ।

२. बहुव्वीही के अन्य भेद--

(क) उपमान पूर्वपद–चंदमुही । (ख) न बहुव्वीही–अभयो । (ग) सह पूर्वपद–सपुत्तो । (ख) पादि–निल्लज्जो ।

(१) अव्वईभाव (अव्ययीभाव) समास

पूर्वपद 'अव्यय' का प्राधान्य होने से इसमें समस्तपद अव्यय हो जाता है। अव्ययीभाव शब्द का अर्थ है--'जो पहले अव्यय नहीं था उसका भी अव्यय बन जाना।' यह समास प्राय: विभक्ति, समीप आदि अर्थों में होता है। जैसे—

१. **विभक्ति** (सप्तमी)--हरिम्मि अहि=अहिहरि (अधिहरि=हरि के विषय में)। अप्पंसि अइ=अज्झप्पं (=अइ+अप्पं >अध्यात्मम्=आत्मा के विषय में)।

२. **समीप**--गुरुणो समीवं=उवगुरु (उपगुरु=गुरु के समीप)। राइणो समीवं=उवरायं (उपराजम्=राजा के समीप)।

३. **समृद्धि**--मद्दाणं समिद्धि=सुमद्दं (सुमद्रम्=मद्र देश की समृद्धि)।

४. **अभाव**--मच्छिआणं अहाओ=णिम्मच्छिअं (निर्मक्षिकम्=मक्खियों का अभाव)।

५. **अत्यय** (विनाश, समाप्ति)--हिमस्स अच्चओ=अइहिमं (अतिहिमम्=जाड़े की समाप्ति)।

६. **असम्प्रति** (अनौचित्य)-निद्दा संपइ न जुज्जइ=अइनिद्दं (अतिनिद्रम्=निद्रा के अनुपयुक्त काल में)।

७. **पश्चात्**—भोयणस्स पच्छा=अणुभोयणं (अनुभोजनम्=भोजन के बाद)। कसिणस्स पच्छा=अणुकसिणं (अनुकृष्णम्=कृष्ण के पीछे)।

८. **यथाभाव** (योग्यता, अनतिक्रम और वीप्सा=द्विरुक्ति)—रूवस्स जोग्गं=अणुरूवं (अनुरूपम्=रूप के योग्य)। दिणं दिणं पइ=पइदिणं (प्रतिदिनम्=हर रोज)। घरे घरे पइ=पइघरं (प्रतिगृहम्=प्रत्येक घर)। नयरं नयरं पइ=पइनयरं (प्रतिनगरम्)। पइपुरं (प्रतिपुरम्), सत्ति अणइक्कमिऊण=जहासत्ति (यथाशक्ति=शक्ति के अनुसार),। विहिं अणइक्कमिऊण=जहाविहि (यथा-विधि=विधि के अनुसार)।

९. **आनुपूर्व्यं** (क्रम)—जेट्ठस्स अणुपुव्वेण=अणुजेट्ठं (अनुज्येष्ठम्=ज्येष्ठ के क्रम से)।

१०. यौगपद्य (एकसाथ)—चक्केण जुगवं=सचक्कं (सचक्रम्=चक्र के साथ साथ)।

११. सम्पत्ति—छत्ताणं संपइ=सछत्तं (सक्षत्रम्=क्षत्रियों की सम्पत्ति)।

(२) तप्पुरिस (तत्पुरुष) समास

इसमें उत्तरपद की प्रधानता होती है। अतः पूर्वपद प्रायः विशेषण का और उत्तरपद प्रायः विशेष्य का कार्य करता है। लिङ्ग और वचन उत्तरपद के अनुसार होते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) व्यधिकरण तत्पुरुष (जिसके दोनों पद विभिन्न विभक्तियों=अधिकरणों वाले हों) और (२) समानाधिकरण तत्पुरुष (जिसके दोनों पद समान-विभक्ति=अधिकरण वाले हों)। इनमें से व्यधिकरण तत्पुरुष (इसमें पूर्वपद द्वितीयादि विभक्तियों वाला होता है और उत्तरपद प्रथमा विभक्ति वाला) को सामान्य 'तप्पुरिस' (तत्पुरुष) के नाम से और समानाधिकरण तत्पुरुष (इसमें दोनों पद प्रथमा विभक्ति वाले होते हैं) को कम्मधारय (कर्मधारय) के नाम से जाना जाता है। इसी कम्मधारय समास का पूर्वपद जब संख्यावाची होता है तब उसे दिगु (द्विगु) समास कहा जाता है। इन तीनों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

तप्पुरिस (व्यधिकरण) समास

पूर्वपद में प्रयुक्त विभक्ति के भेद से इसके छः भेद किए जाते हैं। जैसे—

(क) बिईया या बीया (द्वितीया) तप्पुरिस (द्वितीयान्त+प्रथमान्त)—किसणं सिओ=किसणसिओ (कृष्णश्रितः=कृष्ण के सहारे), आसां अतीतो=आसातीतो (आशातीतः=आशा से अधिक), सुहं पत्तो=सुहपत्तो (सुखप्राप्तः=सुख को प्राप्त हुआ), कट्ठं आवण्णो=काट्ठावण्णो (कष्टापन्नः=कष्ट को प्राप्त), खणं सुहा=खणसुहा (क्षणसुखा), दिवं गओ=दिवगओ (दिवङ्गतः), इंदियं अतीतो=इंदियातीतो, गामं गतो=गामगतो।

(ख) तईया तप्पुरिस (तृतीयान्त+प्रथमान्त)—ईसरेण कडे=ईसरकडे (ईश्वरकृतः=ईश्वर से किया गया), गुणेहिं संपन्नो=गुणसंपन्नो (गुणसम्पन्नः), पंकेन लित्तो=पंकलित्तो (पङ्कलिप्तः), आयारेण निउणो=आयारनिउणो (आचारनिपुणः),

दयाए जुत्तो=दयाजुत्तो (दयायुक्तः), जिणेण सरिसो=जिणसरिसो (जिनसदृशः), रसेण पुण्णो=रसपुण्णो (रसपूर्णः) ।

(ग) **चउत्थी तप्पुरिस** (चतुर्थ्यन्त+प्रथमान्त)–कुंभस्स मट्टिआ = कुम्भमट्टिआ (कुम्भमृत्तिका=घड़े के लिए मिट्टी), लोयाय हिओ = लोयहिओ (लोकहितः), मोक्खाय णाणं=मोक्खणाणं (मोक्षज्ञानम्), बंभणाय हिअं=बंभणहिअं (ब्राह्मणहितम्), भूयाणं वली = भूयबली (भूतबलिः), वहुजणस्स हिओ = बहुजणहिओ (वहुजनहितः), धम्ममंगलं (धर्ममङ्गलम्) ।

(घ) **पंचमी तप्पुरिस**—पञ्चम्यन्त+प्रथमान्त)—संसाराओ भीओ =संसारभीओ (संसारभीतः=संसार से भयभीत), थेणाओ भीओ = थेणभीओ (स्तेनभीतः), चोराओ भयं = चोरभयं (चौरभयम्), वग्घाओ भयं=वग्घभयं (व्याघ्रभयम्), नगरनिग्गओ (नगरनिर्गतः), रिणमुत्तो (ऋणमुक्तः) ।

(ङ) **छट्ठी तप्पुरिस** (षष्ठयन्त+प्रथमान्त)—विज्जाए ठाणं=विज्जाठाणं (विद्यास्थानम्=विद्या का स्थान), जिणाणं इन्दो=जिणेंदो (जिनेंद्रः); कन्नाऐ मुहं=कन्नामुहं (कन्यामुखम्), देवस्स थुई = देवत्थुई देवथुई (देवस्तुतिः), समाहिणो ठाणं = समाहिठाणं (समाधिस्थानम्), राजपुत्तो (राजपुत्रः), लेहसाला, (लेखशाला), देवमंदिरं, फलरसो ।

(च) **सत्तमी तप्पुरिस** (सप्तम्यन्त+प्रथमान्त)—सहाए पंडिओ+सहापंडिओ (सभापण्डितः), कलासु कुसलो=कलाकुसलो (कलाकुशलः = कलाओं में कुशल); णरेसु सट्ठो+णरसेट्ठो (नरश्रेष्ठः), बंभणेसु उत्तमो=बंभणोत्तमो (ब्राह्मणोत्तमः), नाणम्मि उज्जओ = नाणोज्जओ (ज्ञानोद्योतः), जिणेसु उत्तमो=जिणोत्तमो (जिनोत्तमः), धम्मरतो, विसयासत्ति ।

(२) कम्मधारय (समानाधिकरण तत्पुरुष) समास

इसमें दोनों पद प्रथमा विभक्ति में होते हैं, अतः इसे समानाधिकरण या प्रथमा तत्पुरुष भी कहते हैं । इसके कई प्रकार हैं । जैसे—

(क) **विशेषण-पूर्वपद** (विशेषण+विशेष्य)––पीअं वत्थं अथवा पीअं तं वत्थं अथवा पीअं च तं वत्थं च = पीअवत्थं (पीतवस्त्रम् = पीला कपड़ा); कण्हो

पक्खो अथवा कण्हो य सो पक्खो=कण्हपक्खो (कृष्णपक्षः), रत्तो घडो या रत्तो अ ऐसो घडो=रत्तघडो (रक्तघटः), सुन्दरा पडिमा या सुन्दरा य एसा पडिमा सुन्दरपडिमा (सुन्दरप्रतिमा), महंतो रायो या महंतो य सो रायो=महारायो (महाराजः), महंतो सो वीरो=महावीरो (महावीरः)।

(ख) **विशेषणोभयपद** (विशेषण + विशेषण)—सीअं च तं उण्हं य=सीउण्हं जलं (शीतोष्णं जलम्), रत्तं अ तं पीअं य+रत्तपीअं वत्थं (रक्तपीतं वस्त्रम्)।

(ग) **उपमान-पूर्वपद** (उपमान + साधारण धर्म)—घणो इव सामो=घणसामो (धनश्यामः=मेघ के समान श्याम वर्ण), मिओ इव चवला = मिअ-चवला (मृगचपला = मृग के समान चञ्चल)।

(घ) **उपमेयोत्तरपद** (उपमान+उपमेय)—चन्दो इव आणणं=चंदाणणं (चन्द्राननम् = चन्द्रमा के समान मुख), वज्जो इव देहो = वज्जदेहो (वज्रदेहः), चंदो इव मुहं = चन्दमुहं (चन्द्रमुखम्)।

(ङ) **उपमानोत्तरपद** (उपमेय+उपमान)—मुहं चदो व्व = मुहचंदो (मुख चन्द्रः=मुख चन्द्रमा के समान है), पुरिसो वग्घो व्व=पुरिसवग्घो (पुरुषव्याघ्रः=पुरुष व्याघ्र के समान है) अथवा पुरिसो एव्व वग्घो=पुरिसवग्घो (पुरुषव्याघ्रः=पुरुष ही व्याघ्र है। यहाँ रूपक अलंकार प्रयुक्त समास है), संजमो एव धणं=संजमधणं (संयमधनम्=संयम रूपी धन)।

(४) दिगु (द्विगु) समास

जब कर्मधारय समास में पूर्वपद संख्या हो और उत्तरपद संज्ञा हो तब वहाँ दिगु समास होता है। जैसे–तिण्हं लोआणं समूहो=तिलोयं तिलोई वा (त्रिलोकी =तीनों लोक), नवण्हं तत्ताणं समूहो (समाहारो) नवतत्तं (नवतत्त्वम्); चउण्हं कसायाणं समूहो = चउक्कसायं (चतुष्कषायम्), तिण्हं वियप्पाणं समाहारो = तिवियप्पो (त्रिविकल्पम्), तिण्णि लोया=तिलोया (त्रिलोकाः), चउरो दिसाओ=चउदिशा (चतुर्दिशः), तिभवा (त्रिभवाः)।

तत्पुरुष समास के कुछ अन्य प्रकार—

(क) न तप्पुरिस (नञ् तत्पुरुष)—इसमें प्रथम शब्द निषेधार्थक (न) होता है और दूसरा पद संज्ञा या विशेषण। व्यञ्जन से पूर्व 'न' होने पर वह 'अ' में और स्वर से पूर्व रहने पर वह 'अण' में परिवर्तित हो जाता है। जैसे– न देवो=अदेवो (अदेवः), न लोगो=अलोगो (अलोकः), न ईसो=अणीसो (अनीशः), न आयारो=अणायारो (अनाचारः), न बंभणो=अबंभणो (अब्राह्मणः), न दिट्ठं=अदिट्ठं (अदृष्टम्), न इट्ठं=अणिट्ठं (अनिष्टम्), न सच्चं=असच्चं (असत्यम्), न मोघो=अमोघो (अमोघः)।

(ख) पादि तप्पुरिस (प्रादितत्पुरुष)—जब तत्पुरुष समास में प्रथम पद 'प' (प्र), अव आदि उपसर्ग से युक्त होता है। जैसे—पगतो आयरियो=पायरियो (प्राचार्यः), उग्गओ वेलो=उव्वेलो (उद्वेलः)।

(१) बहुव्वीही (बहुव्रीहि) समास

जब समास में आये हुये सभी पद किसी अन्य पदार्थ के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं तब वहाँ बहुव्वीहि समास होता है। इस समास का विग्रह (पदच्छेद) करते समय 'ज' (यत्) शब्द के किसी न किसी रूप का प्रयोग किया जाता है जिससे समास में आये हुए पदों का सम्बन्ध अन्य पद के साथ ज्ञात होता है। चूंकि समस्तपद विशेषण होते हैं, अतः उनके लिङ्ग, वचन आदि अपने विशेष्य के अनुसार होते हैं। इसके भी समानाधिकरण (समान-विभक्तिक) और वधिकरण (असमान-विभक्तिक) के भेद से दो भेद हैं—

(क) समानाधिकरण बहुव्वीहि (प्रथमान्त+प्रथमान्त)—विग्रह में प्रयुक्त 'ज' (यत्) शब्द की द्वितीयादि विभक्ति के भेद से इसके ६ भेद किये जाते हैं। जैसे—

(१) द्वितीया—आरुढो वाणरो जं (रुक्खं) सो=आरूढवाणरो रुक्खो (आरूढवानरः वृक्षः = ऐसा वृक्ष जहाँ बन्दर बैठा है), पत्तं नाणं जं सो=

पत्तनाणो मुणी (प्राप्तज्ञान: मुनि:), पत्तं धणं जं सो=पत्तधणो णरो (प्राप्त-धन: नर:)।

(२) **तृतीया**—जिओ अरिगणो जेण सो=जिआरिगणो वीरो (जितारिगणो वीर:), जिआणि इंदियाणि जेण सो=जिइंदियो मुणी (जितेन्द्रिय: मुनि:), जिओ कामो जेण सो=जिअकामो अकलंओ (जितकामोऽकलङ्क:)।

(३) **चतुर्थी**—दिण्णं धणं जस्स सो = दिण्णधणो बंभणो (दत्तधन: ब्राह्मण:)।

(४) **पंचमी**—पडिअं पत्तं जत्तो सो=पडिअपत्तो रुक्खो (पतितपत्र: वृक्ष:); भट्ठो आयारो जाओ सो=भट्ठायारो जणो (भ्रष्टाचार: जन:), नट्ठो मोहो जाओ सो=नट्ठमोहो साहू (नष्टमोह: साधु:), विगअं रूवं जत्तो सो=विरूवो जणो (विरूपजन:)।

(५) **षष्ठी**—पीअं अंबरं जस्स सो=पीआंबरो (पीताम्बर:=कृष्ण:), सेयं अंबरं जस्स सो=सेयंबरो (श्वेताम्बर:), आसा अंबरं जेसिं ते=आसंबरा (दिगम्बरा:), महंता बाहुणो जस्स सो=महाबाहू (महाबाहु:), चत्तारि मुहाणि जस्स सो चउम्मुहो=बम्हो (चतुर्मुख:=ब्रह्मा), तिण्णि नेत्ताणि जस्स सो=तिणेत्तो=हरो (त्रिनेत्र:=हरि:), णीलो कंठो जस्स सो=णीलकंठो=मोरो (नीलकण्ठ:=मयूर:), धुओ सव्वो किलेसो जस्स सो=धुअसव्वकिलेसो=जिणो (धुतसर्वक्लेशो जिन:)।

(६) **सप्तमो**—वीरा णरा जम्मि (गामे) सो=वीरणरो गामो (वीरनर: ग्राम:=ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हों)।

(ख) **अधिकरण बहुव्वीहि**—(प्रथमान्त+षष्ठयन्त या सप्तम्यन्त)—चक्कं पाणिम्मि जस्स सो=चक्कपाणी (चक्रपाणि:=चक्र है हाथ में जिसके=विष्णु), गंडीवं करे जस्स सो=गंडीवकरो=अज्जुणो (गाण्डीवकरोऽर्जुन:), चंदो सेहरम्मि जस्स सो=चंदसेहरो (चन्द्रशेखर:=शिव:)।

बहुव्रीहि के कुछ अन्य प्रकार—

(१) **उपमान पूर्वपद बहुव्रीहि**—जिसका प्रथम पद उपमान हो। जैसे—चन्दो इव मुहं जाए सा=चंदमुही कन्ना (चन्द्रमुखी कन्या=चन्द्र के समान मुख-

वाली कन्या), हंसगमणं इव गमणं जाए सा=हंसगमणा (हंसगमना), मियणयणाइं इव णयणाइं जाए सा = मियणयणा (मृगनयना), गजाणण इव आणणो जस्स सो=गजाणणो (गजाननः=गणेशः) ।

(२) नञ् बहुव्रीहि—(निषेधार्थक)—न अत्थि (नत्थि) भयं जस्स सो=अभयो (अभयः), न अत्थि उयरं जीए सा = अणुयरा कण्णा (अनुदरा कन्या), न अत्थि पुत्तो जस्स सो=अपुत्तो (अपुत्रः), न अत्थि णाहो जस्स सो = अणाहो (अनाथः), नत्थि उज्जमो जस्स सो अणुज्जमो (अनुद्यमः) ।

(३) सहपूर्वपद बहुव्रीहि—'सह' अव्यय जिसके पूर्वपद में हो। 'सह' का तृतीयान्त पद के साथ समास होता है। आशीर्वाद अर्थ को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र 'सह' के स्थान पर 'स' आदेश होता है। जैसे—पुत्तेण सह=सपुत्तो राया (सपुत्रः राजा); फलेण सह = सफलं (सफलम्), सीसेण सह=ससीओ आयरिओ (सशिष्यः आचार्यः); मूलेण सह = समूलं (समूलम्), चेलेण सह= सचेलं ण्हाणं (सचैलं स्नानम्), कम्मणा सह = सकम्मो णरो (सकर्मा नरः), कलत्तेण सह = सकलत्तो णरो (सकलत्रं नरः), पुण्णेण सह=सपुण्णो (सपुण्यः) ।

(४) प्रादि बहुव्रीहि—प; नि, आदि उपसर्गों के साथ प्रयुक्त बहुव्रीहि समास। जैसे—निग्गया लज्जा जस्स सो = निल्लज्जो णरो (निर्लज्जो नरः), निग्गआ दया जस्स सो = निद्दयो जणो (निर्दयो जनः); पगिट्ठं पुण्णं जस्स सो पपुण्णो जणो (प्रपुण्यो जनः); विग्गओ धवो जाए सा=विहवा (विधवा); अवगअं रूवं जस्स सो = अवरूवो (अपरूपः), अइक्कंतो मग्गो जेण सो = अइमग्गो रहो (अतिमार्गो रथः) ।

(६) दंद (द्वन्द्व) समास

विग्रह वाक्य में जब दो या दो से अधिक संज्ञायें च, य अथवा अ शब्द से जुड़ी होती हैं तब उसे दंद (द्वन्द्व=युगल=जोड़ा) समास कहते हैं। इसमें सभी पदों का अथवा उनके समूह का प्राधान्य होता है। इसके प्रमुख ३ प्रकार हैं—

(क) इतरेतरजोग दंद—इसमें समस्त सभी पद अपने पृथक् अस्तित्व (प्राधान्य) को कायम रखते हैं; अतः समस्त पद में बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे—

सुरा य असुरा य=सुरासुरा (सुरासुरौ=देवता और असुर), मोरो अ हंसो अ वाणरो अ=मोरहंसवाणरा (मयूरहंसवानराः), जीवा य अजीवा य=जीवाजीवा (जीवाजीवौ), पुण्णं च पावं च=पुण्णपावाइं (पुण्यपापे); पत्तं च पुप्फं च फलं च=पत्तपुप्फफलाणि (पत्रपुष्पफलानि), सुहं य दुक्खं य=सुहदुक्खाइं (सुखदुःखे), जरामरणाइं, देवदानवगंधव्वा, नाणदंसणचरित्ताइं ।

(ख) समाहार दंद—इसमें समस्त पदों से समूह का बोध होता है । अतः समस्त पद सर्वदा नपुंसक एकवचन में होता है। जैसे--णाणं य दंसणं य चरित्तं य एएसिं समाहारो=णाणदंसणचरित्तं (ज्ञानदर्शनचारित्रम्), असणं अ पाणं अ एएसिं समाहारो=असणपाणं (अशनपानम्) ।

(ग) एगसेस दंद—जब समस्त होने वाले पदों में से एक ही पद शेष रहे। इसमें लुप्त पद का बोध समस्त पद में प्रयुक्त (वचन संख्या) से होता है। जैसे–माआ य पिआ य त्ति=पिअरा (पितरौ), सासू च ससुरो च त्ति=ससुरा (श्वशुरौ); नेत्तं य नेत्तं य त्ति=नेत्ताइं (नेत्रे), जिणो अ जिणो अ जिणो अ त्ति=जिणा (जिनाः) ।

एकादश अध्याय : शब्दरूप

प्रमुख विशेषताएँ—

१. द्विवचन का अभाव होने से उसके स्थान पर बहुवचन का प्रयोग।

२. कुछ अपवाद-स्थलों को छोड़कर सर्वत्र चतुर्थी और षष्ठी के रूपों में एकरूपता। चतुर्थी के मूल रूपों का प्राय: अभाव होने से चतुर्थी का लोप भी माना जाता है। अत: चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति होती है।[१]

३. ऋकारान्त शब्दों का अभाव है।[२]

४. एकारान्त, ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त शब्दों का भी अभाव है।[३]

५. व्यञ्जनान्त शब्द स्वरान्त बन गये हैं।[४]

---

[१] चतुर्थ्याः षष्ठी। तादर्थ्ये ङेर्वा। हे० ८. ३. १३१–१३२.

[२] ऋकारान्त संस्कृत संज्ञाएँ प्राकृत में अकारान्त या उकारान्त हो गई हैं। अत: उनके अकारान्त या उकारान्त के समान रूप चलते हैं। प्रथमा एकवचन में विकल्प से 'ऋ' को 'आ' आदेश भी होता है। जैसे—[ऋकारान्त पुं०] कत्ता (कर्तृ=कर्ता), भत्ता (भर्तृ), भाया (भ्रातृ), पिआ (पितृ) आदि। कर्तृ >कत्तार, कत्तु, कत्ता। भर्तृ >भत्तार, भत्तर, भत्तु, भत्ता। भ्रातृ > भायर, भाउ, भाता। पितृ >पिअर, पिउ, पिआ। दातृ >दायार दाउ। [ऋकारान्त स्त्रीलिंग]--माआ (मातृ), ससा (स्वसृ), माउसिआ (मातृस्वसृ), धूआ (दुहितृ)।

[३] संस्कृत के एकारान्त, ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त शब्द प्राकृत में अकारान्त, इकारान्त या उकारान्त (ह्रस्व या दीर्घ) हो गये हैं। अत: इनके रूप अकारान्तादि के समान बनते हैं। जैसे—नौ >नावा, गो > गावी आदि।

[४] संस्कृत व्यञ्जनान्त शब्द प्राकृत में स्वरान्त हो गये हैं। अत: उनके

६. कहीं कहीं संस्कृत के लिङ्गों में परिवर्तन हो गया है।[1]

७. विभक्तियों में जुड़ने वाले 'सुप्' प्रत्यय संस्कृत के ही हैं, जिन्हें आदेश के द्वारा नवीन रूपों में परिवर्तित किया गया है।

८. शब्दरूपों के वैकल्पिक रूपों की बहुलता तथा विभिन्न वचनों एवं विभक्तियों के रूपों में एकरूपता।

९. अकारान्त पुं० तथा आकारान्त स्त्री० के विभक्ति-प्रत्ययों की प्रमुखता। प्रायः इसी आधार पर सभी रूप बनते हैं। अतः सरलता एवं सुबोधता की दृष्टि से कुछ प्रत्ययों के रूपों को ही यहाँ दर्शाया गया है, शेष को वैकल्पिक प्रत्यय जोड़कर समझ लेना चाहिए।

१०. सात विभक्तियाँ, तीन लिंग, तीन पुरुष और दो वचन हैं।

११. सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति के ही प्रत्यय जुड़ते हैं। अतः इसे अलग विभक्ति नहीं माना जाता है। किन्तु रूपों में कहीं-कहीं अन्तर होता है।

तदनुसार ही रूप चलेंगे (कुछ अवशेष स्वरूप 'राजन्' आदि शब्दों के रूपों को छोड़कर)। जैसे—(पुं०) अप्पाण अत्ताण, अप्प अत्त (आत्मन्); राय (राजन्), महव (मघवन्), मुद्ध (मूर्धन्), जम्म (जन्मन्); जुअ जुआण (युवन्); बम्ह बम्हण (ब्रह्मन्), वम्म (वर्मन्), कम्म (कर्मन्), चन्दम (चन्द्रमस्), जस (यशस्), हसन्त (हसत्), भगवंत (भगवत्), धणवंत (धनवत्), पुण्णमंत (पुण्यवत्); भत्तिमंत (भक्तिवत्); सिरीमंत (श्रीमत्), नेहालु (स्नेहवान्), दयालु (दयावान्), ईसालु (इर्ष्यावान्), तिरिच्छ तिरिक्ख तिरिअंच (तिर्यञ्च्); सरअ (शरद्)। (स्त्री०)—महिमा (महिमन्); गरिमा (गरिमन्), अच्चि (अर्चिस्), भगवई (भगवती), सरिआ (सरित्), तडिआ (तडित्), पाडिवआ पडिवआ (प्रतिपद्), संपया (संपद्), ककुहा (ककुभ्), गिरा (गिर्), दिसा (दिश्), विज्जु (विद्युत्)। (नपुं०)—दाम (दामन्), नाम (नामन्); पेम्म (प्रेमन्), अह (अहन्), सेय (श्रेयस्), वय (वयस्), आउस (आयुष्) आदि।

[1] देखें, तृतीय अध्याय, लिङ्गानुशासन।

विभक्ति-चिह्न तथा प्रभाव[1]

(क) अकारान्त पुं० संज्ञाओं में—

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
१. पढमा	सु [सि]	डो > ओ ('अ' लोप)	जस्	लोप (अ > आ)
२. बीआ	अम्	म् > अनुस्वार	शस्	लोप (अ > आ, ए)
३. तइया	टा	ण, णं (अ > ए)	भिस्	हि, हिं, हिँ (अ > ए)
४. चउत्थी	ङे	स्स (कहीं-कहीं 'य')	भ्यस्	ण, णं (अ > आ)
५. पंचमी	ङसि	त्तो, दो > ओ, दु > उ, हि, हिंतो (अ > आ। 'त्तो' प्रत्यय होने पर संयुक्ताक्षर होने से 'अ' को दीर्घ नहीं होगा)	भ्यस्	त्तो, दो > ओ, दु > उ, हि, हिंतो, सुंतो (हि, हिंतो, सुंतो के दो-दो रूप होंगे—'आ' और 'ए' के साथ। 'त्तो' के साथ 'अ' का लोप। अन्यत्र दीर्घ होगा)
६. छट्ठी	ङस्	स्स	आम्	ण, णं (अ > आ)
७. सत्तमी	ङि	डे > ए, म्मि	सप्	सु, सुं (अ > ए)
८. संबोहण	सु [सि]	ओ, आ, लोप (ओ, आ होने पर 'अ' लोप)	जस्	लोप (अ > आ)

(ख) इकारान्त और उकारान्त पुं० संज्ञाओं में—

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पढमा	लोप ('इ, उ' को दीर्घ)	णो, अउ, अओ, लोप, अवो ('अउ' और 'अओ' होने पर 'इ, उ' का लोप। प्रत्यय का लोप होने पर 'इ, उ' को दीर्घ। 'अवो' केवल उकारान्त शब्दों में होगा)

---

१. विशेष के लिए देखें, हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण, तृतीयपाद, सूत्र २ से १३७.

बीआ	म् > अनुस्वार	णो; लोप (लोप होने पर दीर्घ)
तइआ	णा	हि, हिँ, हिं ('इ, उ' को दीर्घ)
चउत्थी	णो, स्स	ण, णं ('इ, उ' को दीर्घ)
पंचमी	णो, त्तो, ओ, उ, हिन्तो ('ओ, उ, हिन्तो' के होने पर दीर्घ)	त्तो, ओ, उ; हिन्तो; सुन्तो (दीर्घादि कार्य अकारान्तवत्)
छट्ठी	णो, स्स	ण, णं (दीर्घ)
सत्तमी	म्मि, अंसि	सु, सुं (दीर्घ)
संबोहण	लोप (दीर्घ विकल्प से)	प्रथमा बहुवचनवत्

[**विशेष—**

१. इकारान्त और उकारान्त के शब्दरूपों में अकारान्त के प्रत्ययों से निम्न अन्तर हैं—

(क) प्रथमा एकवचन में प्रत्यय का लोप तथा अन्तिम स्वर को दीर्घ।

(ख) प्रथमा तथा संबोधन के बहुवचन में 'णो, अउ, अओ' होते हैं। 'अउ, अओ' होने पर अंतिम स्वर का लोप भी होगा। प्रत्यय का लोप होने पर अंतिम स्वर को दीर्घ होगा।

(ग) तृतीया एकवचन में 'णा' होगा।

(घ) चतुर्थी, पंचमी और षष्ठी एकवचन में अतिरिक्त 'णो' प्रत्यय होगा।

(ङ) सप्तमी एकवचन में 'ए' के स्थान पर 'अंसि' होगा।

(च) सम्बोधन के एकवचन में प्रत्यय का लोप तथा शब्द के अंतिम स्वर को विकल्प से दीर्घ। ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों के स्वर को ह्रस्व।

(छ) पंचमी के एकवचन और बहुवचन में 'हि' नहीं होता।

२. उकारान्त पुं० शब्दों में 'ई' के स्थान पर 'ऊ' होगा, शेष इकारान्त के ही प्रत्यय होंगे। प्रथमा बहुवचन में 'अवो' अतिरिक्त प्रत्यय भी होता है।

३. दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त के रूप इकारान्त और उकारान्त के समान ही चलते हैं।]

(ग) आकारान्त स्त्रीलिङ्ग संज्ञाओं में—

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्र०	लोप	उ, ओ, लोप
द्वि०	म् > अनुस्वार (आ > अ)	,,
तृ०	अ, इ, ए	हि, हिं, हिँ
च०	षष्ठी के समान	षष्ठी के समान
पं०	अ, इ, ए, त्तो, ओ, उ, हिंतो ('त्तो' होने पर 'आ' को ह्रस्व)	त्तो, ओ, उ, हिंतो, सुंतो ('त्तो' होने पर 'आ' को ह्रस्व)
ष०	अ, इ, ए	ण, णं
स०	,,	सु, सुं
सं०	लोप (अ > ए, विकल्प से)	उ, ओ, लोप

(घ) इकारान्त और उकारान्त स्त्रीलिङ्ग में—

इकारान्त और उकारान्त स्त्री० में तृतीया से सप्तमी तक एकवचन में 'आ' अतिरिक्त प्रत्यय होता है तथा अकारान्त पुं० की तरह दीर्घ-कार्य भी होता है। ईकारान्त प्र० एकवचन, बहुवचन में, द्वि० बहुवचन में तथा सम्बोधन में भी 'आ' अतिरिक्त प्रत्यय जुड़ता है।

(ङ) सभी नपुं० संज्ञाओं में—

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्र०, द्वि०	म् > अनुस्वार	णि, इं, इँ (दीर्घ)
सम्बोधन	लोप	,,

शेष पुं० की तरह

संज्ञा शब्दरूप (पुंल्लिङ्ग)

(१) अकारान्त' 'पुरिस'[1] (पुरुष) (२) अकारान्त 'देव' (देवता)

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
पुरिसो	पुरिसा	प्र०	देवो	देवा
पुरिसं	पुरिसा, -से	द्वि०	देवं	देवा, -देवे

पुरिसेण,-णं	पुरिसेहि, -हिँ,-हिं	तृ०	देवेण, -णं	देवेहि,-हिँ-हिं
पुरिसस्स, पुरिसाय	पुरिसाण,-णं	च०	देवस्स, देवाय	देवाण,-णं
पुरिसत्तो, पुरिसाओ	पुरिसाहिंतो,-सुंतो पुरिसेहिंतो,-सुंतो	पं०	देवत्तो, देवाओ; देवाहिंतो,देवाहि, देवाउ;	देवाहिंतो,-सुंतो, देवत्तो, देवाहि देवाओ, देवाउ, देवेहि, देवेहिंतो; देवे; सुंतो
पुरिसस्स	पुरिसाण,-णं	ष०	देवस्स	देवाण,-णं
पुरिसे, पुरिसम्मि	पुरिसेसु,-सुं	स०	देवे, देवम्मि	देवेसु,- सुं
पुरिस	पुरिसा	सं०	देव, देवा,	देवो देवा

१. (क) इसी प्रकार अन्य अकारान्त पुं० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—रुक्ख (पेड़); तंडुल (चावल); णेउर (नूपुर), वीर, जिण (जिन), वच्छ (वृक्ष), धम्म (धर्म), मठ, कोस (खजाना), अवमाण (अपमान), आयार (आचार), उवएस (उपदेश), पाढ (पाठ), लेह (लेख), तव (तप), हरिस (हर्ष), फास (स्पर्श), खय (क्षय), नत्तअ (नर्तक), गायअ (गायक), सेवअ (सेवक), रक्खअ (रक्षक), किसअ किसाण (कृषक), कोह कोव (क्रोध), चन्द (चन्द्र); हट्ट (बाजार), तिल, गब्भ (गर्भ), सूरिअ (सूर्य), देह, णरिंद नरिंद (नरेन्द्र), गिहत्थ (गृहस्थ), आहार (भोजन), पाचअ (पाचक=रसोइया), कण्ण (कर्ण), सावअ सावग (श्रावक), कर, हत्थ (हस्त), लोह (लोभ); पाडल (पाटल=गुलाब), पुत्त (पुत्र), दीवअ (दीपक), घड (घट), पड (पट), कसिण (कृष्ण), गाम (गाँव), थण (स्तन), वम्मह (मन्मथ), लोअ (लोक), वणिअ (वणिक्=बनिया) णिरय निरय (नरक), सायर (सागर=समुद्र); बहिर (बहिरा), भिच्च (भृत्य=नोकर); कुलाअ, नीड (घोंसला), कूव (कुँआ), निव, नरिंद (राजा); सुज्ज आइच्च (आदित्य=सूर्य); बंभण माहण (ब्राह्मण), नाय (न्याय), कणय (कनक=सोना), गोव (गोप=ग्वाला); महियाल (महिपाल), मणोरह (मनोरथ), दंड (दण्ड=लाठी), उट्ट (उष्ट्र=ऊँट), परिणअ (विवाह), जिणेसर (जिनेश्वर), बंसअ (बांसुरी); समिय (श्रमिक), मिग मअ (मृग); मोक्ख

(३) इकारान्त 'हरि' (विष्णु)[१]

एकवचन	बहुवचन
हरी	हरिणो (हरी, हरओ, हरउ)
हरिं	हरिणो (हरी)
हरिणा	हरीहि, -हिं, -हिँ

(४) इकारान्त 'अग्गि' (आग)

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	अग्गी	अग्गिणो (अग्गओ)
द्वि०	अग्गिं	अग्गिणो (अग्गी)
तृ०	अग्गिणा	अग्गीहि; -हिं,-हिँ

(मोक्ष), वसह (वृषभ=बैल), मेह (मेघ), विणय (विनय), अंक (गोद), वानर (बन्दर), वेज्ज (वैद्य), पासाअ (प्रासाद), सहाव (स्वभाव), अहिव (अधिप), णमोक्कार (नमस्कार), हंस, मूसिअ (मूषक=चूहा), सीह (सिंह), गय (गज), आयरिअ (आचार्य), चोर, मोर (मयूर); सिगाल (शृगाल), निव (नृप), बुह (बुध), भड (भट=योद्धा), ओट्ठ (ओष्ठ); दंत (दन्त); जण (जन), जीव, पव्वअ (पर्वत), कवोअ (कपोत=कबूतर), भमर (भ्रमर), मंदिर, बालअ (बालक), णर (नर), छत्त (छात्र), कुन्त (भाला), जर (ज्वर=बुखार); काय, अवगुण, आवण (आपण=दुकान), गुण, जम्म; तिलय (तिलक); पोक्खर (तालाब), देस (देश); महुर (मधुर), मुक्ख (मूर्ख), मुल्ल (मूल्य), रंग. रत्त (रक्त); ववहार (व्यापार), विनय, संजम, पंथ (रास्ता), पव्वअ (पर्वत), पंडिअ (पण्डित), परिग्गह (परिग्रह) आदि।

(ख) चतुर्थी और षष्ठी के रूप एक समान बनते हैं परन्तु कहीं-कहीं संस्कृत के प्रभाव के कारण चतुर्थी एकवचन में 'य' प्रत्ययान्त रूप भी बनते हैं।

(ग) आकारान्त पुं० गोवा (गोपा), सोमवा (सोमपा) आदि के भी रूप आकारान्त के समान ही होते हैं। पंचमी में हि और तृतीया में एत्व नहीं होता है।

[१] इसी प्रकार सुहि (सुधी), मुणि (मुनि), समाहि (समाधि), तवस्सि (तपस्विन्), निहि (निधि), भूवइ (भूपति=राजा), गहवइ (गृहपति=मुखिया); सेट्ठि (श्रेष्ठि=सेठ), हत्थि (हाथी), जोगि (योगी); दंडि (दण्डिन्), अरि (शत्रु), कवि (कपि=बन्दर), करि (करिन्=हाथी), कइ (कवि),

हरिणो, हरिस्स	हरीण,-णं	च०	अग्गिणो, अग्गिस्स	अग्गीण, -णं
हरित्तो, हरिणो (हरीओ,–उ,-हिंतो)	हरीहिंतो, हरीसुंतो (हरित्तो,हरीओ,-उ)	प०	अग्गित्तो, अग्गिणो,	अग्गिहिंतो, अग्गिसुंतो
हरिणो, हरिस्स	हरीण,-णं	ष०	अग्गिणो,–स्स	अग्गीण,-णं
हरिम्मि, हरिंसि	हरीसु,-सुं	स०	अग्गिम्मि,-स्सि	अग्गीसु,–सुं
हरि (हरी)	हरिणो (हरी, हरउ,–ओ)	सं०	अग्गि	अग्गिणो

(५) उकारान्त 'साहु' (साधु)[1] (६) उकारान्त 'वाउ' (वायु)

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
साहू	साहुणो (साहू, साहउ, -ओ, -वो)	प्र०	वाऊ	वाउणो
साहुं	साहुणो (साहू)	द्वि०	वाउं	वाउणो
साहुणा	साहूहि, -हिं,-हिँ	तृ०	वाउणा	वाऊहि,-हिं,-हिँ
साहुणो, साहुस्स	साहूण, -णं	च०	वाउणो, वाउस्स	वाऊण, -णं
साहुणो, साहुत्तो (साहूओ,-उ,-हिंतो)	साहूहिंतो,-सुंतो (साहुत्तो,साहूओ)	पं०	वाउणो, वाउत्तो	वाऊहिंतो,-सुंतो
साहुणो, साहुस्स	साहूण, -णं	ष०	वाउणो, वाउस्स	वाऊण, वाऊणं
साहुम्मि, साहुंसि	साहूसु,-सुं	स०	वाउम्मि, वाउंसि	वाऊसु, वाऊसुं
साहु (साहू)	साहुणो, साहू	सं०	वाउ	वाउणो

रवि (सूर्य), संधि, इसि रिसी (ऋषि), गिरि, णरवइ (नरपति), नाणि (ज्ञानी), पक्खि (पक्षी), खत्ति (क्षत्रिय), उदहि (उदधि=समुद्र), पइ (पति); सामि (स्वामी), केसरि (केशरि=सिंह), मणि (रत्न), फणि (साँप), बंभयारि (ब्रह्मचारी) आदि इकारान्त और पही पहि (प्रधी) गामणी (ग्रामणी) आदि ईकारान्त पुं० संज्ञा शब्दों के रूप बनेंगे।

[1] इसी प्रकार–उच्छु(इक्षु=गन्ना), सिन्धु (समुद्र), मच्चु (मृत्यु), धणु(धनुष), भाणु (भानु=सूर्य), विच्छु (वृश्चिक=बिच्छु), पिउ (पितृ=पिता), मन्नु (क्रोध),

(७) पिउ, पिअर (पितृ=पिता)[1]
(संस्कृत में ऋकारान्त)

(८) राय (राजन्=राजा)
(संस्कृत में नकारान्त)

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
पिअरो, पिआ	पिअरा, पिउणो	प्र०	राया	रायाणो, राइणो
पिअरं	पिअरे, पिउणो	द्वि०	रायं, राइ(या)णं	,,
पिअरेण, पिउणा	पिअरेहिं, पिऊहि	तृ०	राएण, राइणा, रण्णा	राएहिं, राईहिं
षष्ठीवत्	षष्ठीवत्	च०	षष्ठीवत्	षष्ठीवत्
पिअराओ, पिउणो, पिउरत्तो	पिअराहिंतो, पिअरासुंतो	पं०	रण्णो, राइणो, रायत्तो	रायाहिंतो, राईहिंतो, -सुंतो
पिअरस्स, पिउणो, पिउस्स	पिअराणं, पिऊणं	ष०	रायस्स, राइणो, रण्णो	रायाणं, राईणं
पिअरम्मि,-रंसि पिउम्मि; पिअरि	पिअरेसु, पिऊसु	स०	रायम्मि, राइम्मि	राएसु, राईसु
पिअ, पिअर	पिअरा, पिउणो	सं०	राया, राय	रायाणो, राइणो

पहु (प्रभु=स्वामी), रिउ, सत्तु (रिपु=शत्रु), फरसु (कुल्हाड़ा), उउ (ऋतु), करेणु (हाथी), सेउ (सेतु), मेरु, बन्धु, पवासु (प्रवासिन्), हिन्दु (हिन्दू), गुरु, गउ (गो), तन्तु (धागा), चक्खु (चक्षु), विण्हु (विष्णु), बाहु (भुजा), केउ (केतु=ध्वजा), सव्वण्णु (सर्वज्ञ), धम्मण्णु (धर्मज्ञ), भिक्खु (भिक्षु), पसु (पशु), तरु (वृक्ष), महु (मधु), इंदधणु (इन्द्रधनुष), दिग्घाउ (दीर्घायु), विभु (प्रभु), विज्जु (विद्युत्), जन्तु (प्राणी) आदि। ऊकारान्त सयंभू (स्वयम्भू) आदि शब्दों के भी रूप साहु एवं वाउ के समान बनेंगे। प्राकृत में सयंभू आदि शब्द वस्तुतः उकारान्त ही होते हैं।

[1] इसी प्रकार अन्य संस्कृत ऋकारान्त पुं० शब्दों के रूप चलेंगे—कत्तार कत्तु (कर्तृ=कर्ता), भत्तार भत्तर भत्तु (भर्तृ=पति), भायर भाउ (भ्रातृ=भाई) दायार दाउ (दातृ=दाता) आदि।

(६) अप्पाण, अत्ताण, अप्प, अत्त

(आत्मन् = आत्मा) [राजन्वत्]

	एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
प्र०	आया, अप्पा, अत्तो	अप्पाणो,अत्ताणो	पं०	अप्पाणत्तो	अप्पाणाहिंतो
द्वि०	अप्पाणं, अत्ताणं, अत्तं, अप्पं	,,	ष०	अप्पाणस्स, अप्पणो, अत्तणो	अप्पाणाणं अत्ताणाणं
तृ०	अप्पणिआ,अप्पणा अत्तणा,अप्पाणेण	अप्पाणेहि, अप्पेहि,अत्ताणेहिं	स०	अप्पाणम्मि, अत्ताणम्मि	अप्पाणेसु अत्ताणेसु
च०	षष्ठीवत्	षष्ठीवत्	सं०	अप्प, अप्पा	अप्पाणो, अत्ताणो

स्त्रीलिङ्ग संज्ञाएँ

(७) आकारान्त[1] 'बाला' (बालिका)

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	बाला	बालाओ (बालाउ बाला)
द्वि०	बालं	,,
तृ०	बालाए (बालाइ, बालाअ)	बालाहि,-हिं,-हिँ
च०	बालाअ,-इ,-ए	बालाण , बालाणं
पं०	बालाए,-इ,-अ (बालत्तो, बालाओ,-उ,-हिंतो)	बालाहिंतो,-सुंतो (बालत्तो; बालाउ,-ओ)
ष०	बालाअ, -इ, -ए	बालाण, बालाणं
स०	,,	बालासु, बालासुं

---

[1] इसी प्रकार अन्य आकारान्त स्त्री० संज्ञाओं के रूप बनेंगे-=कला, सरिआ (सरित्), कन्ना (कन्या), कमला (लक्ष्मी), गोवा (गोपा=ग्वालिन), आणा (आज्ञा), अच्छरा (अप्सरा), णासा (नासिका), भाउजाया (भौजाई); पेडिआ (पेटिका=पेटी), जीहा (जिह्वा), माला, लआ लदा (लता); छिहा (स्पृहा), हलिद्दा (हरिद्रा=हल्दी), मेहला (मेखला=करधनी), छालिया (बकरी), भज्जा (भार्या=पत्नी), निसा (निशा=रात्रि), दिसा (दिशा);

सं०	बाला, बाले	बालाओ, बालाउ (बाला)

नोट—इकारान्त, उकारान्त आदि स्त्री० के रूप प्रायः आकारान्त 'बाला के ही समान बनेंगे ।

(८) इकारान्त[1] जुवइ (युवति)

(९) ईकारान्त[2] नई (नदी)

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
जुवई	जुवईओ	प्र०	नई	नईओ
जुवइं	जुवईओ	द्वि०	नइं	नईओ
जुवईए,–इ,-अ,-आ	जुवईहि,-हिं,-हिँ	तृ०	नई ए	नईहि
,,	जुवईण,-णं	च०	नईआ	नईण
जुवईए(जुवइत्तो,जुवईओ)	जुवईहिंतो,-सुंतो	पं०	नइत्तो	नईहिंतो

मट्टिआ (मृत्तिका = मिट्टी), माआ (मातृ), ससा (स्वसृ=बहिन), णणंदा (ननद), माउसिआ (मातृस्वसृ = मौसी), धूआ (दुहितृ = पुत्री), नावा (नौ), गिरा (वाणी), खमा (क्षमा); तारगा (तारका=तारे), भासा (भाषा), सोहा (शोभा), सड्ढा (श्रद्धा), विज्जा (विद्या); लज्जा, सुण्हा (स्नुषा = बहू), विज्जुला (विद्युत्), जत्ता (यात्रा), सहा (सभा), चडआ (चटका=चिड़िया), फलिहा (खाई), भुक्खा (बुभुक्षा=भूख), रच्छा (रथ्या=गली), महुमक्खिआ (मधुमक्षिका) कुंचिया (चाबी), तिसा (तृषा=प्यास), संझा (सन्ध्या), वाया (वाणी), कलिआ (कलिका=कली), चंदिआ (चंद्रिका=चाँदनी) आदि ।

[1] इसी प्रकार अन्य इकारान्त स्त्री० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—पुत्ति (पुत्री), धूलि (धूल); सिप्पि (सीप); मुत्ति (मुक्ति), राइ (रात्रि), रत्ति (रात्रि), मइ (मति), भत्ति (भक्ति), आसत्ति (आसक्ति), सत्ति (शक्ति), कयलि (कदली=केला), दिट्ठि (दृष्टि), नीइ (नीति), रस्सि (डोरी), पंति (पंक्ति=कतार), सति (स्मृति), बुद्धि आदि ।

[2] इसी प्रकार अन्य ईकारान्त स्त्री० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—डाली (शाखा), सही (सखि), जणणी (जननी=माता), अंगुली, लच्छी (लक्ष्मी), बहिणी (भगिनी), रुप्पिणी (रुक्मिणी), गावी (गो), साडी (शाटिका=साड़ी),

जुवईए, -इ,-अ,-आ;	जुवईण,-णं	ष०	नईआ	नईण
;,	जुवईसु,-सुं	स०	नईए	नईसु
जुवइ	जुवईओ	सं०	नइ	नईओ

(१०) उकारान्त[1] धेणु (गाय) **(११) ऊकारान्त[2] 'बहू'**

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
धेणू	धेणूओ	प्र०	बहू	बहूओ, बहू
धेणुं	धेणूओ	द्वि०	बहुं	बहूओ
धेणुए	धेणूहि	तृ०	बहूए	बहूहि, -हिं, -हिँ
धेणुए	धेणूण	च०	बहूए	बहूण, बहूणं
धेणुत्तो	धेणूहिंतो	पं०	बहुत्तो	बहूहिंतो, बहूसुंतो
धेणूए	धेणूण	ष०	बहूए	बहूण, बहूणं
धेणूए	धेणूसु	स०	बहूए	बहूसु, बहूसुं
धेणु	धेणूओ	सं०	बहु	बहूओ, बहू

नपुंसकलिङ्ग संज्ञाएँ

(१२) अकारान्त[3] 'फल' **(१३) इकारान्त[4] वारि (जल)**

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
फलं	फलाणि, -इं, -इँ	प्र०	वारिं	वारीणि, -इं,-इँ

कुमारी, इत्थी (स्त्री), दासी, धाई (धाय), नडी (नटी=नर्तकी); मऊरी (मयूरी=मोरनी), तरुणी (जवान स्त्री), पुहवी (पृथ्वी), सिप्पी (सीप), मेंहदी, पसाहणी (प्रसाधनी=कंघी), समणी (श्रमणी=साध्वी), खिड्डकी (खिड़की), भित्ती (दीवाल), जाई (जाति=चमेली), वावी (वापी), साहुणी (साध्वी) आदि।

[1] इसी प्रकार अन्य उकारान्त स्त्री० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—तणु, रज्जु (रस्सी), विज्जु (विद्युत्), चंचु (चोंच), गउ (गौ) आदि।

[2] इसी प्रकार अन्य ऊकारान्त स्त्री० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—सासू (श्वश्रू=सास), चमू (सेना) आदि।

[3] इसी प्रकार अन्य अकारान्त नपुं० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—णाण (ज्ञान); तिण (तृण=घास), जीवण (जीवन), घय (घृत=घी), कसिण (कृष्ण=काला),

फलं	फलाणि, इं, -इँ	द्वि०	वारिं	वारीणि,-इं,-इँ
फलेण, -णं	फलेहि, -हिं, -हिँ	तृ०	वारिणा	वारीहि,-हिं,-हिँ
फलस्स	फलाण,-णं	च०	वारिणो	वारीण,-णं

कुंडल, दुग्ग (दुर्ग=किला), भायण (भाजन=बर्तन), कट्ठ (काष्ठ), आउह (आयुध =शस्त्र), बीअ (बीज), चारित्त (चारित्र), कुल (वंश), अमिअ (अमृत), विस (विष), वण (वन), घण (घन=मेघ), णयर (नगर), पुप्फ (पुष्प), कमल, पाव (पाप), घर (गृह), संग्गहण (संग्रह), खेत्त (क्षेत्र), सत्थ (शास्त्र), नयण (नयन), मित्त (मित्र), हियय (हृदय), विचित्त (विचित्र), सअड (शकट=गाड़ी), सच्च (सत्य), कम्म (कर्म), कव्व (काव्य), सद्द (शब्द), सुह (सुख), दुह (दुःख), रिण (ऋण=कर्ज), अण्णाण (अज्ञान), अभिहाण (अभिधान=नाम), रस, लावण्ण (लावण्य), सच्छ (स्वच्छ), सम्माण (सम्मान), सासण (शासन), रज्ज (राज्य), आकड्ढण (आकर्षण) पाण (प्राण), धिज्ज (धैर्य), वर (अच्छा), अन्न (अनाज), लोण (लवण=नमक), वसन (वस्त्र), भाल (ललाट), पगरक्ख (जूता), आभरण (आभूषण), रूव (रूप); अंडय (अण्डा), विहाण (प्रभात), मसाण (मरघट), वेसम्म (वैषम्य=विषमता), सागय (स्वागत), साहस, उत्तरीय (दुपट्टा), कंचुअ (कंचुक=कुरता), कंचण (कंगन), कंवाड (किवाड), छत्त (छत्र=छाता), सिर, काणण (कानन=वन), कप्पास (कार्पास=कपास), विजण (व्यजन=पंख या विजना), चंदण (चंदन), चम्म (चर्म=चमड़ा), पंजर (पिंजड़ा), तेल्ल (तेल), णेड्ड (नीड=घोंसला), जाण (यान=वाहन=गाड़ी), छिद्दय (छिद्र=छेद या बिल), चिंतण (विचार), आयास (आकाश), हिम (बर्फ), हेम (स्वर्ण), हिरण्ण (चाँदी), महाणस (महानस=रसोईघर), उवहाण (उपधान=तकिया), तंबोल (तांबूल=पान), मोत्तिय (मौक्तिक=मोती) आदि।

४. इसी प्रकार अन्य इकारान्त नपुं० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—दहि (दधि), वारि (जल), सुरहि (सुरभि), अट्ठि (अस्थि=हड्डी); अक्खि (अक्षि) आदि।

फलत्तो	फलाहिंतो,-सुंतो	पं०	वारित्तो	वारीहिंतो,-सुंतो
फलस्स	फलाण,-णं	ष०	वारिण	वारीण,-णं
फले, फलम्मि	फलेसु,-सुँ	स०	वारिम्मि	वारीसु,-सुं
फल	फलाणि	सं०	वारि	वारीणि

(१४) उकारान्त[1] 'वत्थु' (वस्तु)

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	वत्थुं	वत्थूणि, वत्थूइं
द्वि०	वत्थुं	वत्थूणि, वत्थूइं
तृ०	वत्थुणा	वत्थूहि, -हिं, -हिँ
च०	वत्थुणो	वत्थूण, -णं
पं०	वत्थुत्तो	वत्थूहिंतो, -सुंतो
ष०	वत्थुणो	वत्थूण, -णं
स०	वत्थुम्मि	वत्थूसु, -सुं
सं०	वत्थु	वत्थूणि

सर्वनाम शब्दरूप

(१५) सव्व[2] (सर्व=सब) पुं० सव्वा (सर्व) स्त्री० [बालावत्]

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
सव्वो	सव्वे	प्र०	सव्वा	सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वा
सव्वं	सव्वे, सव्वा	द्वि०	सव्वं	,,
सव्वेण, -णं	सव्वेहि, -हिं,-हिँ	तृ०	सव्वाए	सव्वाहि, -हिं, -हिँ

---

[1] इसी प्रकार अन्य उकारान्त नपुं० संज्ञाओं के रूप बनेंगे—महु (मधु), जाणु (जानु=घुटना), अंसु (अश्रु), जउ (जतु=लाख) आदि।

[2] इसी प्रकार निम्नोक्त रूप भी चलेंगे–सुव (स्व), अण्ण, अन्न (अन्य); पुव्व पुरिम (पूर्व); वीस (विश्व); अवह, उवह उभय (उभय), अण्णयर

सव्वस्स,	सव्वायसव्वाण; -णं	च०	सव्वाअ	सव्वासि,सव्वाण,-णं
सव्वत्तो (सव्वाओ, -उ; -हि,-हिन्तो)	सव्वाहि, सव्वेहिंतो, -सुन्तो (सव्वत्तो, सव्वाओ,-हिंतो,-सुंतो	पं०	सव्वाए	सव्वाहिंतो, -सुंतो
सव्वस्स	सव्वेसिं,सव्वाण,-णं	ष०	सव्वाए	सव्वासिं,सव्वाण,-णं
सव्वम्मि, सव्वस्सिं, -हिं, -त्थ	सव्वेसु, -सुं	स०	सव्वाए	सव्वासु,- सुं
सव्व, सव्वो	सव्वे	सं०	सव्वे,सव्वा	सव्वाओ

सव्व (सर्वं) नपुं० (फलवत्)

	एकवचन	बहुवचन
प्र०, द्वि०	सव्वं	सव्वाणि, सव्वाइं,- इँ

शेष पुं० की तरह बनेंगे ।

(१६) त (तत्[1]=वह) पुं० ता (तत्=वह) स्त्री०

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
सो	ते	प्र०	सा	ताओ, ता (तीओ,ती)
तं	ते	द्वि०	तं	ताओ, ता
तेण, तेणं	तेहि, तेहिं	तृ०	ताए, तीए	ताहि (तीहि),ताहिं
तस्स (से, ते, तास)	तेसिं(ताण,-णं)	च०	,,	तासिं (ताण,-णं)
ताओ (तो तम्हा, तत्तो, ता)	तेहिंतो, तेहिं, तेसुंतो	पं०	ताओ	ताहिंतो, तीहिंतो तासुंतो, तीसुंतो
तस्स (से,ते, तास)	ताण, तेसिं	ष०	ताए, तीए (तिस्सा,तीअ)	तासिं(ताण,-ताणं)

(अन्यतर), इअर (इतर), कयर (कतर), कइम (कतम), अवर (अपर), दाहिण दक्खिण (दक्षिण), उत्तर, अवर अहर (अधर) आदि ।

[1] इसी प्रकार ज (यद्=जो), क (किम्=कौन), एत > एअ (एतद्=यह) के रूप बनेंगे ।

तम्मि, तस्सिं (तत्थ; तहिं)	तेसु, तेसुं	स०	ताए, तीए; तीसे	तासु; -तीसु-सुं

त (तत्) नपुं०

	एकवचन	बहुवचन
प्र०, द्वि०	तं	ताणि, ताइं, ताइँ

शेष पुं० की तरह।

(१७) इम (इदम्=यह) पुं० इमी; इमा (इदम्) स्त्री०

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
इमो; अयं, अअं	इमे	प्र०	इअं, इमा, इमी, इमिआ	इमाओ; इमीओ
इमं (इणं)	इमे, इमा	द्वि०	इमं (इमिं, इणं)	इमाओ, इमीआ
इमेण, इमिणा (अणेण, णेण)	इमेहि,–हिं,–हिँ (एहि, एहिं)	तृ०	इमाए, इमीए (इमिणा, इमेण)	इमाहि, इमीहि (अणाहिं, आहिं)
इमस्स; अस्स	इमाण, इमेसिं	च०	इमाए, इमीए	इमाण; इमीण
इमाओ, इमत्तो	इमेहिंतो, -सुंतो	प०	इमत्तो, इमाओ	इमाहिंतो, -सुंतो
इमस्स, अस्स	इमाण, इमेसिं	ष०	इमाए, इमीए	इमाण,-सिं, इमीण
इमम्मि (अस्सिं, इह, इमस्सिं)	इमेसु, इमेसुं	स०	इमाए, इमीए	इमासु, इमीसु, -सुं

इम (इदम्) नपुं०

	एकवचन	बहुवचन
प्र०, द्वि०	इमं, इणं, इदं	इमाणि,–इ,–इँ

शेष पुं० के समान बनेंगे।

(१८) अमु (अदस्=वह) पुं० अमु (अदस्) स्त्री०

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
अमू, असो	अमुणो	प्र०	अमू	अमूओ,-उ, अमी

अमुं	अमुणो	द्वि०	अमुं	अमूओ,-उ; अमी
अमुणा	अमूहि, -हिं,-हिँ	तृ०	अमूए	अमूहि,-हिं,-हिँ
अमुणो; -स्स	अमूण, -णं	च०	अमूअ	अमूण, -णं
अमुत्तो, अमूओ	अमूहिंतो	पं०	अमुत्तो, अमूओ	अमूहिंतो, -सुंतो
अमुणो, अमुस्स	अमूण,-णं	ष०	अमूअ	अमूण, -णं
अमुम्मि	अमूसु,-सुं	स०	अमूए	अमूसु, -सुं

अमु (अदस्) नपुं०

	एकवचन	बहुवचन
प्र०, द्वि०	अमुं	अमूणि, -इं, -इँ

शेष पुं० के समान बनेंगे।

(१९) अम्ह (अस्मद्=मैं) तीनों लिङ्गों में (२०) तुम्ह (युष्मद्=तुम)तीनों लिङ्गों में

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
अहं (हं, अम्मि अम्हि,म्मि,अहयं)	अम्हे (अम्ह, अम्हो, वयं, मो)	प्र०	तुमं (तुं, तुवं, तुहं)	तुम्हे (तुम्ह, तुब्भे तुय्हे, तुज्झे)
ममं, महं, (मं, मिमं)	अम्हे (अम्हो)	द्वि०	,,	,,
मए (मइ,ममाइ)	अम्हेहिं (अम्हाहिं)	तृ०	तुमए (तुमे,तुए, तुमाइ, तए)	तुम्हेहिं, तुज्झेहिं (तुय्हेहिं, तुब्भेहि)
मज्झ, मम (अम्ह,मह)	अम्हाणं (ममाण; अम्हं)	च०	तुज्झ, तुम्ह, (तव, तुब्भ)	तुम्हाणं, (तुज्झाणं तुब्भं, तुवाणं)
ममाओ, ममत्तो (मज्झत्तो, ममाहिंतो)	अम्हेहिंतो	पं०	तुमाओ	तुम्हेहिंतो, तुब्भेहिंतो
मज्झ,मम अम्ह, मह	अम्हाण, ममाण, अम्हं	ष०	तुज्झ, तम्ह	तुम्हाणं, (तुब्भं; तुज्झाणं, तुवाणं)
ममम्मि(मज्झम्मि मए, मइ अम्हम्मि)	अम्हेसु -सुं (ममेसु; -सुं)	स०	तुम्हम्मि, तुमे तुमम्मि (तुवि, तुज्झम्मि)	तुम्हेसु,-सुं,(तुज्झेसु तुब्भेसु, तुमेसु, तुम्हासु)

संख्यावाचक शब्दरूप

(१) **नियम**—

(क) एक शब्द के रूप सभी विभक्तियों में एवं सभी लिङ्गों में अकारान्त शब्दों के समान चलेंगे। विशेष्य के अनुसार उनका लिङ्ग बदलेगा।

(ख) दो से अट्ठारह (२–१८) तक के संख्या शब्दों के रूप बहुवचन में ही होते हैं तथा तीनों लिङ्गों में समान होते हैं। 'उभ' और 'कइ' (कति) शब्दों के भी रूप बहुवचन में ही होते हैं। अठारह के वाद की संख्याओं के रूप एकवचन और बहुवचन में वनते हैं।

(ग) उन्नीस से अट्ठावन, (१९–५८) तक के संख्या शब्दों के रूप आकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'वाला' के समान बनते हैं तथा तीनों लिङ्गों में समान होते हैं।

(घ) उन्सठ से निन्यानबे (५९–९९) तक के संख्या शब्दों के रूप इकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'जुवइ' के समान बनते हैं तथा तीनों लिङ्गों में समान होते हैं।

(ङ) सौ=सय (१००) आदि संख्या शब्दों के रूप अकारान्त नपुंसकलिङ्ग के समान वनते हैं।

(२) **संख्यायें**[1]—

१. एगो, एगा, एगं (एक्को, एओ)
२. दोण्णि, दुवे (वेण्णि, वे, दो)
३. तिण्णि
४. चउरो, चत्तारो, चत्तारि
५. पंच
६. छ
७. सत्त
८. अट्ठ
९. णव
१०. दह, दस
११. एगारह
१२. वारह
१३. तेरह
१४. चउद्दह
१५. पण्णरह
१६. सोलह, छद्दह
१७. सत्तरह
१८. अट्ठारह
१९. एगूणवीसा
२०. वीसा, वीसइ
२१. एगवीसा
२२. दुवीसा
२३. तेवीसा
२४. चउवीसा

---

[1] संख्याओं के अन्य वैकल्पिक रूप भी मिलते हैं। 'न' के स्थान पर 'ण' तथा 'प' के स्थान पर 'व' भी मिलता है।

3600

२५. पण्णवीसा
२६. छव्वीसा
२७. सत्तवीसा
२८. अट्ठावीसा
२९. एगूणतीसा
३०. तीसा, तीसइ
३१. एगतीसा
३२. दुतीसा, दोतीसा
३३. तेतीसा
३४. चउतीसा
३५. पण्णतीसा
३६. छत्तीसा
३७. सत्ततीसा
३८. अडतीसा
३९. एगूणचत्तालीसा
४०. चत्तालीसा
४१. एगचत्तालीसा
४२. बायाला
४३. तेआलीसा
४४. चउआलीसा
४५. पण्णचत्तालीसा
४६. छचत्तालीसा
४७. सत्तचत्तालीसा
४८. अडआलीसा
४९. एगूणपन्नासा
५०. पन्नासा
५१. एगवन्ना
५२. दोवन्ना
५३. तेवन्ना
५४. चउवन्ना
५५, पणवन्ना
५६. छवन्ना
५७. सत्तावन्ना
५८. अट्ठावण्णा
५९. एगूणसट्ठि
६०. सट्ठि
६१. एगसट्ठि
६२. दोसट्ठि
६३. तेसट्ठि
६४. चउसट्ठि
६५. पणसट्ठि
६६. छसट्ठि
६७. सत्तसट्ठि
६८. अट्ठसट्ठि
६९. एगूणसत्तरि
७०. सत्तरि
७१. एगसत्तरि
७२. दोसत्तरि
७३. तेसत्तरि
७४. चउसत्तरि
७५. पणसत्तरि
७६. छसत्तरि
७८. सत्तसत्तरि
७८. अट्ठसत्तरि
७९. एगूणासीइ
८०. असीइ
८१. एगासीइ
८२. दोसीइ
८३. तेसीइ
८४. चउरासीइ
८५. पणासीइ
८६. छासीइ
८७. सत्तासीइ
८८. अट्ठासीइ
८९. एगूणणवइ
९०. णवइ
९१. एगणवइ
९२. दोणवइ
९३. तेणवइ
९४. चउणवइ
९५. पंचणवइ
९६. छण्णवइ
९७. सत्ताणवइ
९८. अट्ठाणवइ
९९. णवणवइ
१००. सयं
२००. दुसयं
३००. तिसयं
हजार–सहस्सं
१० हजार–दहसहस्स
लाख–लक्खं
करोड–कोडि

(३) प्रकार एवं क्रमवाचक संख्यायें—

प्रकारवाचक विशेषण

एगहा=एक प्रकार
दुहा, दुविहा=दो प्रकार
तिविहा=तीन प्रकार
चउविह, चउहा=चार प्रकार
पंचविह=पाँच प्रकार
दसविह=दस प्रकार
बहुहा, बहुविह=बहुत प्रकार
अणेयविह=अनेक प्रकार
णाणाविह=नाना प्रकार
सयविह, सयहा=सौ प्रकार
सहस्सहा, सहस्सविह=हजार प्रकार
दुसहस्सहा=दो हजार प्रकार

क्रमवाचक विशेषण

पढमो=पहला
बीओ, दुइयो=दूसरा
तइओ=तीसरा
चउत्थो=चौथा
पंचमो=पाँचवाँ
छट्ठो=छटवाँ
सत्तमो=सातवाँ
अट्ठमो=आठवाँ
णवमो=नौवाँ
दहमो=दसवाँ
वीसइमो=वीसवाँ
चउवीसइमो=चौबीसवाँ
सययमो=सौवाँ
अणंतयमो=अनन्तवाँ

(४) अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण—

पायो=चतुर्थांस $\frac{१}{४}$ (पाव हिस्सा)
अद्धं, अड्ढं= आधा $\frac{१}{२}$
पाओणं, पाउणं=पौना $\frac{३}{४}$
सवायो, सवायं=सवाया $१\frac{१}{४}$
सड्ढं ; सड्ढं=डेढ़ $१\frac{१}{२}$
पाओणदो=पौने दो $१\frac{३}{४}$
सड्ढपंचमो=साढ़े पाँच $५\frac{१}{२}$
सड्ढदसमो=साढ़े दस $१०\frac{१}{२}$

(५) रूप—

एग, एअ, एक्क (एक)

	पुं०		स्त्री०		नपुं०	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०
प्र०	एगो	एगे	एगा	एगाओ	एगं	एगाइं,-इँ,-णि
	एओ	एए	एआ	एआओ	एअं	एआइं
	एक्को	एक्के	एक्का	एक्काओ	एक्कं	एक्काइं

द्वि०	एगं	एगे	एगं	एगाओ	एगं	एगाइं,-इँ,-णि
	एअं	एए	एअं	एआओ	एअं	एआइं
	एक्कं	एक्के	एक्कं	एक्काओ	एक्कं	एक्काइं

शेष रूप 'सव्व' शब्दवत् चलेंगे ।

	दु, दो, वे (द्वि=दो)	ति (त्रि=तीन)	चउ (चतुर=चार)
प्र०	दुवे, दोण्णि, वेण्णि, दो, वे	तिण्णि, तओ	चत्तारो, चउरो, चत्तारि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	दोहि, वेहि	तीहि,-हिं,-हिँ	चऊहि,-हिं,-हिँ
च०; ष०	दोण्हं, वेण्हं	तिण्हं	चउण्हं
पं०	दोहिंतो, वेहिंतो	तीहिंतो, तीसुंतो	चउहिंतो, चउसुंतो
सं०	दोसु, वेसु,-सुं	तीसु, तीसुं	चऊसु, चउसु,-सुं

	पंच(पञ्चन्=पाँच)	छ(षष्=छ)	सत्त(सप्तन्=सात)	अट्ठ(अष्टन्=आठ)	णव(नवन्=नव)
प्र०	पंच	छ	सत्त	अट्ठ	णव
द्वि०	,,	छ	,,	,,	णव
तृ०	पंचहि	छहि	सत्तहि	अट्ठहि	णवहि
च०, ष०	पंचण्ह,-ण्हं	छण्हं	सत्तण्हं	अट्ठण्हं	णवण्हं
पं०	पंचाहिंतो	छाहिंतो	सत्ताहिंतो	अट्ठाहिंतो	णवाहिंतो
स०	पंचसु,-सुं	छसु,-सुं	सत्तसु,-सुं	अट्ठसु,-सु	णवसु

	दह (दशन्=दस)	वीसा (विंशति=बीस)		कइ (कति=कितने)	उभ, उह (उभय=दोनों)
		एक०	बहु०		
प्र०	दह, दस	वीसा	वीसाओ	कइ	उभं, उहं
द्वि०	,,	वीसं	,,	कइ	उभे, उभा
तृ०	दहहि, दसहि	वीसाए	वीसाहि	कईहि	उभेहि
च०, ष०	दहण्हं, दसण्हं	वीसाअ	वीसाणं	कइण्हं	उभण्हं
पं०	दहाहिंतो, दसाहिंतो	वीसाए	वीसाहिंतो	कईहिंतो	उभाहिंतो
स०	दहसु, दससु	वीसाए	वीसासु	कईसु	उभेसु

●

द्वादश अध्याय : धातुरूप

प्रमुख विशेषताएँ—

१. क्रियाओं के मूलरूप को धातु कहते हैं ।

२. द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होता है ।

३. संस्कृत की तरह तीन पुरुष हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तम ।

४. व्यञ्जनान्त धातुओं में 'अ' विकरण जोड़कर उसे स्वरान्त बना दिया है ।

५. धातुरूपों में भ्वादिगण का प्राधान्य है तथा अन्य गणों का ह्रास ।

६. आत्मनेपदी रूपों का ह्रास और उनके स्थान पर परस्मैपदी रूपों का प्राधान्य है ।

७. सहायक क्रिया के साथ कृदन्त रूपों के प्रयोग का बाहुल्य है ।

८. कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के रूपों में प्रायः एकीकरण हुआ है ।

९. सादृश्य और ध्वनि-विकास के कारण धातुरूपों का सरलीकरण है ।

१०. वर्तमानकाल, भूतकाल, भविष्यत्काल, आज्ञार्थक, विध्यर्थक और क्रियातिपत्ति इन छः प्रकारों के रूपों का अस्तित्व है । आज्ञार्थक और विध्यर्थक के रूपों में प्रायः एकरूपता है ।

११. भूतकाल और क्रियातिपत्ति में सभी पुरुषों और सभी वचनों में प्रायः एक समान प्रत्यय जुड़ते हैं ।

१२. अस् (होना) धातु के वर्तमानकाल, भविष्यत्काल, विध्यर्थक और आज्ञार्थक के सभी पुरुषों और सभी वचनों में 'अत्थि' रूप बनता है । भूतकाल के सभी पुरुषों एवं सभी वचनों में 'आसि' और 'अहेसी' रूप बनते हैं । वर्तमानकाल में अन्य रूप भी बनते हैं । जैसे—

	एकवचन	**बहुवचन**
प्र० पु०	अत्थि	संति, अत्थि
म० पु०	असि, सि, अत्थि	अत्थि
उ० पु०	अम्हि, म्हि, अत्थि, अंसि[1]	म्हो, म्ह, अत्थि, म्हु[1], मु, मो

---

[1] 'अंसि, म्हु, मो और मु ये रूप आर्ष-प्राकृत में मिलते हैं ।

१३. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से 'अ' विकरण जुड़ने के पश्चात् विभक्ति-चिह्न जोड़े जाते हैं जिससे वहाँ दो-दो रूप बनते हैं। जैसे—ध्यै > झा+अ = झाअ+इ = झाअइ (झा+इ = झाइ), पा+अ = पाअ+इ = पाअइ (पा+इ = पाइ)।

१४. कुछ धातुओं के अन्त्य व्यञ्जन को द्वित्व होने से वहाँ कहीं-कहीं दो-दो रूप बनते हैं। जैसे—चलइ चल्लइ (चलति), निमीलइ, निमिल्लइ (निमीलति)। अन्यत्र—तुट्टइ (त्रुटति), सक्कइ (शक्नोति), कुप्पइ (कुप्यति)।
प्रत्यय चिह्न—

वर्तमानकाल[1]

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इ, ए	न्ति, न्ते, इरे
म० पु०	सि, से	इत्था, ह
उ० पु०	मि[2]	मो, मु, म[3]

भूतकाल

(क) अकारान्त (संस्कृत में व्यञ्जनान्त) धातुओं में सर्वत्र—ईअ
(ख) अन्य (आकारान्त, एकारान्त एवं ओकारान्त) धातुओं में सर्वत्र—सी, ही, हीअ।

---

[1] धातुओं के अन्त में यदि 'अ' हो तो वर्तमानकाल के रूपों में 'अ' को विकल्प से 'ए' हो जाता है। जैसे—हसइ हसेइ, हससि हसेसि, हसउ हसेउ आदि।

[2] 'मि' के पूर्ववर्ती 'अ' का 'आ' विकल्प से होता है। जैसे—हसमि, हसामि।

[3] 'मो, मु, म' के पूर्ववर्ती 'अ' को 'इ' और 'आ' विकल्प से होते हैं, कहीं-कहीं 'ए' भी हो जाता है। जैसे—हसमो हसिमो हसामो हसेमो।

भविष्यत्काल[1]

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हिइ; हिए, स्सइ	हिंति; हिंते, हिरे; स्सन्ति
म० पु०	हिसि, हिसे, स्ससि	हित्था, हिह, स्सह
उ० पु०	हिमि, हामि, स्सं, स्सामि	हामो, हामु, हाम, हिमो, हिमु,हिम, स्सामो,–मु,-म, हिस्सा, हित्था

नोट——अकारान्त धातुओं में 'इ' भी जुड़ता है।

विध्यर्थक एवं आज्ञार्थक[2]

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	उ	न्तु
म० पु०	हि, सु	ह
उ० पु०	मु[3]	मो[4]

नोट—'सु' के स्थान पर इज्जसु, इज्जहि और इज्जे प्रत्यय भी जुड़ते हैं। कहीं-कहीं प्रत्यय का लोप भी होता है।[5]

क्रियातिपत्ति[6]

(परस्पर संकेत वाले दो वाक्यों का एक संकेत-वाक्य बनने पर) सभी वचनों और सभी पुरुषों में—ज्ज, ज्जा, न्त, माण।

---

[1] भविष्यत्काल में धातु के अन्त्य 'अ' का 'इ' हो जाता है। जैसे—हसिहिइ।

[2] वर्तमानकाल की तरह विध्यर्थक और आज्ञार्थक में कार्य होंगे।

[3] देखिए, पृष्ठ १०२ फुटनोट नं० ३.

[4] वही।

[5] 'अतइज्जस्विज्जहीज्जे लुको वा। हे० ८. ३. १७५.

[6] क्रियातिपत्ति में 'ज्ज' और 'ज्जा' प्रत्यय जुड़ने पर धातु के अन्त्य 'अ' का 'ए' हो जाता है। जैसे—हसेज्ज हसेज्जा।

नोट—वर्तमान, भविष्यत्, विधि और आज्ञार्थ में स्वरान्त धातुओं में प्रत्ययों से पहले तथा सभी प्रत्ययों के स्थान पर विकल्प से 'ज्ज' और 'ज्जा' आदेश भी होते हैं। जैसे—हो (भू) धातु के रूप बनेंगे।

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु० (क)	होई > होज्जइ, होज्जाई	होन्ति > होज्जन्ति; होन्ते > होज्जन्ते; होइरे > होज्जिरे
(ख)	होज्ज, होज्जा	होज्ज, होज्जा

इसी तरह अन्यत्र सभी पुरुषों और सभी वचनों में समझ लेना चाहिए।

धातुरूप—

अकारान्त 'हस' (हस्=हँसना)

वर्तमानकाल

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसइ, हसए, हसेइ	हसन्ति, हसन्ते, हसिरे, हसेन्ते
म० पु०	हससि, हससे, हसेसि	हसित्था, हसह, हसेइत्था, हसेह
उ० पु०	हसामि, हसमि, हसेमि	हसिमो, -मु,-म, हसामो, -मु,-म, हसमो, -मु,-म, हसेमो, -मु,-म

भूतकाल (तीनों पुरुषों में)

एकवचन	बहुवचन
हसीअ	हसीअ

भविष्यत्काल

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसिहिइ, -हिए, हसिस्सइ	हसिहिन्ति, -हिन्ते, -हिरे, -स्सन्ति
म० पु०	हसिहिसि, -हिसे, -स्ससि	हसिहित्था, -हिह, -स्सह

उ० पु०	हसिस्सं, -स्सामि, -हामि; हसिहिमि	हसिस्सामो, -मु, -म; हसिहामो,-मु,-म; हसिहिमो, -मु, -म; हसिहिस्सा, -हित्था

विध्यर्थ एवं आज्ञार्थ

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसउ	हसन्तु
म० पु०	हसहि, हसमु (हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे, हस)	हसह
उ० पु०	हसामु, हसिमु, हसमु	हसामो, हसिमो, हसमो

नोट—विकल्प से एत्व होने पर सर्वत्र—हसेउ, हसेन्तु आदि रूप भी बनेंगे।

क्रियातिपत्ति (तीनों पुरुषों में)

एकवचन	बहुवचन
हसेज्ज, हसेज्जा, हसन्तो, हसमाणो	हसेज्ज, हसेज्जा, हसन्तो, हसमाणो

नोट—वैकल्पिक रूपों को प्रत्यय जोड़कर सर्वत्र समझ लेना चाहिए।

आकारान्त 'पा' (पीना)

वर्तमानकाल			भूतकाल	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
पाइ	पान्ति, पान्ते, पाइरे	प्र०	पासी, पाही, पाहीअ	पासी, पाही, पाहीअ
पासि	पाइत्था, पाह	म०	,,	,,
पामि	पामो, -मु, -म	उ०	,,	,,

भविष्यत्काल			विधि एवं आज्ञार्थ	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
पाहिइ	पाहिन्ति	प्र०	पाउ	पान्तु
पाहिसि	पाहित्था	म०	पाहि, पासु	पाह
पाहिमि	पाहिमो	उ०	पामु	पामो

क्रियातिपत्ति

सर्वत्र—पाज्ज, पाज्जा, पान्तो, पामाणो।

एकारान्त 'ने' (नी = ले जाना)

वर्तमानकाल			भूतकाल
एकवचन	बहुवचन		
नेइ	नेन्ति, नेन्ते, नेइरे	प्र०	सर्वत्र—नेसी; नेही, नेहीअ
नेसि	नेइत्था, नेह	म०	
नेमि	नेमो; नेमु, नेम	उ०	

भविष्यत्काल			विधि एवं आज्ञार्थ	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
नेहिइ	नेहिन्ति	प्र०	नेउ	नेन्तु
नेहिसि	नेहित्था	म०	नेहि, नेसु	नेह
नेहिमि; नेहामि	नेहिमो, नेहामो	उ०	नेमु	नेमो

क्रियातिपत्ति में सर्वत्र—नेज्ज, नेज्जा; नेन्तो, नेमाणो ।

ओकारान्त 'हो' (भू=होना)

वर्तमानकाल			भूतकाल
एकवचन	बहुवचन		
होइ	होन्ति, होन्ते; होइरे	प्र०	सर्वत्र—होसी, होही, होहीअ
होसि	होइत्था; होह	म०	
होमि	होमो, होमु, होम	उ०	

भविष्यत्काल			विधि एवं आज्ञार्थ	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
होहिइ	होहिन्ति	प्र०	होउ	होन्तु
होहिसि	होहित्थ; होहिह	म०	होहि, होसु	होह
होहामि, होहिमि,	होहामो, होहिमो;	उ०	होमु	होमो
होस्सं, होस्सामि	होस्सामो, होहिस्सा, होहित्था			

क्रियातिपत्ति में सर्वत्र—होज्ज; होज्जा, होन्तो, होमाणो ।

त्रयोदश अध्याय : प्रत्ययान्त धातुयें

[इस अध्याय में—१. कर्म-भाववाच्य क्रियाओं, २. प्रेरणार्थक क्रियाओं, ३. सन्नन्त क्रियाओं, ४. यङन्त क्रियाओं, ५. यङ्लुगन्त क्रियाओं तथा ६. नामधातुओं के रूपों का विचार किया गया है ।]

(१) कर्म-भाववाच्य क्रियायें

पिछले अध्याय में जिन धातुरूपों को बतलाया गया है वे कर्तृवाच्य के धातुरूप हैं। जब कर्मवाच्य और भाववाच्य का प्रयोग किया जाता है तो मूल धातु में 'ईअ' और 'इज्ज' प्रत्यय विकल्प से जोड़े जाते हैं।[1] इसके पश्चात् वर्तमानकाल, भूतकाल, विध्यर्थ और आज्ञार्थ के प्रत्यय जोड़कर धातुरूप बनाये जाते हैं। भविष्यत्काल और क्रियातिपत्ति में 'ईअ' और 'इज्ज' नहीं जुड़ते हैं, वहाँ कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूप कर्तृवाच्य के ही समान बनते हैं। कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूपों में कोई अन्तर नहीं होता है। संस्कृत में इस अर्थ में 'य' प्रत्यय जोड़ा जाता है तथा उनके रूप केवल आत्मनेपद में चलते हैं। प्राकृत में ऐसा नियम नहीं है। जैसे प्र० पु० के रूप—

	धातु	एकवचन	बहुवचन
वर्तमानकाल	हस	हसीअइ, हसिज्जइ	हसीअंति, हसिज्जंति
	हो	होईअइ, होइज्जइ	होईअंति, होइज्जंति
भूतकाल	हस	हसीअईअ, हसिज्जीअ	हसीअईअ. हसिज्जीअ
	हो	होईअसी, होइज्जसी	होईअसी, होइज्जसी
विधि एवं आज्ञा	हस	हसीअउ, हसिज्जउ	हसीअंतु, हसिज्जंतु
	हो	होईअउ, होइज्जउ	होइअंतु, होइज्जंतु

अन्य उदाहरण—गम >गमीअ गमिज्ज, कह >कहीअ कहिज्ज, दा >दीअ दिज्ज; ठा >ठीअ ठिज्ज, गम >गच्छ >गच्छीअ गच्छिज्ज ।

---

[1] महाराष्ट्री में प्रायः 'इज्ज' और मागधी तथा शौरसेनी में 'ईअ' प्रत्यय जोड़ा जाता है ।

(२) प्रेरणार्थक क्रियायें

जब कोई कार्य स्वयं न करके किसी दूसरे से करवाया जाता है तो उसे प्रेरणार्थक या प्रेरक क्रिया कहते हैं। प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिऐं 'अ, ए, आव, आवे' ये चार प्रत्यय जोड़े जाते हैं। संस्कृत में इस अर्थ में णिच् (अय्) प्रत्यय जोड़ा जाता है। प्रेरणार्थक प्रत्यय जोड़ने के बाद वर्तमानकाल आदि के प्रत्यय जोड़कर धातुओं के प्रेरक रूप चलाये जाते हैं। जैसे—(क) **अप्रेरक वाक्य**—वह पढ़ता है=सो पढइ। (ख) **प्रेरक वाक्य**—वह उससे पढ़वाता है=सो तेण पाढइ।

नियम—

(क) मूळधातु (संस्कृत धातु) के उपान्त्य (अंतिम वर्ण से ठीक पूर्ववर्ती) में स्थित 'इ' को 'ए' और 'उ' को 'ओ' गुण होता है। दीर्घस्वर के रहने पर कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—विस्+अ=वेस+इ=वेसइ। विस्+एं=वेसे+इ=वेसेइ। विस्+आव=वेसाव+इ= वेसावइ। विस्+आवे=वेसावे+इ= वेसावेइ। मुह्+अ=इ=मोहइ। शुष्>सुस्+अ+इ=सोसइ। चूस्>चूसइ। चूस्>चूसेइ। चूस्>चूसावइ। चूस्>चूसावेइ। हो+अ+इ=होअइ।

(ख) 'अ' और 'ए' प्रत्यय के जुड़ने पर धातु के उपान्त्य 'अ' का 'आ' हो जाता है। जैसे—कृ>कर + अ = कार+इ=कारइ। कर+एं+इ = कारेइ। हस+अ+इ=हासइ। उपान्त्य में 'अ' न होने पर दीर्घ नहीं होगा। जैसे—छद्> ढक्क+अ+इ+ढक्कइ। दृ>दरिस्+अ+इ=दरिसइ।

प्रेरणार्थक प्रत्ययान्त रूप—

धातु	अ	ए	आव	आवे
हस (हस्)	हासइ	हासेइ	हसावइ	हसावेइ
कर (कृ)	कारइ	करेइ	करावइ	करावेइ
ढक्क (छद्)	ढक्कइ	ढक्केइ	ढक्कावइ	ढक्कावेइ
हो (भू)	होअइ	होएइ	होआवइ	होआवेइ
पड (पत्)	पाडइ	पाडेइ	पडावइ	पडावेइ
दरिस (दृश्)	दरिसइ	दरिसेइ	दरिसावइ	दरिसावेइ

ठा (स्था)	ठाअइ	ठाएइ	ठाआवइ	ठाआवेइ
झा (ध्यै)	झाअइ	झाएइ	झाआवइ	झाआवेइ
तोस (तुष्)	तोसइ	तोसेइ	तोसावइ	तोसावेइ
खम (क्षम्)	खामइ	खामेइ	खमावइ	खमावेइ

अन्य उदाहरण—ठावेइ, पूरेइ, वड्ढेइं, वत्तेइ, मारेइ, णहावेइ, जाणावेइ, पुच्छावेइ, गण्हावेइ, मारावेइ ।

'हस' और 'हो' धातु के प्रेरक रूप—

धातु	वर्तमान	भूत	भविष्यत्	विधि+आज्ञा	क्रियातिपत्ति
हस	हासइ	हासीअ	हासिहिइ	हासउ	हासेज्ज
हो	होअइ	होअसी	होइहिइ	होअउ	होएज्ज

प्रेरणार्थक कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के रूप—

मूल धातु में 'आवि' प्रत्यय जोड़कर उसमें कर्म-भाववाच्य के 'ईअ' या 'इज्ज' प्रत्यय जोड़ते हैं, पश्चात् वर्तमानकालादि के प्रत्यय जोड़कर रूप बनाये जाते हैं। पूर्वोक्त नियमानुसार सामान्यरूप से मूल धातु के उपान्त्य 'अ' का 'आ' करके उसमें 'ईअ' या 'इज्ज' जोड़ देने से कर्म-भाववाच्य की प्रेरक धातु बन जाती है। जैसे—हस+अ >हास+ईअ+इ=हासीअइ । हस+अ > हास+इज्ज+इ=हासिज्जइ । हस+आवि=हसावि+ईअ+इं=हसावीअइ । हसाविज्जइ । कृ >कर+अ=कार+ईअ+इ=कारीअइ । कारिज्जइ । करावीअइं । कराविज्जइ (काराप्यते) ।

(३) सन्नन्त (इच्छार्थक) क्रियायें

किसी कार्य को करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली धातु से संस्कृत में सन् (स्) प्रत्यय जोड़ा जाता है तथा धातु को द्वित्वादि कार्य होते हैं। प्राकृत में सन्नन्त रूप संस्कृत से ध्वनि-परिवर्तन द्वारा बनाये जाते हैं प्राकृत में उनका कोई विशेष नियम नहीं हैं। जैसे—गुप् >जुगुच्छ+इ=जुगुच्छइ (जुगुप्सति=तिरस्कार करने की इच्छा करता है)। भुज् >बुहुक्ख+इ=बुहुक्खइ (बुभुक्षति=भोजन करने की इच्छा करता है)। श्रु >सुस्सूस+इ=सुस्सूसइ (शुश्रूषति=सुनने की इच्छा करता है)। लभ् > लिच्छ+इ=लिच्छइ (लिप्सते=लाभ की इच्छा करता है)।

बुहुक्ख (भुज्) के प्र० पु० एकवचन के रूप--

वर्तमान	भूत	भविष्यत्	विधि + आज्ञार्थ	क्रियातिपत्ति
बुहुक्खइ	बुहुक्खीअ	बुहुक्खिहिइ	बुहुक्खउ	बुहुक्खेज्ज

(४) यङन्त (समभिहारार्थक) क्रियायें

क्रिया का समभिहार (बार बार होना या अधिक होना) प्रकट करने के लिए संस्कृत में व्यञ्जन से प्रारम्भ होने वाली एकाच् धातु में यङ् (य्) प्रत्यय जोड़ा जाता है। प्राकृत में यङन्त क्रियायें वर्णविकार के द्वारा बनाई जाती हैं। जैसे—पेवीअइ (पेपीयते=बार बार या अधिक पीता है)। जाजाअइ (जाजायते=वार वार या अधिक पैदा होता है)। लालप्पइ (लालप्यते=बार बार या अधिक बोलता है।

(५) यङ्लुगन्त (समभिहारार्थक) क्रियायें

जब समभिहारार्थक 'यङ्' का लोप हो जाता है तो उसे यङ्लुगन्त कहते हैं। इससे भी बार-बार या अतिशय का बोध होता है। इसका प्रयोग वैदिक संस्कृत में मिलता है। प्राकृत में इसे भी वर्णविकार के द्वारा प्रकट किया जाता है। जैसे—चंकमइ (चङ्क्रमीति=बार-बार चङ्क्रमण करता है)।

(६) नामधातुयें

संज्ञादि सुबन्त (नाम) को जब प्रत्यय जोड़कर धातु बनाया जाता है तो उसे नामधातु कहते हैं। प्राकृत में एतदर्थ 'आअ' (आय) प्रत्यय विकल्प से (अन्यत्र 'अ') जोड़ा जाता है। वर्णविकार के द्वारा भी नामधातुयें बनती हैं। संस्कृत में क्यच्, काम्यच् आदि सात प्रत्यय जोड़े जाते हैं। नामधातुओं का प्रयोग इच्छा, आचार आदि अनेक अर्थों में होता है। जैसे—

(क) इच्छार्थ—धण+आअ+इ=धणाअइ, धणाइ (धनायति=धन की इच्छा करता है)। गव्वाअइ, गव्वाइ (गव्यति=गाय की इच्छा करता है)। पुत्तीअइ; पुत्तीइ (पुत्रीयती=पुत्र की इच्छा करता है)। वाआअइ, वाआइ (वाच्यति=बात करने की इच्छा करता है)। असनाअइ; असनाइ (अशनायति=खाने की इच्छा०)। खीराअइ, खीराइ (क्षीरस्यति=दूध की इच्छा०)। पुत्तकामाअइ,

पुत्तकामाइ (पुत्रकाम्यति=पुत्र-प्राप्ति की इच्छा०)। जसकामाअइ, जसकामाइ (यशस्काम्यति=यश-प्राप्ति की इच्छा करता है)।

(ख) आचारार्थं—रायाअइ, रायाए (राजायते=राजा के समान आचरण करता है)। अलसाअइ, अलसाइ (अलसायते=आलसी के समान आचरण करता है।)। हंसाअइ, हंसाइ (हंसायते=हंस के समान०)। अच्छराअइ, अच्छराइ 'अप्सरायते=अप्सरा के समान०)। गुरुआअइ, गुरुआइ (गुरुकायते=गुरु के मान आचरण करता है)।

(ग) करोत्यर्थं—सद्दाअइ, सद्दाइ (शब्दायते=शब्द करता है)। करुणाअइ, करुणाइ (करुणायते=करुणा करता है)। वेराअइ, वेराइ (वैरायते=वैर करता है)।

(घ) उत्साहार्थं—धूमाअइ, धूमाइ (धूमायते=धूम मचाता है)। कट्ठाअइ, कट्ठाइ (कष्टायते=कष्ट=पाप करने को तैयार होता है)।

(ङ) वेदनार्थं—सुहाअइ, सुहाइ (सुखायते=सुख का अनुभव करता है या सुखी होता है)।

(च) भवत्यर्थं—लोहिआअइ, लोहिआइ (लोहितायते=लाल होता है)। हरिआअइ, हरिआइ (हरितायति=हरा होता है)। सीदलाअइ, सीदलाइ (शीतलायति=शीतल होता है)।

(छ) उद्वमनार्थं—वापफाअइ, वाप्फाइ (वाष्पायते=वाष्पमुद्वमति=भाप निकलती है)।

चतुर्दश अध्याय : विविध प्राकृत भाषायें

प्रस्तावना में प्राकृत भाषाओं के ऐतिहासिक विकासक्रम के सन्दर्भ में बतलाया गया है कि पालि, पैशाची, चूलिक-पैशाची, मागधी, शौरसेनी, अर्ध-मागधी, महाराष्ट्री एवं अपभ्रंश का क्रमिक विकास हुआ है। पालि भाषा में बौद्ध साहित्य लिखा गया है। इसका व्याकरण प्राकृत-व्याकरण से पृथक् है तथा इसे प्राकृत से पृथक् स्वतन्त्र भाषा के रूप में विद्वानों ने स्वीकार भी किया है। अतः इसका यहाँ विचार नहीं किया गया है। अपभ्रंश भी प्राकृत से यद्यपि पृथक् भाषा है परन्तु हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने प्राकृत-व्याकरण में इसका भी अनुशासन किया है। अतः यहाँ संक्षेप में उसकी भी विशेषतायें बतलाई गई हैं। सुबोधता की दृष्टि में यहाँ ऐतिहासिक-क्रम न अपनाकर निम्न क्रम अपनाया गया है—

(१) महाराष्ट्री, (२) जैन महाराष्ट्री, (३) शौरसेनी, (४) जैन शौरसेनी, (५) मागधी, (६) अर्धमागधी, (७) पैशाची, (८) चूलिका-पैशाची और (९) अपभ्रंश।

(१) महाराष्ट्री प्राकृत

इसे ही सामान्य प्राकृत के नाम से जाना जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में 'महाराष्ट्री' का शब्दतः उल्लेख न करके 'प्राकृत' इस साधारण नाम से 'महाराष्ट्री प्राकृत' के ही लक्षण और उदाहरण दिए हैं। दण्डी ने काव्यादर्श में इसे उत्कृष्ट प्राकृत कहा है।[1] वररुचि ने इसे 'महाराष्ट्री' नाम दिया है।[2]

---

[1] महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्॥ काव्यादर्श १.३४.

[2] शेषं महाराष्ट्रीवत्। प्राकृतप्रकाश १२.३२.

सेतुबन्ध (प्रवरसेनकृत), गाथासप्तशती (हालकृत), गउडवहो (वाक्पतिकृत), कुमारपालचरित (हेमचन्द्रकृत) आदि काव्यग्रन्थ महाराष्ट्री प्राकृत में ही लिखे गये हैं। गीति-साहित्य (गाथा) में महाराष्ट्री प्राकृत ने खूब प्रसिद्धि प्राप्त की हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में जो 'दाक्षिणात्या' भाषा का उल्लेख किया है वह संभवतः महाराष्ट्री प्राकृत ही है, परन्तु मार्कण्डेय के प्राकृतसर्वस्व से ज्ञात होता है कि दाक्षिणात्या और महाराष्ट्री दोनों अलग-अलग भाषायें थीं।

डॉ० हार्नलि के मतानुसार महाराष्ट्री भाषा का अर्थ है 'विशाल राष्ट्र की भाषा' न कि महाराष्ट्र देश में उत्पन्न हुई भाषा, किन्तु आचार्य दण्डी ने इसे महाराष्ट्र देश की ही भाषा कहा है। महाराष्ट्री भाषा में रचित जो साहित्य इस समय उपलब्ध है उसमें ई० सन् के बाद के ही उदाहरण पाये जाते हैं। प्राचीन महाराष्ट्री का कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है। जैन अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में प्राचीन महाराष्ट्री भाषा की कुछ प्रवृत्तियाँ सुरक्षित हैं। प्राचीन महाराष्ट्री में परवर्ती महाराष्ट्री की तरह व्यञ्जनवर्ण के लोप की प्रचुरता नहीं थी। चण्ड के व्याकरण से इसकी पुष्टि होती है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में 'आवन्ती' भाषा का प्रयोग नाटकों में धूर्त पात्रों के लिए तथा 'वाह्लीकी' भाषा का प्रयोग जुआड़ियों के लिए बतलाया है। मार्कण्डेय के प्राकृतसर्वस्व से ज्ञात होता है कि ये दोनों भाषायें महाराष्ट्री के ही अन्तर्गत रही हैं ('आवन्ती स्यान्महाराष्ट्रीशौरसेन्योस्तु संकरात्'। 'आवन्त्यामेव वाह्लीकी किन्तु रस्यात्र लो भवेत्')।

इस भाषा की प्रमुख विशेषताओं का विचार पहले किया जा चुका है।

(२) जैन महाराष्ट्री (प्राचीन महाराष्ट्री)

काव्य और नाटकों की भाषा से बहुत अंशों में साम्य रखने वाली जैन महाराष्ट्री का यद्यपि प्राचीन वैयाकरणों ने स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया है परन्तु आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी कुछ भाषागत विशेषताओं को ध्यान में रखकर 'जैन महाराष्ट्री' नाम दिया है। जैन महाराष्ट्री की मूल

प्रवृत्तियाँ अर्धमागधी से साम्य रखती हैं। संभवतः अर्धमागधी की भाषागत प्रवृत्तियों में सामान्य परिवर्तन हुआ होगा जिसके फलस्वरूप जैन महाराष्ट्री का जन्म हुआ होगा। पश्चात् व्यञ्जन वर्णों की लोप-प्रक्रिया के द्वारा सामान्य महाराष्ट्री का विकास हुआ होगा। अतः जैन महाराष्ट्री को प्राचीन महाराष्ट्री भी कहा जाता है। इस तरह अर्धमागधी जो श्वेताम्बर जैन आगमों की भाषा है, वह ही परवर्ती काल में लिखे गये जैन श्वेताम्बरीय चरित, कथा, दर्शन आदि के ग्रंथों में परिवर्तित होकर जैन महाराष्ट्री बनी होगी।

सामान्य महाराष्ट्री की तरह इसमें व्यञ्जन वर्णों का लोप अधिक नहीं होता है। 'य' और 'व' इस मृदुल ध्वनि का इस भाषा में पर्याप्त प्रयोग है। धर्मसंग्रहणी, समराइच्चकहा, कुवलयमाला, वसुदेवहिण्डी, पउमचरियं आदि ग्रंथ इसी भाषा में निवद्ध हैं।

प्रमुख विशेषताएँ—

(१) लुप्त व्यञ्जनों के स्थान पर 'य'श्रुति प्रायः सर्वत्र होती है। (महाराष्ट्री में प्रायः स्वर शेष रह जाते हैं। 'य'श्रुति जैन महाराष्ट्री की प्रमुख विशेषता है। जैसे—लावण्यम् >लायण्णं, मदनः >मयणो, महाराजस्य > महारायस्स, भणितम् >भणियं, भगवता >भगवया।

(२) अर्धमागधीवत् 'क' को कहीं-कहीं 'ग' हो जाता है। जैसे—श्रावकः > सावगो, तीर्थङ्करः >तित्थगरो, लोकः >लोगो, कन्दुकम् >गेंदुअं।

(३) अर्धमागधी की तरह आदि 'न' तथा मध्यवर्ती 'न्न' प्राय अपरिवर्तित रहते हैं। जैसे—अन्यथा >अन्नहा, नूनमेषा >नूणमेसा, कन्यकायाः >कन्नयाए, उत्पन्नः >उववन्नो, नाभिः >नाही।

(४) 'त' प्रत्ययान्त रूप 'ड' में परिवर्तित होते दिखलाई देते हैं। जैसे—क्रतम् >कडं, संवृतम् >संवुडं, व्याप्तम् >वावडं।

(५) क्त्वा प्रत्ययान्त रूप अर्धमागधी के 'च्चा' और 'त्तु' की तरह तथा महाराष्ट्री के 'तूण' और 'ऊण' की तरह भी बनते हैं। जैसे—श्रुत्वा >सोच्चा, वंदित्वा >वंदित्तु, मुक्त्वा >मोत्तूण, च्युत्वा >पविऊण।

(६) तृतीया एकवचन में अर्धमागधीवत् कहीं-कहीं 'सा' प्रत्ययान्त रूप तथा प्रथमा एकवचन में महाराष्ट्री के समान 'ओ' प्रत्ययान्त रूप बनते हैं—मनसा >मणसा, कायेन >कायसा, गौतमः >गोयमो, जिनः >जिणो।

(७) समास होने पर उत्तरपद के पहले 'म्' का आगम भी कहीं-कहीं देखा जाता है। जैसे—अन्न+अन्न=अन्नमन्न, एग+एग=एगमेग।

(८) आदेश होते हैं—यथा >जहा, अहा, यावत् >जाव आव।

(९) सभी कालों, वचनों एवं पुरुषों में 'अस्' का 'आसी' रूप अर्धमागधी की तरह प्राप्त होता है। सभी कालों के बहुवचन में 'अहेसी' रूप भी महाराष्ट्रीवत् मिलता है।

(३) शौरसेनी प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत की अपेक्षा शौरसेनी प्राकृत संस्कृत के अधिक सन्निकट है। संस्कृत नाटकों में (विशेषकर गद्य भाग में) इस प्राकृत का प्रयोग विशेषरूप से देखा जा सकता है। महाकवि अश्वघोष, भास, कालिदास आदि के नाटकों में इनके उदाहरण देखे जा सकते हैं। शौरसेनी का प्राचीनतम रूप गिरनार-शिला पर सम्राट् अशोक (ई० पू० ३ शताब्दी) की खुदी हुई चौदह धर्मलिपियों में मिलता है।[1] भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र (१८–५१) में नायिका और उसकी सखियों के लिए शौरसेनी भाषा का विधान किया है। विदूषक भी इसी भाषा का प्रयोग करता है। प्राच्या भाषा इसी की एक उपशाखा है। शौरसेनी का उत्पत्तिस्थान शूरसेन देश (मथुरा) माना जाता

---

[1] यहाँ संयुक्त व्यञ्जनों का समानीकरण, वर्णलोप और क्रियारूपों का सरलीकरण मिलता है। तत्पश्चात् अश्वघोष (ई० प्रथम शताब्दी) के नाटकों में उक्त परिवर्तन के अतिरिक्त अघोषवर्णों के स्थान पर सघोषवर्णों का आदेश मिलता है। भास और कालिदास के नाटकों में मध्यवर्ती असंयुक्त वर्णों का लोप एवं महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर 'ह' आदेश पाया जाता है जो महाराष्ट्री के लक्षण हैं।

है। इसकी सामान्य प्रवृत्तियाँ तो महाराष्ट्री की तरह हैं परन्तु कुछ विशेषतायें इसे महाराष्ट्री से पृथक् करती हैं।

प्रमुख विशेषतायें[1]—

(१) त > द—प्रायः दो स्वरों का मध्यवर्ती (अनादि असंयुक्त) 'त > द' में बदल जाता है। जैसे—लता > लदा, मारुतिना > मारुदिणा, मन्त्रितः > मंतिदो, जानाति > जाणादि, एतस्मात् > एदाहि एदाओ। यदि संयुक्त तकार हलन्त वर्ण से परवर्ती हो तब भी त > द में बदल जाता है। जैसे—महान्तः > महन्दो, अन्तःपुरम् > अन्देउरं, निश्चिन्तः > निच्चिन्दो। 'तावत्' के आदि 'त' का विकल्प से 'द' होता है। जैसे—तावत् > दाव ताव।

(२) थ > ध (विकल्प से 'ह') होता है। जैसे—तथा > तधा तह कथम् > कधं कहं, कुरुथ < करेध करेह, नाथः > णाधो णाहो, कथयति > कधे कहेदि, राजपथः > राजपधो राजपहो, अथ > अध अह, मनोरथः > मणोर मणोरहो।

(३) ह > घ (विकल्प से) होता है। जैसे—इह > इध इह, भवथ > होह होध, परित्रायध्वे > परित्तायह > परित्तायध।

(४) 'भू' (होना) धातु को विकल्प से 'भ' होता है। सामान्य प्राकृत में 'भू' का हो या हव होता है जिसे यहाँ विकल्प से 'भ' हुआ है, अन्यत्र 'ह' होगा। जैसे—भवति > होइ > भोदि होदि भवदि हवदि।

(५) र्य > य्य (विकल्प से 'ज्ज') होता है। जैसे—कार्यम् > कय्यं कज्जं, सूर्यः > सुय्यो सुज्जो, आर्यपुत्रः > अय्यउत्तो अज्जउत्तो, पर्याकुलः > पय्याकुलो पज्जाकुलो।

(६) 'इत' या 'एत' परे रहते अन्त्य मकार के आगे 'ण्' का आगम विकल्प से होता है। जैसे—किमेदम् > किणेदं किमेदं, युक्तमिदम् > जुत्तं णिमं जुत्तमिणं, एवमेदम् > एवं णेदं एवमेदं, सदृशमिदम् > सरिस णिमं सरिसमिणं।

---

[1] देखें, हेमचन्द प्राकृत-व्याकरण, चतुर्थपाद, सूत्र २६० से २८६.

(७) स्त्री >इत्थी, इव >विअ, तस्मात् >ता, पूर्व >पुरव, एव >य्येव, आश्चर्य >अच्चरिअ, विज्ञः >विञ्जो विण्णो, इदानीम्=दाणिं, यज्ञः >जज्जो जण्णो, कन्या >कञ्जा कण्णा आदेश होते हैं।

(८) विदूषक के हर्ष-द्योतन में 'ही ही', 'ननु' के अर्थ में 'णं', हर्ष में 'अम्महे', चेटी के आह्वान में 'हञ्जे', विस्मय और निर्वेद में 'हीमाणहे' का प्रयोग होता है।

(९) पञ्चमी के एकवचन में 'आदो' और 'आदु' प्रत्यय होते हैं। जैसे—वीरात् >वीरादो वीरादु।

(१०) इन्नन्त के सम्बोधन के एकवचन में विकल्प से 'इन' के 'न' का 'आ' होता है। जैसे - भो कञ्चुकिन् >भो कञ्चुइआ। संस्कृत नकारान्त शब्दों को अनुस्वार होता है। जैसे—भो राजन् >भो रायं, भगवन् >भयवं।

(११) क्रियारूपों में (वर्तमानकाल प्र० पु० एकवचन में) अकारान्त धातुओं में 'दि' और 'दे' प्रत्यय होते हैं, अन्यत्र केवल 'दि'। जैसे—गच्छति > गच्छदि गच्छदे, रमते >रमदि रमदे, करोति >किज्जदि किज्जदे, भवति > भोदि, ददाति >देदि, नयति >नेदि। भविष्यत्काल प्र० पु० एकवचन में 'दि' प्रत्यय के पूर्व 'स्सि' होगा। जैसे—भविष्यति >भविस्सिदि, करिष्यति > करिस्सिदि, गमिष्यति >गच्छिस्सिदि।

विभक्ति चिन्ह			अकारान्त 'वीर' शब्द के रूप	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
ओ	आ	प्र०	वीरो	वीरा
ं	आ, ए	द्वि०	वीरं	वीरे, वीरा
ण, णं	हि, हिं	तृ०	वीरेण,-णं	वीरेहि,-हिं
स्स, आय	ण, णं	च०	वीरस्स, वीराय	वीराण, वीराणं
आदु, आदो	आदो, त्तो, हिंतो, सुंतो	पं०	वीरादो,-दु	वीरादो, वीराहिंतो, -सुंतो, वीरेहिंतो,-सुंतो

स्स	ण, णं	ष०	वीरस्स	वीराण,-णं
सि, म्मि	सु, सुं	स०	वीरंसि, वीरम्मि	वीरेसु, वीरेसुं

(१२) धात्वादेश होते हैं—दा > दे, कृ > कर, स्था > चिट्ठ, स्मृ > सुमर, दृश् > पेक्ख। जैसे—ददामि > देमि, करोमि > करेमि, तिष्ठति > चिट्ठदि, स्मरति > सुमरदि, पश्यति > पेक्खदि।

वर्तमानकाल के धातु-प्रत्यय 'हस' धातु के रूप

एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
दि, दे	न्ति, न्ते, इरे	प्र० पु०	हसदि, हसेदे	हसंति, हसंते, हसिरे, हसइरे
सि, से	इत्था, ध, ह	म० पु०	हससि,-से	हसित्था, हसध, हसह
मि	मो, मु, म	उ० पु०	हसमि, हसेमि	हसमो,-मु, म, हसिमो, -मु,-म, हसेमो,-मु,-म

(१३) क्त्वा > इय दूण (विकल्प से, अन्यत्र 'त्ता') होता है। जैसे भूत्वा > भविय भोदूण भोत्ता, हविय होदूण होत्ता, पठित्वा > पढिय पढिदूण पढित्ता। परन्तु कृत्वा को 'कडुअ' और गत्वा को 'गडुअ' आदेश विकल्प से होते हैं। अन्यत्र करिय करिदूण, गच्छिय गच्छिदूण बनेंगे।

(४) जैन शौरसेनी (प्राचीन शौरसेनी)

यह दिगम्बर जैन आगमों की भाषा है। इसमें षट्खण्डागम, समयसार, प्रवचनसार, स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा, गोम्मटसार आदि दार्शनिक ग्रन्थ लिखे गये हैं। इस पर प्राचीन अर्धमागधी का प्रभाव रहा है। यह नाटकीय शौरसेनी से प्राचीन है। नाटकीय शौरसेनी में इसकी अनेक प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, अतः कहा जा सकता है कि जैन शौरसेनी का परिवर्तित एवं विकसित रूप नाटकीय शौरसेनी है। इसीलिये कुछ जैन विद्वान् शौरसेनी को ही प्रधान भाषा मानकर महाराष्ट्री को उसका शैलीगत एक भेद मानते हैं। जैन शौरसेनी में नाटकीय शौरसेनी और महाराष्ट्री दोनों की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।

कुछ विद्वान् जैन शौरसेनी और नाटकीय शौरसेनी में बहुत अल्प अन्तर देखकर दोनों को एक ही मानते हैं। कुछ विद्वानों ने मागधी और शौरसेनी इन दो प्राकृतों को ही प्राचीन माना है। तदनुसार मागधी का प्रचार काशी के पूर्व में और शौरसेनी का काशी के पश्चिम में था। दक्षिण भारत में भी इसका पर्याप्त प्रसार था। सम्राट् अशोक के शिलालेखों (ई० पू० ३ शताब्दी) में दोनों के प्राचीन रूप सुरक्षित हैं।

प्रमुख विशेषताएँ—

(१) (नाटकीय शौरसेनीवत्) त >द (कहीं कहीं त, य) होता है। जैसे—संयता >संजदा, प्रकाशयति >पयासदि, चेति >चेदि, विगतरागः >विगदरागो, भूतः >भूदो, स्थितिः >ठिदि, जातः >जादो, मतिज्ञानम् >मदिणाणं, सुविदितः >सुविदिदो। त्रिभुवनतिलकम् >तिहुवणतिलयं, सम्प्राप्तिः >संपत्ती, मूर्तिगतः >मुत्तिगदो, विसहते >विसहते। सर्वगतम् >सव्वगयं, भणिता >भणिया, गतम् >गयं, पतितम् >पडियं, महाव्रतम् >महव्वयं।

(२) (नाटकीय शौरसेनीवत्) थ >ध होता है जैसे—तथा >तधा, कथम् >कधं।

(३) (अर्धमागधीवत्) क >ग (कहीं कहीं 'क, य') होता है। जैसे—स्वकम् >सगं, एकान्तेन >एगंतेण, साकारः >सागारो, क्षपके >खवगे। चिरकालम् >चिरकालं, अनुकूलम् >अणुकूलं, एकसमये >एकसमयम्हि। सुखकरः >सुहयरो, प्रत्येकं >पत्तेयं, सामायिकम् >सामाइयं, नरकगतिः >णिरयगदी।

(४) 'क, ग' आदि वर्णों के लुप्त होने पर महाराष्ट्रीवत् प्रायः 'य'श्रुति तथा कभी-कभी 'व'श्रुति भी होती है। जैसे—उदरम् >उवरं, मनुजः >मणुवो, बहुकम् >बहुवं, वचनैः >वयणेहिं, गजाः >गया।

(५) अनुनासिक वर्णों में 'ङ् ञ् न्' का अभाव है। जैसे—भुजङ्गः >भुयंगो, किञ्चित् >किंचि, भिन्नम् >भिण्णं।

(६) प्रथमा विभक्ति के एकवचन में महाराष्ट्रीवत् 'ओ', सप्तमी के एकवचन में अर्धमागधीवत् 'म्मि म्हि', षष्ठी और चतुर्थी के बहुवचन में 'सिं' तथा पञ्चमी के एकवचन में नाटकीय शौरसेनीवत् 'आदो' या विभक्ति-लोप (लोप जैन शौरसेनी में है) होता है। जैसे—द्रव्यस्वभावः > दव्वसहावो, एकसमये > एकसमयम्हि, एकस्मिन् > एगम्हि, तेभ्यः > तेसिं, सर्वेषाम् > सव्वेसिं, नियमात् > णियमा, ज्ञानात् > णाणादो।

(७) क्त्वा > च्चा, त्ता (कहीं-कही 'य', कहीं-कहीं नाटकीय शौरसेनीवत् 'दूण' और महाराण्ट्रीवत् 'ऊण' भी पाये जाते हैं) होते हैं। जैसे—कृत्वा > किच्चा, स्थित्वा > ठिच्चा, गृहीत्वा > गहिय गहिऊण, ज्ञात्वा > जाणित्ता जाइऊण, गत्वा > गमिऊण।

(९) 'कृ' धातु के वर्तमान काल प्र०पु० एकवचन के विभिन्न रूप—कुव्वदि करेदि कुणेदि (शौरसेनीवत्), कुणइ करेइ (महाराष्ट्रीवत्)।

(८) नाटकीय शौरसेनीवत् 'ति' के स्थान पर 'दि' प्रत्यय होता है। जैसे—याति > जादि, भवति > हवदि, जानाति > णादि जाणादि जाणदि, क्षीयते > खीयदि, उत्पद्यते > उप्पज्जदि।

(२) मागधी

यह मगधदेश की भाषा थी। वररुचि और मार्कण्डेय ने मागधी की प्रकृति (आधार) शौरसेनी मानी है। शौरसेनी को इसकी प्रकृति कहने का प्रयोजन केवल व्याकरण के नियमों को समझाना है। वस्तुतः इसकी उत्पत्ति मगध देश की कथ्य भाषा से हुई है। इसके सर्वप्राचीन उदाहरण अशोक के शिलालेखों में मिलते हैं। भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र (१७·५०,५६) में इसका उल्लेख किया है। इसका प्रयोग संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा किया गया है। भिक्षु, क्षपणक आदि भी इसका प्रयोग करते थे। अश्वघोष, भास, कालिदास आदि के नाटकों में इसके प्रयोग मिलते हैं। मागधी के शाकारी, चाण्डाली और शाबरी ये तीन रूप मिलते हैं। ढक्की (मृच्छकटिक के जुआड़ी

की भाषा) भी मागधी का रूपान्तर है। मार्कण्डेय ने संभवतः इसे ही टाक्की नाम दिया है।

प्रमुख विशेषतायें[१] —

(१) स ष श > श—पुरुषः > पुलिशे, हंसः > हंशे, सुतम् > शुदं, सारसः शालशे, शोभनम् > शोभणं, शत्रुः > शत्तू।

[अपवाद—यदि 'स' और 'ष' का प्रयोग संयुक्त वर्ण के साथ हो तो वहाँ ('ग्रीष्म' शब्द को छोड़कर) 'स' भी देखा जाता है। जैसे—बृहस्पतिः > बुहस्पदी, कष्टम् > कस्टं, निष्फलम् > निस्फलं, धनुष्खण्डम् > धनुस्खण्डं, विष्णुम् > विस्नुं। ग्रीष्मवासरः > गिम्हवाशले।]

(२) अकारान्त पुं० शब्दों के प्रथमा एकवचन में 'ए' होता है, 'ओ' नहीं। जैसे—एष मेषः > एशे मेशे (यह भेड़), एषः पुरुषः > एशे पुलिशे। अन्यत्र—निधिः > णिही, गिरिः > गिली (पहाड़), करिः > कली (हाथी), जलम् > जलं।

(३) र > ल—नरः > णले, पुरुषः > पुलिशे, राजा > लाआ, करः > कले (हाथ), सारसः > शालशे, भट्टारिका > भस्टालिका।

(४) ज, र्ज, द्य, य > य—मागधी में 'य' का 'ज' में परिवर्तन नहीं है अपितु 'ज' ही 'य' में वदल जाता है (र्ज और द्य के रहने पर य्य)। जैसे—जानाति > याणदि, जनपदः > यणवदे, गर्जति > गय्यदि, दुर्जनः > दुय्यणे, अर्जुनः > अय्युणे, याति > यादि, यतिः > यदि, मद्यम् > मय्यं, अद्य > अय्य।

(५) न्य, ण्य, ज्ञ, ञ्ज > ञ्ञ—अभिमन्युकुमारः > अहिमञ्ञुकुमाले, सामान्यगुणः > शामञ्ञगुणे, कन्यका > कञ्ञका, अब्रह्मण्यम् > अबम्हञ्ञं, पुण्यवन्तः > पुञ्ञवंते, पुण्यम् > पुञ्ञं, अवज्ञा > अवञ्ञा, प्रज्ञा > पञ्ञा, सर्वज्ञः > शव्वञ्ञे, धनञ्जयः > धणञ्ञए, अञ्जलिः > अञ्ञली।

(६) स्थ, र्थ > स्त—उपस्थितः > उवस्तिदे, अर्थपतिः > अस्तवदी, सार्थवाहः > शस्तवाहे, सुस्थितः > शुस्तिदे।

---

[१] देखें, हेमचन्द्र प्राकृत-व्याकरण, चतुर्थपाद, सूत्र २८७ से ३०२.

(७) ट्ट, ष्ट >स्ट–पट्टः >पस्टे, कोष्ठागारम् >कोस्टागालं, भट्टारिका > भस्टालिका, भट्टिनी >भस्टिणी, सुष्ठुकृतम् >शुस्टुकदं ।

(८) च्छ >श्च –पृच्छति >पुश्चदि, गच्छ >गश्च, पिच्छिलः >पिश्चिले (पंख वाला), उच्छलति >उश्चलदि (उछलता) है ।

(९) क्ष >ᳵक (जिह्वामूलीय)–अनादि क्ष के स्थान पर ᳵ क होता है। जैसे–राक्षसः >ल ᳵ कशे (लस्कशे), यक्षः >य ᳵ के। प्रेक्ष और आचक्ष में 'स्क' होता है। जैसे—प्रेक्षते >प्रेस्कदि, आचक्षते >आचस्कदि ।

(१०) आदेश होते हैं–हृदये >हडक्के, अहम् >हगे, वयम् >हगे, शृगालः > शिआले शिआलके, तिष्ठ >चिस्ठ ।

(११) 'क्त' प्रत्यय का 'ड' तथा 'क्त्वा' प्रत्यय का 'दाणि' होता है। जैसे– मृतः >मडे, गतः >गडे, कृत्वा >करिदाणि, सोढ्वा >शहिदाणि ।

(१२) षष्ठी एकवचन और बहुवचन में क्रमशः अकारान्त शब्दों से आह (डाह) तथा आहँ (डाहँ) प्रत्यय विकल्प से होते हैं। इकारान्त और उकारान्त में 'ह' और 'हँ' प्रत्यय होते हैं। जैसे--वीरस्य >वीलाह वीलस्स । वीराणाम् >वीलाहँ वीलाण वीलाणं । अह न ईदृशः कर्मणः कारी=हगे न एलिशाह कम्माह काली (मैं इस प्रकार के कर्म को करने वाला नहीं हूँ)। सज्जनानाम् > शय्यणाहँ । भानोः >भाणुह, भानूनाम् >भाणुहँ, भाणूण । शेष शौरसेनी के समान समझना । जैसे—

विभक्ति चिह्न			अकारान्त 'वीर' शब्द के रूप	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
ए	आ	प्र०	वीले	वीला
अनुस्वार	आ	द्वि०	वीलं	वीला
ण, णं	हि, हिं, हिँ	तृ०	वीलेण,-णं	वीलेहि,-हिं,-हिँ
आह, स्स	आहँ, ण, णं	च०	वीलाह, वीलस्स	वीलाहँ, वोलाण,-णं
आदो, आदु	त्तो, ओ, उ, हि, हिंतो, सुंतो	पं०	वीलादो,-दु	वीलत्तो,वीलाशुंतो, वीलाहिंतो
आह, स्स	आहँ, ण, णं	ष०	वीलाह,वीलस्स	वीलाहँ,वीलाण,-णं
सि, म्मि	शु, शुं	स०	वीलंसि,वीलम्मि	वीलेशु,-शुं

(१३) धातु-प्रत्यय के चिह्न शौरसेनी के समान हैं। जैसे—

हश धातु के रूप—

एकवचन	बहुवचन
हशदि, हशेदि	हशंति, हशंते
हशशि, हशशे, हशेज्ज	हशइत्था, हशध, हशेध
हशामि, हशमि, हशेमि, हशेज्ज	हशमो,-मु, म, हशामो,-मु,-म

(६) अर्धमागधी (आर्ष प्राकृत)

भारतमुनि ने नाट्यशास्त्र में इस भाषा का उल्लेख करते हुये[1] इसे रूपकों में दासों, राजपुत्रों और सेठों की भाषा बतलाया है।[2] वररुचि ने महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची इन चार भाषाओं का अनुशासन किया है, अर्धमागधी का नहीं। अर्धमागधी शब्द की दो व्युत्पत्तियाँ प्रचलित हैं—

(१) 'अर्धं मागध्याः' अर्थात् जिस भाषा का अर्धांश मागधी का हो और अर्धांश शौरसेनी का। यह लक्षण नाटकीय अर्धमागधी में घटित होता है परन्तु जैन सूत्र ग्रन्थों में यह लक्षण पूर्णतः घटित नहीं होता है।

(२) 'अर्धमागधस्येयम्' मगध के आधे प्रदेश की भाषा। इसका समर्थन करते हुये श्री जिनदासगणि महत्तर (वीं शताब्दी) ने निशीथचूर्णि में कहा है 'पोराणमद्धमागहभासानिययं हवइ सुत्त', 'मगहद्धविसयभाषानिबद्ध अद्धमागहं', 'अट्ठारसदेसीभासानिययं वा अद्धमागहं' अर्थात् अर्धमागधी में अठारह देशी भाषाओं का सम्मिश्रण है। कवि वाग्भट्ट ने अपने काव्यानुशासन में इसे सर्वभाषामयी कहा है।[3] भगवान् महावीर ने इसी भाषा में अपने उपदेश दिये

---

१. मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी।
वाह्लीका दाक्षिणात्याश्च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः॥ ना० शा० १७. ४८.

२. चेटीनां राजपुत्राणां श्रेष्ठीनाञ्चार्धमागधी। ना० शा० १७. ५०.

३. सर्वार्धमागधीं सर्वभाषासु परिणामिनीम्।
सर्वेषां सर्वतो वाचं सार्वज्ञीं प्रणिदध्महे॥ काव्यानुशासन, पृ० २.

थे। श्वेताम्बर जैनों के आगम-ग्रन्थ इसी अर्धमागधी भाषा में उपनिबद्ध माने जाते हैं। अतः इसे ऋषि-भाषा या आर्ष-भाषा भी कहा जाता है। डा० जैकोवी ने जैन आगमों की भाषा को प्राचीन महाराष्ट्री (जैन महाराष्ट्री) कहा है। डा० पिशल ने इसका सयुक्तिक खण्डन किया है। सर ग्रियर्सन ने इसे शूरसेन (मध्यदेश या पश्चिम) और मगध (पूर्वी विहार) के मध्यवर्ती देश (अयोध्या) की बोली माना है। जैनों के प्रथम तीर्थङ्कर (ऋषभदेव) भी अयोध्या में हुये थे।

भौगोलिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अर्धमागधी का शौरसेनी तथा इससे निकली पूर्वी हिन्दी की अपेक्षा महाराष्ट्री तथा इससे निकली मराठी से अधिक सम्बन्ध है। अतः डा० हार्नली ने इसे आर्ष-प्राकृत मानकर इसी से नाटकीय अर्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनी का विकास बतलाया है। हेमचन्द्राचार्य ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है।[1]

इस विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अर्धमागधी को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-(१) नाटकीय अर्धमागधी और (२) श्वेताम्बरीय जैन आगमों की आर्ष अर्धमागधी। नाटकीय अर्धमागधी में मागधी की आधी विशेषतायें पाई जाती हैं। मागधी की तीन प्रमुख विशेषतायें हैं-(१) र>ल में परिवर्तन, (२) श ष स>श में परिवर्तन और (३) प्र० पु० एकवचन में 'ए' प्रत्यय। इनमें से अर्धमागधी में तृतीय प्रवृति पाई जाती है। कहीं-कहीं प्रथम प्रवृत्ति भी पाई जाती है। द्वितीय प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। आर्ष अर्धमागधी में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण है—'आर्षे हि सर्वो विधयो विकल्प्यन्ते'।[2]

प्रमुख विशेषताएँ—

(१) मागधीवत अकारान्त पुं० शब्दों के प्रथमा एकवचन में प्रायः 'ए' (कहीं-कहीं 'ओ' भी) होता है। जैसे—सः>से सो, जिनः>जिणे जिणो, एसः>एसे एसो, जीवः>जीवे जीवो, एकः>एगे, त्वम्>तुमे।

---

[1] आर्षम्। हे० ८. १. ३.

[2] हे० ८. १. ३. (वृत्ति)।

(२) कभी-कभी मध्यवर्ती र > ल में बदल जाता है। जैसे——करुणः > कलुणे, चरणम् > चलणं।

(३) स्वर-मध्यवर्ती व्यञ्जनों का लोप प्रायः नहीं होता है, यदि लोप होता है तो वहाँ प्रायः 'य'श्रुति अथवा 'त'श्रुति पाई जाती है। जैसे-— श्रेणिकः > सेणिये सेणिते, लोकः > लोये, लोगे, कूणिकः > कूणिते, सामायिक > सामातित।

(४) न और ण का वैकल्पिक प्रयोग होता है। जैसे—सर्वज्ञः > सव्वन्नु सव्वण्णु, अनलः > अनले अणले; नगरम् > नगरं नयरं, प्रज्ञा > पण्णा पन्ना, नरकात् > नरतातो, दत्तम् > दिन्नम्, जनाः > जणा, उपनीत > उवणीय।

(५) मध्यवर्ती ग, त, द, भ, य और ब प्रायः पूर्ववत् रहते हैं। यथावसर 'य' और 'त'श्रुति भी होती है। 'क' प्रायः 'ग' में, प' प्रायः 'व' या 'म' में बदल जाते हैं। जैसे—आगम > आगम, भगवन् > भगवं, नगरी > नगरी, नेता > णेता णेया, भेद > भेद भेय, नदी > नती, कदाचित् > कताति, उदरम् > उयरं, नमस्यति > नमंसति, जाति > जाति, करोति > करेति, करतल > करयल, पुरतः > पुरतो, जितेन्द्रिय > जितिंदिय, नदति > णदति, परिवर्तन > परियट्टण, वैभवः, > विभवे, लाभ > लाभ, शोभा > सोभा, प्रयोग > पयोग, अशोकः > असोगे, श्रावकः > सावगे, स्वप्नम् > सुविणं सुमिणं, नीप > नीव नीम। एकदा > एगया, आकाशः > आगासे, उपनीत > उवणीय, सोपचार > सोवयार, उपमा > उवमा, संलपति > संलवति, प्रिय > पिय, गायति > गातति, गौरव > गारव, भवति > भवति।

(६) श, ष, स > स——आकाशः > आगासे, चाक्षुषम् > चक्खुसं, सागरः > सायरे।

(७) च, ज > त य—पूजा > पूता, आत्मज > अत्तय, वाचना > वायणा, आचार्य > आयरिय, नाराच् > णारात्, प्रवचन > पावतण।

(८) शब्दरूप संस्कृत के शब्दरूपों के अधिक निकट हैं। षष्ठी और चतुर्थी का भेद स्पष्ट परिलक्षित होता है। जैसे—

विभक्ति-चिह्न			'वीर' शब्द के रूप	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
ए, ओ	आ	प्र०	वीरे	वीरा
अनुस्वार	ए	द्वि०	वीरं	वीरे
इण, सा	इहि, इँहि	तृ०	वीरेण	वीरेहिं
आए, आते	अणं	च०	वीराए, वीराते	वीराणं
आओ, आतो	इहितो	पं०	वीराओ, वीरातो	वीरेहितो
स्स	अणं	ष०	वीरस्स	वीराणं
अंसि, मि, स्सि	इसु	स०	वीरंसि, वीरम्मि	वीरेसु
ए, आ	ए	सं०	वीरे, वीरा	वीरे

(९) वर्तमान काल के धातु-प्रत्यय तथा 'गच्छ' धातु के रूप—

धातु-प्रत्यय			'गच्छ' धातु के रूप	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
इ	न्ति	प्र० पु०	गच्छइ	गच्छन्ति
सि	ह	म० पु०	गच्छसि	गच्छह
मि	मो	उ० पु०	गच्छामि	गच्छामो

(१०) यथा और यावत् शब्दों के 'य' का 'अ' होता है। जैसे—यथाजात > अहाजात, यथाख्यात > अहक्खाय, यथासुखम् > अहासुहं, यावत्कथा > आवकहा।

(११) संयुक्त दन्त्य-व्यञ्जन प्रायः मूर्धन्य हो जाते हैं। जैसे—आर्त > अट्ट, निर्ग्रन्थः > नियंठो, पतनम् > पट्टणं, नर्तकः = नट्टगे, श्रद्धा > सड्ढा।

(१२) 'एव' के पूर्ववर्ती 'अम्' को 'आम्' होता है। जैसे—एवमेव > एवामेव, तमेव > तामेव, पूर्वमेव > पुव्वामेव, क्षिप्रमेव > खिप्पामेव। तेन + एव > तेणं एव = तेणामेव।

(१३) सम्बन्ध भूत-कृदन्त क्त्वा के स्थान पर कई प्राचीन प्रत्यय (इत्ता; एत्ता, त्ता, च्चा, च्चाण, च्चाणं, इत्तु, ट्टु, इय, इया, ए; याण, याणं; ऊण,

त्तुं, इत्ताण आदि) भी मिलते हैं। जैसे—कृत्वा >करित्ता करित्ताणं करेत्ता किच्चा करेत्ताणं कट्टु, भूत्वा >होत्ता होच्चा, गृहीत्वा >घेत्तूण गहाय; आदाय >आदाए, श्रुत्वा >सोऊण सोउं, लब्ध्वा >लहियाण लहियाणं लहित्ताणं; ज्ञात्वा >नच्चाण नच्चाणं, परिज्ञाय >परिन्नाए।

(१४) हेत्वर्थक तुमुन् के स्थान पर त्तए, इत्तए, एत्तए, त्तु और ट्टु प्रत्यय होते हैं। जैसे–कर्तुम् >करित्तए करेत्तए कट्टु, द्रष्टुम् >पासित्तए, श्रोतुम् > सुणित्तु, गन्तुम् >गमित्तए ।

(१५) भूतकाल के लिये भी अनेक प्राचीन प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। पुरुष तथा वचन-सम्बन्धी भेद प्रायः मिट गया है। जैसे—अकार्षीः >कासि कासी अकासि अकासी काही, अवादीः >वयासी वयासि, अकार्षम् >अकरिस्सं, आसीत् >होसी ।

(१६) आदेश होते हैं—गृहम् >घरं गहं हरं गिहं, धनुः >धणुहं धणुक्खं धणुं, यथा >अहा जहा, यावत् >आव जाव ।

(७) पैशाची (भूत-भाषा)

पैशाची एक बहुत प्राचीन प्राकृत भाषा है। वाग्भट्ट ने इसे भूत-भाषा कहा है। पिशाच एक जाति थी और उनकी भाषा को पैशाची कहा गया है। जार्ज ग्रियर्सन का मत है कि शक और यवनों के मेल की जाति ही पिशाच जाति थी जो उत्तर-पश्चिम पंजाब अथवा अफगानिस्तान में रहती थी। वहीं से उनके विस्तार के साथ इस भाषा का भारत के विभिन्न प्रदेशों (पाण्ड्य, काञ्ची, कैकय आदि) में विस्तार हुआ। पैशाची के अधिकांश लक्षण पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषाओं से मिलते हैं। इसके विपरीत डा० हार्नली का मत है कि पैशाची द्रविड-भाषा-परिवार से उत्पन्न हुई है जो द्रविड भाषा से प्रभावित आर्यभाषा का विकृत रूप रहा है। अतः वे उसका उत्स विन्ध्य के दक्षिण में स्वीकार करते हैं।

गुणाढ्य की बृहत्कथा इसी भाषा में लिखी गई थी जिसका संस्कृत रूप क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में तथा सोमदेव के कथासरित्सागर में सुरक्षित है।

चीनी तुर्किस्तान के खरोष्ट्री शिलालेखों में तथा कुवलयमाला में पैशाची की विशेषतायें देखी जा सकती हैं। यह भाषा संस्कृत और पालि के अतिनिकट है। वररुचि ने शौरसेनी को इसकी प्रकृति मानकर अनुशासन किया है। मार्कण्डेय ने देश-भेद से पैशाची को कैकय, शौरसेन और पाञ्चाल इन तीन भागों में विभक्त किया है।

प्रमुख विशेषतायें[1]—

(१) ण > न—गुणेन > गुनेन, तरुणी > तलुनी, गुणगणयुक्तः=गुनगनयुतो।

(२) ल > ळ—कमलम् > कमळं, लोकः > ळोको, जलम् > जळं, सीलम् > सीळं।

(३) ज्ञ, न्य, ण्य > ञ्ञ–प्रज्ञा > पञ्ञा, विज्ञानम् > विञ्ञानं, ज्ञानम् > ञानं, सर्वज्ञः > सव्वञ्ञो, कन्या > कञ्ञा, पुण्य > पुञ्ञ। (अपवाद–'राजन्' शब्द के रूपों में 'ज्ञ' का 'चिञ्' विकल्प से होता है। जैसे—राज्ञो > राचिञो रञ्ञो, राज्ञा लपितम् > राचिञा रञ्ञा वा लपितं)।

(४) श, ष, स > स—शोभनम् > सोभनं, विषमः > विसमो।

(५) त, द > त–पार्वती > पव्वती, भगवती > भगवती, दामोदरः > तामोतरो, रमताम् > रमतु, भवतु > होदु > होतु, सदनम् > सतनं, प्रदेशः > पतेसो, वदनकम् > वतनकं।[1]

(६) कहीं-कहीं आदेश होते हैं–र्य > रिअ, स्न > सन सिन, ष्ट > सट। जैसे–भार्या > भारिया, स्नानं > सनानं, स्नेहः > सनेहो, कष्टम् > कसटं, स्नातम् > सिनातं।

(७) स्वरों के मध्यवर्ती क ग आदि का लोप नहीं होता है। जैसे—वचनम् > वचनं, भगवती > भगवती।

(८) ख, भ, थ > ह में नहीं बदलते हैं। जैसे-शाखा > साखा, शपथ > सपथ, प्रतिभासः > पतिभासो।

---

१. हे० ८.४.३०३–३२४.

(९) ये आदेश नहीं होते हैं—ट >ड; ठ >ढ; ह >घ; र >ल= । जैसे—भटः >भटो, मठः >मठो, दाहः >दाहो, गरुडः >गरुडो ।

(१०) आदेश होते हैं—तेन >नेन, अनया >नाए, इव >पिव, यादृशः >यातिसो, तादृशः >तातिसो, कीदृशः >केतिसो, अस्मादृशः >अम्हातिसो, हृदयकम् >हितपकं, युष्मादृशः >युम्हातिसो, भवादृशः >भवातिसो ।

(११) क्त्वा >तून (कहीं कहीं 'त्थून' और 'द्धून') –पठित्वा >पठितून, नष्ट्वा >नत्थून नद्धून, दृष्ट्वा >तद्धून तत्थून ।

(१२) शौरसेनी के ज्ज >च्च में बदल जाते हैं । जैसे—कार्यम् >कज्जं >कच्चं ।

(१३) भविष्यत काल में एय्य । जैसे—भविष्यति >हुवेय्य ।

(१४) भाव और कर्म में ईअ, इज्ज >इय्य । जैसे—गीयते >गिय्यते, रम्यते >रमिय्यते, हस्यते >हसिय्यते, पठ्यते >पठिय्यते ।

(१५) अकारान्त धातुओं में वर्तमान काल के 'इ ए' प्रत्यय के स्थान पर 'ति ते' होते हैं, अन्यत्र 'ति' होता है । जैसे—भवति >भवइ >भोति, नयति >णेइ >णेति, ददाति >दाइ >तेति, गच्छति >गच्छइ >गच्छति, गच्छते, रमते >रमइ >रमते रमति ।

(१६) पञ्चमी विभक्ति के एकवचन में अकारान्त शब्दों से आतो (डातो) और आतु (डातु) प्रत्ययों का आदेश होता है । जैसे—दूरात् >तूरातो तूरातु, त्वत् >तुमातो तुमातु, मत >ममातो ममातु ।

विभक्ति-चिन्ह			अकारान्त 'वीर' शब्द के रूप	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
ओ	आ	प्र०	वीरो	वीरा
अनुस्वार	ए, आ	द्वि०	वीरं	वीरे, वीरा
एन, एनं	हिं, हि	तृ०	वीरेन, वीरेनं	वीरेहि, वीरेहिं
स्स	न, नं	च०, ष०	वीरस्स	वीरान, वीरानं
तो, तु	तो, हिंतो, सुंतो	पं०	वीरातो, वीरातु	वीरातो,-हिंतो, -सुंतो
अंसि, म्मि	सु, सुं	स०	वीरंसि, वीरम्मि	वीरेसु, वीरेसुं

(१७) नहीं होते हैं—य >ज, न > ण, मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यञ्जनों का लोप तथा महाप्राण व्यञ्जनों का 'ह'।

(१८) 'हस' धातु के रूप—

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसति, हसते	हसंति, हसंते, हसिरे, हसेइरे
म० पु०	हससि, हससे	हसित्था, हसध, हसह
उ० पु०	हसमि, हसेमि	हसमो,-मु,-म

(८) चूलिका पैशाची

यह पैशाची की ही एक उपभाषा (प्रभेद) है। आचार्य हेमचन्द्र और पं० लक्ष्मीधर (षड्भाषाचन्द्रिकाकार) ने इसे एक स्वतन्त्र भाषा मानकर इसका पैशाची से पृथक् अनुशासन किया है। डा० नेमीचन्द्र शास्त्री ने इसे 'शूलिग' (काशगर) से सम्बन्धित माना है क्योंकि उस प्रदेश के समीपवर्ती चीनी, तुर्किस्तान से प्राप्त पट्टिका-लेखों में इसकी विशेषताएँ पाई जाती हैं। हेमचन्द्र के कुमारपाल और जयसिंह सूरि के हम्मीरमर्दन नाटक तथा षड्भाषा स्तोत्रों में इसके लक्षण पाये जाते हैं।

प्रमुख विशेषतायें[1]—

१. वर्ग के तृतीय और चतुर्थ वर्ण क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय वर्ण में बदल जाते हैं अथवा घोष वर्ण अघोष वर्ण में बदल जाते हैं। जैसे—नगरम् >नकरं, मधुरम् >मथुरं, राजा >राचा, जर्जरम् >चच्चरं, मेघः >मेखो, षण्ढः >संठो, मदनः >मतनः, कन्दर्पः >कन्तप्पो, बालकः >पालको, भगवती >फकवती, जीमूतः > चीमूतः, घर्मः >खम्मो, डमरुकः >टमलुको, गाढम् > काठं, भवति > फोति, झरः >छलो, तडागं >तटाकं। कुछ आचार्यों के मत से यह नियम आदि-वर्ण पर लागू नहीं होता है। जैसे—घर्मः >घम्मो, गतिः >गती, जीमूतः > जीमूतो।

---

[1] हे० ८. ४. ३२५–३२८.

२. र>ल (विकल्प से)—गोरी>गोली गोरी, राजा>लाचा राचा, रामः>लामो रामो, चरणं>चलनं चरनं।

नोट—शेष पैशाचीवत् समझना।

(९) अपभ्रंश

अपभ्रंश का अर्थ है—च्युत, भ्रष्ट, स्खलित, विकृत या अशुद्ध। अपभ्रंश को भी प्राचीन वैयाकरणों ने प्राकृत का एक भेद स्वीकार किया है। हेमचन्द्राचार्य ने इसकी प्रमुख विशेषताएँ बतलाकर इसे शौरसेनीवत् कहा है।[1] इसका साहित्य के रूप में प्रयोग ५ वीं शताब्दी के भी पूर्व होने लगा था। प्राकृत-चन्द्रिका में इसके देशादि (भाषा आदि) के भेद से २७ भेद गिनाये गये हैं[2]—व्राचड, लाटी, वैदर्भी, उपनागर, नागर, बार्बर, अवन्ती, पाञ्चाली, टाक्क, मालवी, कैकेयी, गौडी, कौन्तली, औढी, पाश्चात्या, पाण्ड्या, कौन्तली, सैंहली, कालिङ्गी, प्राच्या, कार्णाटी, काञ्ची, द्राविडी, गौर्जरी, आभीरी, मध्यदेशीया एवं वैतालिकी। मार्कण्डेय ने भी इन २७ भेदों का उल्लेख प्राकृतसर्वस्व में किया है।[3] अपभ्रंश के प्रमुख तीन भेद किये जाते हैं—नागर, उपनागर और व्राचड।

अनेक विद्वान् अपभ्रंश को एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं। अपभ्रंश को वे प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं की मध्य की कड़ी मानते हैं। पतञ्जलि ने महाभाष्य में संस्कृत से भिन्न सभी असिद्ध गावी, गोणी, गोता आदि प्राकृत एवं अपभ्रंश के शब्दों को सामान्य रूप से अपभ्रंश कहा है।[4] वस्तुतः प्राकृत का अन्तिम चरण अपभ्रंश है। किस अपभ्रंश से

---

[1] शौरसेनीवत्। हे० ८. ४. ४४६.

[2] प्राकृतचन्द्रिका (श्रीशेषकृष्णकृता) ९. १८–२२.

[3] व्राचडो······वैतालादिप्रभेदतः। प्राकृतसर्वस्व १. ७, पृ० २

[4] भूयांसोऽपशब्दा अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा तद्यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः। पातञ्जलमहाभाष्य, पृ० १७.

किस आधुनिक आर्य भाषा की उत्पत्ति हुई है ? इस सन्दर्भ में निम्न तथ्य हैं—

१. महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी और कोंकणी ।

२. मागधी अपभ्रंश (पूर्वी शाखा) से बंगला, उड़िया और आसामी ।

३. मागधी अपभ्रंश (बिहारी शाखा) से मैथिली, मगही और भोजपुरी ।

४. अर्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी भाषायें (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी) ।

५. शौरसेनी अपभ्रंश से बुन्देली, कन्नौजी, व्रज, बाँगरू और हिन्दी ।

६. नागर अपभ्रंश से राजस्थानी, मालवी, मेवाड़ी, जयपुरी, मारवाड़ी तथा गुजराती ।

७. पालि से सिंहली और मालदीवन ।

८. टाक्की (ढाक्की) से लहण्डी या पश्चिमीय पंजाबी ।

९ टाक्की अपभ्रंश (शौरसेनी मिश्रित) से पूर्वीय पंजाबी ।

१०. व्राचड अपभ्रंश से सिन्धी ।

११. पैशाची अपभ्रंश से काश्मीरी ।

नोट—अपभ्रंश को उकार और हकार बहुला कहा जाता है ।

प्रमुख विशेषताएँ[1]

(१) कभी-कभी ऋकार की उपस्थिति—तृण >तृणु तणु, गृह्णाति > गृण्हइ, सुकृतः >सुकृदु ।

(२) स्वरों की अनियमितता । जैसे–(क) अन्तिम दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर—सीता >सीया >सीय, कन्या >कण्णा >कण्ण, माला >माल, संध्या >संझा > संझ । (ख) एक स्वर के स्थान पर दूसरे स्वर का प्रयोग—पृष्ठ >पुट्ठि पट्ठि, रेखा >लिह लीह, बाहु >बाहा बाहु, विना >विणु, वीणा >वीणु । (ग) ह्रस्व स्वर का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व—प्रविशति >पइसइ >पईसइ, कथानक > कहाणउ >काहाणउ ।

---

[1] हे० ८. ४. ३२९-४४८.

(३) मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनों में से एक का लोप होने पर प्रायः पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ हो जाता है। जैसे—कस्य >कासु, सत्यम् >साचउ; तस्य >तासु।

(४) मध्यवर्ती व्यञ्जन के लोप होने पर यदि दो समान स्वर पास-पास में हों तो दीर्घसन्धि हो जाती है। जैसे--पितृगृह >पिइहर >पीहर, भाण्डागार >भंडाआर >भंडार, लोहकार >लोहआर >लोहार, प्रियतर >पिअअर >पिआर।

(५) 'व'श्रुति—सहोदर >सहोवर, उदर >उवर, युगल >जुवल, स्तोक >थोव, मन्दोदरी >मंदोवरी।

(६) संयुक्त व्यंजनों में रेफ की यथावत् स्थिति के साथ रेफ का आगमन भी प्रायः होने लगा। जैसे--प्रिय >प्रिय पिय, व्यास >व्रास वास, व्याकरण > व्रागरण वागरण।

(७) स्वार्थिक 'ड' और 'ल' प्रत्ययों का प्रयोग। जैसे--वृक्षः=वृक्षकः > रुक्खडु, नग्न >नग्गल, पत्र >पत्तल, देशः >देसडां।

(८) अनुरणनात्मक शब्दों का बाहुल्य--टणटणटणंत, जिगिजिगिजिगन्त।

(९) विभक्तियों का ह्रास।

अकारान्त शब्दों के प्रमुख विभक्ति-प्रत्यय तथा देव शब्द के रूप निम्न हैं—

	प्रत्यय-चिह्न		'देव' शब्द के रूप	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
प्र०	उ, ओ, लोप	लोप	देवु, देवो, देव	देव, देवा
द्वि०	उ, लोप	लोप	देवु, देव	देव, देवा
तृ०	ए, एं, ण	हिं (अ >ए विकल्प से)	देवे, देवें, देवेण	देवहिं, देवेहिं
च०	सु, स्सु, हो, लोप	हं, लोप	देव, देवसु, देवस्सु, देवहो	देवहं, देव
पं०	हु, हे	हुँ	देवहु, देवहे	देवहुँ

ष०	सु, स्सु, हो; लोप	हं, लोप	देव, देवसु, देवस्सु	देवहं, देव
स०	इ, ए	हिं	देवे, देवि	देवहिं
सं०	उ, लोप	हो, लोप	देवु, देव	देवहो, देव

लिङ्ग-भेद और शब्द-भेद से शब्द-प्रत्ययों में अन्तर पाया जाता है।

(१०) क्रियारूपों के वर्तमान काल के प्रत्यय तथा 'कर' धातु के रूप—

	प्रत्यय-चिह्न		'कर' धातु के रूप	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इ, ए	हिं [न्ति]	करइ, करए	करहिं; करन्ति
म० पु०	हि [सि]	हु [ह]	करहि, करसि	करहु, करह
उ० पु०	उं [मि]	हुं [मु]	करउं, करिमि	करहुं, करिमु

(११) 'तव्यत्' > इएव्वउं, एव्वउं, एवा। जैसे--कर्तव्यम् > करिएव्वउं करेव्वउ करेवा।

(१२) क्त्वा > इ, इउ, इवि, अवि, एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविण। जैसे—कृत्वा > करि करिउ करिवि करवि करेप्पि करेप्पिणु करेवि करेविणु।

(१३) तुमुन् > एवं, अण, अणहं, अणहिं, एप्पिं, एप्पिणु, एवि, एविणु। जैसे --कर्तुम् > करेवं करण करणहं करहिं करेप्पि करेप्पिणु करेवि करेविणु।

(१४) शीलाद्यर्थक तृच् > अणअ। जैसे--कर्तृ > करणअ। मारयितृ > मारणअ।

(१५) त्व, तल् > प्पण। जैसे--देवत्व > देवप्पण, महत्त्व > वड्डप्पण।

भाग २ : अनुवाद

पाठ १ सामान्य वर्तमान काल

उदाहरणवाक्य—

(क) प्रथम पुरुष	**पुंल्लिङ्ग**	**स्त्रीलिङ्ग**	**नपुंसकलिङ्ग**
१. वह है=	सो अत्थि।	सा अत्थि।	तं अत्थि।
२. वे दोनों हैं=	ते दुवे संति (अत्थि)।	ता दुवे अत्थि।	ताणि दुवे अत्थि।
३. वे सब हैं=	ते संति (अत्थि)।	ता अत्थि।	ताणि अत्थि।

(ख) मध्यम पुरुष (तीनों लिङ्गों में)

४. तुम हो=तुमं असि (अत्थि)
५ तुम दोनों हो =तुम्हे दुवे थ (अत्थि)।
६. तुम सब हो =तुम्हे थ (अत्थि)।

(ग) उत्तम पुरुष (तीनों लिङ्गों में)

७. मैं हूँ = अहं अम्हि (म्हि, अत्थि)।
८. हम दोनों हैं = अम्हे दुवे म्हो (म्ह, अत्थि)।
९. हम सब हैं = अम्हे म्हो (म्ह, अत्थि)।

(घ) अन्य प्रयोग--

१०. सीता जाती है = सीया गच्छइ।
११. शिष्य पढ़ता है = सीसो पढइ।
१२. वह खेलता है = सो खेलइ।
१३. हम दोनों लिखते हैं=अम्हे दुवे लिहामो।
१४. तुम हसते हो या तुम हसती हो=तुमं हससि।
१५. तुम सब नाचते हो = तुम्हे णच्चित्था।

१६. मैं वन्दना करता हूँ या करती हूँ = अहं वंदामि ।

१७. तुम भोजन करते हो = तुमं भुंजसि ।

१८. तुम सब लिखते हो = तुम्हे लिहित्था ।

१९. वे सब सोते हैं = ते सयन्ति ।

२०. हम सब देखते हैं = अम्हे पासामो ।

नियम—

१. क्रिया कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार होती है ।

२. कर्त्ता के लिङ्ग का क्रिया पर प्रभाव नहीं पड़ता है ।

३. अम्ह (अष्मद्) और तुम्ह (युष्मद्) शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते हैं ।

४. सामान्य वर्तमान काल में 'वर्तमान काल' की क्रिया का प्रयोग होता है ।

५. हमेशा 'सुबन्त' और 'तिङन्त' पदों का ही प्रयोग करें अर्थात् शब्द रूपों के प्रत्ययों से युक्त सुबन्त पदों का तथा धातुरूपों के प्रत्ययों से युक्त तिङन्त पदों का ही प्रयोग करें। विभक्ति-प्रत्ययहीन केवल प्रातिपदिकों (शब्दों) अथवा धातुओं (क्रियाओं) का प्रयोग न करें ।

६. सभी संज्ञा पद प्र० पु० में होते हैं। अतः उनके साथ क्रिया भी प्र० पु० की ही होती है ।

७ प्राकृत में द्विवचन नहीं होता है, अतः उसके लिए बहुवचन का ही प्रयोग होता है। यदि द्विवचन का अर्थ बतलाना हो तो क्रिया-पद या संज्ञा-पद के साथ 'दु' (द्वि) शब्द के बहुवचन का (द्वि शब्द के रूप प्राकृत में बहुवचनान्त ही होते हैं) प्रयोग करना चाहिए ।

८. 'अस' धातु के रूप भूतकाल को छोड़कर सर्वत्र सभी पुरुषों और वचनों में 'अत्थि' रूप भी प्रचलित है ।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—वे सब पढ़ते हैं (पढ) । वह इच्छा करती (इच्छ) है। हम सब घूमते (भम) हैं । तुम दोनों जानते हो (जाण) । महावीर

चिन्तन करता है (चिंत)। वे दोनों नमस्कार करती हैं (नम)। भैरवानन्द दौड़ता है (धाव)। तुम पीते हो (पिव)। स्त्री नाचती है (णच्च)। मैं जानता हूँ (जाण)। तम सुनती हो (सुण)। तुम दोनों लिखती हो (लिह)। हम दोनों सेवा करते हैं (सेव)। वह देखती है (पास)। वे दोनों भोजन करती हैं (भुंज)। हम सब हँसते हैं (हस)। तुम सब चलते हो (चल)। बादल गर्जता है (गज्ज)।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए–सुहाणि संति। धूआओ पढंति। मेहा गज्जंति। मोरा णच्चंति। मालाओ सोहंति। सिसू खेलइ। ताओ धावंति। सो जयइ। अहं गामि। ते भुंजंति। तुमं पासिसि। तुम्हे पासित्था। तुमं लिहसि। ते सयंति। सा भमइ। बाला कुद्दंति। चन्दो वड्ढइ। सो कुज्झइ। रीआ भमइ। सीया पीसइ। गुरु बोल्लइ। चोरो चोरेइ। बालओ खाअइ। मेहो वरसइ। तुमं धावसि। अहं हसामि।

पाठ २ सामान्य वर्तमान काल

उदाहरण वाक्य [विभक्तियों का सामान्य प्रयोग]—

१. छात्र प्रश्न पूछता है=छत्तो पण्हं पुच्छइ।
२. गुरु छात्रों को उपदेश देता है=गुरु छत्ता उवदिसइ।
३. माता बालक को पालती है=माआ बालअं पालइ।
४. राजा वीरों के लिए द्रव्य देता है=निवो (भूवई) वीराणं दव्वं दाइ।
५. पिता पुत्र के साथ जाता है=पिऊ पुत्तेण सह गच्छइ।
६. पुरुषों के द्वारा कार्य होता है=पुरिसेहिं कज्जं होइ।
७. बालक गेंद से खेलता है=बालओ कंदुअेण खेलइ।
८. वह बालक से पुस्तक मांगता है=सो बालअत्तो पोत्थअं मग्गइ।
९. मूर्ख विद्वान् से डरता है=मुक्खो सुधित्तो बीहइ।
१०. साड़ी का रंग पीला है=साडीआ रंगं पीअं अत्थि।
११. महावीर का घर है=महावीरस्स घरं अत्थि।

१२. विद्यालय में छात्र पढ़ते हैं=विज्जालये छत्ता पढन्ति ।

१३. विद्वान् में बुद्धि है=सुधिम्मि बुद्धि अत्थि ।

नियम—

९. कर्तृवाच्य के कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। कर्त्ता का सामान्य चिह्न है 'ने'।

१०. कर्तृवाच्य के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। कर्म का सामान्य चिह्न है 'को'।

११. करण में तृतीया विभक्ति होती है। करण (साधकतम्) का सामान्य चिह्न है 'के द्वारा'।

१२. सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। चतुर्थी और षष्ठी के रूप प्रायः एक समान होते हैं। सम्प्रदान का सामान्य चिह्न है 'के लिए'।

१३. अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है। अपादान (अलगाव) का सामान्य चिह्न है 'से'।

१४. स्व-स्वामीभाव आदि सम्बन्धों में षष्ठी विभक्ति होती है। षष्ठी का सामान्य चिह्न है 'का, के, की'।

१५. अधिकरण (आधार) में सप्तमी विभक्ति होती है। आधार का सामान्य चिह्न है 'में, पे, पर'।

१६. 'सह' के योग में अप्रधान में तृतीया होती है। (देखें, वाक्य नं० ५)

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—वह कवि को देखता है। पुलिस वाले चोरों को पकड़ते हैं। मैं लेखनी से लिखता हूँ। आचार्य शिष्यों को पढ़ाते हैं। बुद्धिमान् (वुहा) मूर्खों को उपदेश देते हैं। योद्धा युद्धस्थल में युद्ध करते हैं (जुज्झ)। मंदिर का पुजारी फूल चुनता है। नौकर (भिच्च) उपवन में घूमता है। मैं साधु के लिए भोजन देता हूँ। तुम पेड़ से गिरते हो। तुम सब पुस्तकें बेचते

हो (विक्रीण)। तुम रास्ते में थूकते हो। वह सोना चुराता है। वह तुम्हारा सच्चा मित्र है।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए--भडो नइं तरइ। इत्थीओ मालाओ धारंति। वत्थुणा परिग्गहो होइ। बाणेण कज्जं होइ। अहं बालाअ फलं दामि। सिसू कमलाण कंदइ। अहं छत्तत्तो पोत्थअं णेमि। सीसो साधुत्तो पढइ। सा घरत्तो धणं णेइ। सा ताअ धूआ (लड़की) अत्थि। मज्झ पुत्थअं अत्थि। णरस्स जम्मो सेट्ठो अत्थि। छत्तस्स जणओ गच्छइ। सीसे विणयं अत्थि। कमले भमरो णत्थि। अहं णयरे वसामि। कण्णेहिं सुणेमि। नयणेहिं देक्खामु। ण को वि तं हणिउं समत्थो। तुमं गिहे णिवससि। अहं वत्थं धारेमि।

पाठ ३ सामान्य वर्तमान काल

उदाहरण वाक्य [सर्वनाम, विशेषण एवं अव्ययों का प्रयोग]--

१. मैं तुम्हें जानता हूँ=अहं तुमं जाणामि।
२. तुम किसे देखते हो=तुम कं पाससि ?
३. वह उन सब स्त्रियों को नमन करती है=सा ताओ इत्थीओ नमइ।
४. क्या वह बालिका माला धारण करती है=किं सा बाला मालं धारइ।
५. ये कार्य हमारे द्वारा होते हैं=इमाणि कज्जाणि अम्हेहि होंति।
६. राम और सीता वन में जाते हैं=रामो सीया य (च) वणे गच्छन्ति।
७. यह नाचती है और तुम पत्र लिखते हो=इमा णच्चइ तुमं य पत्तं लिहइ।
८. वे क्या ले जाते हैं=ते किं णेंति ?
९. मैं वहाँ गीत गाता हूँ=अहं तत्थ गीअं गामि।
१०. क्या वे (स्त्रियाँ) कथा कहती हैं=किं ताओ कहं कहन्ति।
११. हम सब व्याकरण पढ़ाते हैं और वे प्रश्न पूछते हैं=अम्हे वागरणं पढामो ते अ पण्हं पुच्छन्ति।
१२. तुम पका फल खाते हो=तुमं पक्कं फलं खाइ।

१३. यह किसकी लड़की है=इमा काअ धूआ अत्थि ?

१४. ये पुस्तकें किन (स्त्रियों) की हैं=इमाणि पोत्थआणि काण सन्ति ?

१५. क्या वह शास्त्र का पण्डित है=किं सो सत्थस्स पंडिओ अत्थि ?

१६. यह कमल का फल है=इदं कमलस्स पुप्फं अत्थि।

१७. हम इस समय सोते हैं=अम्हे दाणिं सयामो।

१८. मैं शीघ्र नहीं जाता हूँ=अहं झत्ति ण गच्छामि।

१९. इन खेतों में पानी नहीं है=इमेसु खेत्तेसु जलं णत्थि।

२०. किन नदियों में सदा नावें तैरती हैं=कासु नईसु सया नावा तरंति ?

नियम—

१७. अव्यय सभी लिङ्गों, विभक्तियों और वचनों में अपरिवर्तित रहते हैं।

१८. विशेषण और क्रिया-विशेषण प्रायः अपने-अपने विशेष्य के पहले आते हैं।

१९. सर्वनाम (जो संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं) और विशेषण (जो संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता वतलाते हैं) शब्दों के लिङ्ग, विभक्ति और वचन अपने-अपने विशेष्य के अनुसार होते हैं।

२०. क्रिया-विशेषण सदा नपुंसक लिङ्ग के एकवचन में होते हैं।

२१. य (च) का प्रयोग जुड़े हुए शब्दों के बाद में अथवा जुड़े हुए शब्दों के दोनों ओर करना चाहिए।

२२. कर्त्ता जब 'य' से जुड़े हुए हों तो क्रिया बहुवचन में होगी।

२३. प्रश्नवाचक (Interrogative) और निषेधवाचक (Negative) वाक्य भी साधारण (Affirmative) वाक्यों की ही तरह होते हैं। प्रश्न का भाव किं, कओ (कुतः), कहं (कथम्), कहिं (कुत्र) आदि अव्ययों को जोड़कर प्रकट किया जाता है तथा वाक्य के अन्त में प्रश्नसूचक चिह्न भी लगाया जाता है। निषेध का भाव व्यक्त करने के लिए साधारणतः 'ण' का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी व्यञ्जन से आरम्भ होने वाले शब्दों के आदि में

'अ' जोड़कर और स्वर से आरम्भ होने वाले शब्दों के आदि में 'अण' जोड़कर भी निषेधात्मक वाक्य बनाये जाते हैं। गमणं > अगमणं, आवस्सअं अणावस्सअं।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—श्याम (साम) और कृष्ण (किसण) पुस्तकें पढ़ते हैं। क्या वह तुमसे नहीं डरता है (बीहइ)? मैं उससे लाल कपड़ा लेता हूँ (गिण्हामि)। यह फल किसान के लिए है। यहाँ साँप (फणि) निकलते हैं। साधु इन सब छात्राओं को जानता है। क्या ये स्त्रियाँ शीघ्र कार्य नहीं करती हैं? वे इसको (इमं) प्रणाम नहीं करते हैं। तुम किन (काओ) स्त्रियों को दान देते हो? क्या वे सब यहाँ पढ़ते हैं? कौन वहाँ भोजन करता है? क्या यह (इमा) वहाँ जाती है? क्या तुम यहाँ (अत्थ) ठहरते हो (ठासि)? माता कभी भी कुमाता नहीं होती है। मैं सदा मोक्ष की अभिलाषा करता हूँ।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—केत्तिअ रूबगाणं आवस्सअया अत्थि? ते कल्ल अत्थ न अत्थि। तुम्हे तत्थ था। अहं अत्थ अम्हि। तुमं किं पाससि? तं फलं तस्स अत्थि। ताणि वत्थाणि काण सन्ति? इदं तुज्झ भायरो गच्छइ। सा ताण बहिणो अत्थि। कासु लज्जा ण अत्थि? अत्थि इहेव कुसग्गपुरं नाम नयरं। उत्तमस्स छत्तस्स इदं फलं अत्थि। ण दीसइ जाइविसेसो को वि। दस बाला निसाए पढंति। इदं परक्कं पोत्थयं अत्थि। तुज्झ पुत्तो कहिं वसइ? अहं पोत्थयं वाणारसिं पढामि। हलिद्दाए पीअं रंगं होइ। मुत्तीए परमं सुहं अत्थि। तीए सुएसीए (सुकेशी के) घरम्मि नडईए उत्तमं णच्चं होइ। धणवंताणं सव्वे पसंसंति। ताणं जसो सव्वत्थ वित्थिण्णो ण अत्थि।

पाठ ४ सामान्य भूतकाल

उदाहरण वाक्य [भूतकालिक क्रिया का प्रयोग]—

१. मैंने आज एक प्रश्न पूछा = अहं अज्ज एक्को पण्हो पुच्छीअ।

२. वहाँ क्या हुआ = तत्थ किं होही ?
३. वह गाँव गया = सो गामं गच्छीअ ।
४. उसने दूध पिया = सो दुद्धं पाही ।
५ मैंने पुस्तक पढ़ी = अहं पोत्थअं पढीअ ।
६ तुमने यह क्या किया = तुमं इदं किं करीअ ?
७. तुम सबने आज गीत सुना = तुम्हे अज्ज गीअं सुणीअ ।
८. कल यहाँ क्या हुआ = कल्ल अत्थ किं होही ?
९. कल वे सब वहाँ थे = कल्ल ते तत्थ अहेसि ।

नियम—

२३. भूतकाल के अर्थ में भूतकालिक क्रिया का प्रयोग होता है। संस्कृत की तरह अनद्यतन भूत, परोक्षभूत तथा सामान्य भूत ऐसा भेद नहीं है। सर्वत्र एक ही क्रिया का प्रयोग होता है। भूतकाल के रूपों में सर्वत्र (सभी वचनों और सभी पुरुषों में) अकारान्त धातु के होने पर 'ईअ' प्रत्यय जुड़ता है तथा अकारान्त से भिन्न धातुओं (आकारान्त, एकारान्त एवं ओकारान्त) में सर्वत्र 'ही, सी, हीअ' प्रत्यय जुड़ते हैं। शेष वर्तमान काल की तरह कार्य होते हैं।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—कृष्ण ने कंस को मारा। क्या उसने कल गीत नहीं गाया ? मैंने दूध पिया। क्या उसने व्याकरण की पुस्तक पढ़ी ? मैंने पुस्तक नहीं पढ़ी। क्या तुम सबने अपना कार्य नहीं किया ? बालक गेंद से खेलते थे। उस छात्र ने रोटी (रोटिअं) खाई। छात्रायें नदी में तैरीं। किसान ने खेत जोता (कस्सीअ)। वे (ताओ) स्त्रियाँ कल कहाँ (कत्थ) थीं ? वह वहाँ नहीं था। क्या उसने आचाराङ्ग पढ़ लिया ? मैंने उसकी रक्षा की। क्या उन्होंने कुएँ पर स्नान नहीं किया ?

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—सा दव्वं फासीअ। तुमं फलं खाही। किं तुमं कलहीअ ? इत्थिआ कहं पुच्छीअ। सा झत्ति जग्गीअ। ते वत्थं कीणीअ।

सा तुमं खमीअ । तुमं रोटिअं खाही । अहं खेत्तं कस्सीअ । णायाहीसो नायं सुणीअ । अहं उत्तरज्झयणं पढीअ । बालआ उज्जाणे पुप्फाणि तुट्टीअ । ते महुरं गीयं गाहीअ । कि तुमं झाणं झाही ? किं सा मज्झ घडिं न चोरीअ ? तुमं एत्थ ठाणओ गच्छीअ ।

●

पाठ ५ सामान्य भविष्यत् काल

उदाहरण वाक्य [भविष्यत् काल की क्रिया का प्रयोग]—

१. मैं विद्यालय अवश्य जाऊँगा=अहं विज्जालयं अवस्सं गच्छिहिमि ।
२. वह प्रतिदिन गेंद खेलेगी=सा पइदिणं कन्दुअं खेलिहिइ ।
३. तुम मुझे वहाँ देखोगे=तुमं ममं तत्थ पासिहिसि ।
४. वह पुस्तक लिखेगी=सा पोत्थअं लिहिहिइ ।
५. वह यहाँ ध्यान करेगा=सो अत्थ झाणं करिहिइ (झाहिइ) ।
६. क्या तुम दूध पियोगे=किं तुमं दुद्धं पाहिसि ?
७. क्या तुम गीत गाओगे=किं तुमं गीअं गाहिसि ?
८. क्या तुम कपड़ा खरीदोगे=किं तुमं वत्थं कीणहिसि ?
९. हम वाराणसी जायेंगे=अम्हे वाणारसिं गच्छहिस्सामो ।

नियम—

२४. भविष्यत् काल के अर्थ में भविष्यत् क्रिया का प्रयोग होता है। संस्कृत की तरह अनद्यतन भविष्यत् (लुट्) और सामान्य भविष्यत् (लृट्) का भेद नहीं है। शेष वर्तमान काल की तरह जानना चाहिए।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—क्या तुम कल व्याकरण पूछोगे ? क्या तुम मेरा कार्य नहीं करोगे ? मैं बगीचे में फूलों को देखूंगा। सीता पुस्तक पढ़ेगी। वे परमात्मा का ध्यान कर रहे होंगे। क्या तुम्हारी बहिन गाना गायेगी ? विश्वविद्यालय में प्राकृत की पढ़ाई होगी। वे प्रतिदिन यहाँ पूजा करेंगे। क्या वह

स्त्री आज यहाँ नाचेगी ? वह क्या कार्य करेगा ? क्या तुम वहाँ अधिक बोलोगे ? वे दोनों पुस्तकें देखेंगे (पेच्छिहिंति) । आज तुम कथा कहोगे (कहिहिसि) । कल माताजी इलाहाबाद से आयेंगी । हम देश का विकास करेंगे । जुलाई मास में कालेज खुलेगा (उग्घहिइ) । हम लोग दिल्ली जायेंगे । आज वह स्कूल जायेगा ।

(ख) **हिन्दी में अनुवाद कीजिए**—तुम्हे धेणूओ पासिहित्था । णरो खेत्ताणि कस्सिहिइ । भूवई इमाणि णयराणि जयिहिइ । तुमं फलाणि भुंजिहिसि । अम्हे ताणि पुप्फाणि गिण्हिहामो । सीसो सत्थाणि (शास्त्र) पढिहिइ । ते घराणि ण इच्छिहिंति । सो एकल्लो किं करिस्सइ ? तुमं विस्सविज्जालयस्स अहियारी होहिसि । खेत्ते सस्सं उप्पज्जहिइ । सो जंबुफलाणि खाअहिइ । ते अम्हाणं उवहाराओ कज्जाओ य पसण्णा होहिन्ति । अहं सच्चं बोल्लहिमि । सो वणम्मि झाणहिइ । किं कल्लं जलं वरसहिइ । किं तुमं णियपोत्थयं आणेहिसि ? अहं कमलाणि पासिहिमि ।

●

पाठ ६ अपूर्ण वर्तमान-भूत-भविष्यत् काल

उदाहरण वाक्य [जा रहा, खेल रहा आदि वाक्यों का प्रयोग]—

१. मनोरमा काम कर रही है=मणोरमा कज्जं कुणन्ती अत्थि ।
२. मैं परमात्मा का ध्यान कर रहा हूँ=हं (अहं) परमप्पं झाणन्तो म्हि ।
३. मैं सच बोल रहा हूँ=अहं सच्चं बोल्लामि ।
४. क्या वह गुरु को प्रणाम कर रहा है=किं सो गुरुं पणमइ ?
५. तुम पढ़ नहीं रहे हो=तुमं पढन्तो न अत्थि ।
६. बालक खेल रहे हैं=बालआ खेल्लन्ति (खेलं कुणन्तो सन्ति) ।
७. गुरु शिष्यों को उपदेश दे रहे हैं=गुरु सिस्साण उवएसं देंतो अत्थि ।
८. तुम्हारी स्थूलता बढ़ रही है=तुम्हाणं पीणिमा वड्ढइ ।
९. क्या तुम पुस्तक पढ़ रहे थे=किं तुमं पोत्थयं पढीअ ?

१०. वे आत्मा का ध्यान कर रहे थे=ते अप्पं झाहीअ।

११. लड़के खेल रहे थे=वालआ खेलीअ।

१२. वे पढ़ रहे होंगे=ते पढहिइ।

१३. मैं गा रहा हूँगा=अहं गायहिइ।

नियम—

२५. अपूर्णकालिक क्रिया का अनुवाद दो प्रकार से किया जाता है—(१) सामान्य वर्तमान-भूत-भविष्यत् काल की तरह तथा (२) 'न्त' (शतृ) प्रत्ययान्त धातु के साथ पुरुष एवं वचन के अनुसार 'अस' धातु की क्रिया को जोड़कर।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—वह गाना गा रही है। वे स्कूल के प्राङ्गण में दौड़ रहे हैं। वे लड़कियाँ सुन्दर नृत्य कर रही हैं। हम दोनों बाजार जा रहे हैं। तुम क्या खा रहे हो? कल तुम सव इस समय ध्यान कर रहे होगे। प्रातः यहाँ यज्ञ हो रहा होगा। वे कल वाराणसी जा रहे थे। क्या तुम कल परीक्षा की तैयारी कर रहे थे? क्या माधुरी खेल रही थी? छात्र कक्षा में पढ़ रहे हैं। बहे वहाँ कल नाच रहा होगा।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—तुमं विज्जालयम्मि कल्लं गच्छहिसि। तुमं कूवम्मि ण्हाणं न करेसि। उज्जाणे वालआ पुप्फाणि तुट्टीअ। ते धम्मसालाए णच्चं पेक्खंता सन्ति। सीला गुरुं पणमइ। तीओ बालिआओ गिहम्मि पढन्तीओ संति। सो समेण कज्जं कुणन्तो अत्थि। निम्मला गाणं गाहीअ। अहं खेत्ते कज्जं कुणन्तो म्हि। सीला दसवायणे पुरक्कारं पप्पहिइ।

पाठ ७ आज्ञा एवं विधि

उदाहरण वाक्य [आज्ञार्थक एव विध्यर्थक क्रियाओं का प्रयोग]—

१. तुम गीत गाओ = तुमं गीअं गाहि।

२. वह यहाँ ठहरे = सा अत्थ ठाउ।

३. तुम सब शास्त्र सुनो = तुम्हे सत्थं सुणह ।

४. तुम सब उसे न पीटो = तुम्हे तं ण ताडह ।

५. वह मालाएँ गूंथे = गुथउ सा मालाओ ।

६. हम दूध पियें = अम्हे दुद्ध पामो ।

७. क्या मैं वहाँ जाऊँ = किं अहं तत्थ गच्छमु ।

८. तुम सब विद्यालय जाओ = तुम्हे विज्जालयं गच्छह ।

९. वे सब आत्मा का ध्यान करें = ते अप्पं झांतु ।

१०. वे सब स्त्रियाँ यह कार्य करें = ताओ इत्थीओ इमं कज्जं करन्तु ।

११. तुम्हें पत्र लिखना चाहिए = पत्तं लिहहि तुमं ।

नियम—

२६. आज्ञा, विधि, निमन्त्रण, इच्छा, आमन्त्रण, संभावना, अनुज्ञा, प्रार्थना आदि अर्थ प्रकट करने के लिए विध्यर्थक एवं आज्ञार्थक क्रियाओं का प्रयोग होता है। विध्यर्थक (विधिलिङ्) और आज्ञार्थक (लोट्) क्रियाओं के रूप एक समान बनते हैं।

२७. कर्त्ता, कर्म और क्रिया को किसी भी क्रम में रक्खा जा सकता है।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—इन पेड़ों को मत काटो (छिन्नहि)। सत्य बोलो और यश प्राप्त करो। तुम पुस्तकें पढ़ो। वे सब आज खेलें। क्या मैं यहाँ प्रतिदिन विहार करूँ? तुम्हें गुरुजनों की सेवा करनी चाहिए। वे सब शास्त्र सुनें। तुम दोनों कलह न करो। धर्म में श्रद्धा करो। दूसरों से प्रेम करो। क्या मैं यहाँ खेलूं? तुम वीरप्रसवा होओ। सज्जनों से द्रोह मत करो। गुरुजनों को नमस्कार करो। मैं उसे कैसे प्रसन्न करूँ? गुरुजनों की निन्दा मत करो। वे धर्मशास्त्र पढ़ें। आकाश में तारागणों को देखो।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—तुम्हे जसं लंभह। अहं इच्छामि सो भुञ्जउ। सो वत्थं सिव्वउ। संझं कुणउ दुवेलं। एत्थ उवविसहि। तुम्हे वयं

(व्रत) पालह। किं अहं वागरणं पढामु उअ (अथवा) आगमं पढामु। मम पत्थणा (प्रार्थना) अत्थि, तुमं आगमं पढहि। सा घडं कुणउ। पण्डिओ तुमं वयं रक्खहि। सावज्जं वज्जउ मुणी। वसामु गुरुकुले णिच्चं। गोयम ! समयं मा पमायउ। संनिहिं ण कुणउ माहणो। ण कोवह आयरियं। सव्वं कलहं विप्पजहेय भिक्खू। सव्वे भद्दाइं पासन्तु। सव्वे सुहिणो होंतु। तुमं इमाणं दरिद्दाणं रुप्पआणि देहि। इदं कज्जं सिग्घं करेहि तुमं। सा बालिआ उच्छुरसं पाउ।

●

पाठ ८ विध्यर्थक वाक्य

उदाहरण वाक्य [तव्व, अणिज्ज और अणीअ प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. शिष्य को गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए=सीसेण गुरुणो आणा पालिअव्वा, पालणिज्जा, पालणीआ।

२. उसे यह कार्य करना चाहिए=तेण इदं कज्जं करणीअं करणिज्जं कायव्वं वा।

३. क्या मुझे वहाँ शास्त्र ग्रहण करना चाहिए=मए तत्थ सत्थं घेत्तव्वं किं ?

४. श्याम को कृपा नहीं छोड़ना चाहिए=सामाए किवा ण मोत्तव्वा।

५. वधू को सास की सेवा करना चाहिए=वहूए सासूए सुस्सूसितव्वं सुस्सूसणीअं सुस्सूसणिज्जं वा।

६, रात्रि में ज्यादा देर तक नहीं जागना चाहिए=रत्तीए चिरं न जागरिअव्वं।

नियम--

२८. विधि, चाहिए आदि अर्थों में जैसे कर्तृवाच्य में विध्यर्थक लकार का प्रयोग होता है, वैसे ही कर्मवाच्य और भाववाच्य में तव्व, अणिज्ज और अणीअ इन विध्यर्थक कृत्-प्रत्ययों का भी प्रयोग होता है। इन प्रत्ययान्त पदों के लिङ्ग और वचन कर्मवाच्य में कर्म के अनुसार तथा भाववाच्य में सदा नपुं० एकवचन में होते हैं। कर्मवाच्य और भाववाच्य में इनका प्रयोग होने से कर्त्ता में तृतीया तथा कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है।

अभ्यास--

(क) **प्राकृत में अनुवाद कीजिए**--उसे ऐसा वचन नहीं बोलना चाहिए। भाषाविज्ञान के छात्रों को प्राकृत अवश्य पढ़ना चाहिए। यह बात अब छिपाने के योग्य नहीं है। हमें निर्बलों की सदा रक्षा करना चाहिए। हमेशा सत्कर्म करना चाहिए। उन्हें अपना पाठ पढ़ना चाहिए। गुरु के चरण पूजनीय हैं। तृण की भी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। हमें देश की रक्षा करना चाहिए। तुम्हें भोजन करना चाहिए। उन्हें समय से खेलना और पढ़ना चाहिए। आप सबको प्रातः ईश्वर की वन्दना अवश्य करना चाहिए। किसी से घृणा नहीं करना चाहिए।

(ख) **हिन्दी में अनुवाद कीजिए**--तुमए तत्थ णच्चिअव्वं। इमेहि इदं कज्जं करणीअं। काहि दव्वं घेत्तव्वं? सीसेण सया पण्हं पुच्छिअव्वं। ताए इदं दुक्खं सुणणीअं। बालएहि अत्थ चिट्ठिअव्वं। ईसरो तेण थुणणीअं। साहुणा इदं अत्थं मुणणिज्जं (जानना)। किवाए कहिज्जउ, अहुणा किं मए कुणेअव्वं। अम्हेहिं भरयदेसस्स इतिहासो जाणेअव्वो। लोहो कयावि ण करणीओ। गुरुभरो एसो भारो मए कहं वोढव्वो।

●

पाठ ९ पूर्वकालिक वाक्य (कर या करके)

उदाहरण वाक्य [तूण, तुं आदि भूतकालिक कृत्-प्रत्ययों का प्रयोग]--

१. मैं आपको प्राप्तकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ = अहं भवन्तं लहिऊण बहुपसन्नो अम्हि।

२ हम पुस्तकें पढ़कर चलेंगे = अम्हे पोत्थिआइं पढिऊण गच्छिहिमो।

३. तुम भोजन करके सोओगे = तुम्हे भुंजिऊण सयिहित्था।

४. वह विद्यालय जाकर लिखती है=सा विज्जालयं गच्छिऊण लिहइ।

५. उन्होंने पहाड़ पर चढ़कर ईश्वर को नमस्कार किया = ते पव्वयम्मि आरोहिऊण ईसरस्स नमीअ।

६. उसने नाचकर एवं गाकर पूजा की=सो णच्चिऊण गाऊण च अच्चीअ ।

७. वे थोड़ा विश्राम करके दौड़े = ते अप्पविस्सामं काऊण धावीअ।

८. वह विश्वास दिलाकर भी नहीं आया=सो वीसासं दाऊण वि ण उवागया ।

नियम—

२९. पूर्वकालिक वाक्यों में एक क्रिया के होने पर दूसरी क्रिया का होना पाया जाता है। ऐसे वाक्यों में यदि दोनों क्रियाओं का कर्त्ता एक ही हो और पूर्वकालिक क्रिया से 'कर' या 'करके' अर्थ निकलता हो तो पूर्वकालिक क्रिया (कर या करके) में तुं; तूण आदि सम्बन्धसूचक भूतकालिक कृत्-प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—क्या तुमने वहाँ जाकर प्रश्न पूछे ? वह पानी पीकर नहीं खेलती है। व्याकरण जानकर क्या करोगे ? मैंने पुस्तक पढ़कर ध्यान किया। सीता देखकर पढ़ती है। तुम यह प्रश्न पूछकर क्या करोगे ? क्या वे दूसरों की सेवा करके प्रसन्न होते हैं ? ईश्वर को नमस्कार करके मैं जाता हूँ। राजा धन देकर नौकर को भेजता है।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—सा दुद्धं पाऊण (पीकर) गच्छीअ। तुमं अत्थ खेलिऊण पढिहिसि। सो नमिऊण अच्चिहिइ। अम्हे पढिऊण सयिहामो। तुम्हे पुच्छिऊण गच्छह। सा पत्तं लिहिऊण पढइ। तुमं हसिऊण खेलइ। किं सा तत्थ सम्मं सुणिऊण ण लिहइ। अहं इदं कज्जं करिऊण पढिस्सामि। पुरायणं पाठं सुमिरिऊण अग्गपाढो पढसु। अहं पइण्णं काऊण कहेमि मए ण एवं कयं। कुंभआरो घडं कुणिऊण नियट्ठाणे सन्निविट्ठो।

●

पाठ १० निमित्तार्थक या हेत्वर्थक वाक्य

उदाहरण वाक्य [तुं और दुं प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. मैं पढ़ने के लिए विद्यालय जाता हूँ=अहं पढिउं विज्जालयं गच्छामि।

२. क्या तुम खेलने के लिए प्रतिदिन यहाँ आते हो = किं तुमं खेलिउं अत्थ पइदिणं आगच्छसि ?

३. वह प्रश्न पूछने के लिए सेवा करती है=सा पण्हं पुच्छिउं सेवइ।

४. मैं गीत सुनने के लिए शीघ्र गया = अहं गीअं सुणिउं झत्ति गच्छीअ।

५. क्या वह उपदेश देने के लिए इस समय पढ़ती है = किं सा उवदिसिउं दाणिं पढइ ?

६. मैं बुद्धिमान् बनने के लिये पढ़ूँगा = अहं वुहा होउं पठिस्सामि।

७. तुम यह कार्य करने में समर्थ नहीं हो = तुमं इदं कज्जं करिउं ण समत्थो असि।

८. वन जाने की इच्छा है = वणं गच्छिउं इच्छा अत्थि।

९. यह जाने का समय है = इमो गच्छिउं कालो।

१०. यह समय आपस में झगड़ने का नहीं है = नायं समयो परोप्परं विवदित्तए।

नियम—

३०. निमित्तार्थक या हेत्वर्थक ('को' या 'के लिए') अर्थ प्रकट करने के लिए धातु में 'तु' और 'दु' प्रत्यय जोड़े जाते हैं। 'तु' और 'दु' प्रत्ययान्त पद अव्यय होते हैं। ऐसे वाक्यों (निमित्तार्थक वाक्यों) में मुख्य क्रिया का कर्त्ता और 'तु' प्रत्ययान्त क्रिया का कर्त्ता ऐक ही होता है।

३१. 'जाने को है' या 'जाने वाला है' आदि अर्थों में भी 'तु' और 'दु' प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

३२. कभी-कभी 'अत्थि' आदि क्रिया का प्रयोग स्पष्टार्थ होने से नहीं भी किया जाता है।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—वह परीक्षा में पास होने के लिए पढ़ता है। छात्र पुस्तकें खरीदने के लिये बाजार जाते हैं। क्या तुम व्याकरण पढ़ना

चाहते हो ? वे स्नान करने के लिए जायेंगे। मैं पढ़ने के लिये काशी जाऊँगा। वे पूजा करने के लिए मंदिर गये। मैं गाना गाने के लिए रङ्गशाला जाता हूँ। वे भोजन के लिए सेवा करते हैं। वे धोने के लिए (धोविउं) कपड़े ले गये। क्या आप कुछ कहना चाहते हैं ?

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए–सा जलं पाउं चिट्ठइ। सो झाउं तं खमइ। तुमं किं कहिउं नमसि। जुवाणो धाविउं वसइ। बालओ कमलाणि पाउं सम्माणं करइ। तुमं वागरणं पढिउं भणिहिसि। किं सा रहस्सं जाणिउं णच्चइ ? दाउं इदं धणं। ठाउं इदं ठाणं। लिहिउं पुच्छिहि। इदं कज्जं तुए विणा को अण्णो काउं सक्कइ। अहं इदं दुक्करं कज्जं काउं पयण्णं करिहामि। तुम्हे कलहिउं तक्कहित्था।

●

पाठ ११ प्रेरणात्मक वाक्य

उदाहरण वाक्य [प्रेरणार्थक अ, ए, आव, आवे, आवि प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. (क) शिष्य पढ़ता है = सीसो पढइ।
   (ख) मैं शिष्य को पढ़ाता हूँ = अहं सीसं पढावेमि=पढावमि।
   (ग) मैंने शिष्य को पढ़ाया = अहं सीसं पढावीअ।
   (घ) मैं शिष्य को पढ़ाऊँगा = अहं सीसं पढाविहिमि।
   (ङ) मैं शिष्य को पढ़ाऊँ = अहं सीसं पढावमु।
   (च) मैं शिष्य से पढ़वाता हूँ = अहं सीसेण पढावेमि=पढावमि।
२. (क) तुम लिखते हो = तुमं लिहसि।
   (ख) हम तुम्हें लिखाते हैं = अम्हे तुमं लिहावेमो।
   (ग) हमने तुम्हें लिखाया = अम्हे तुमं लिहावीअ।
   (घ) हम तुम्हें लिखायेंगे = अम्हे तुमं लिहाविहामो।
   (ङ) हम तुम्हें लिखायें = अम्हे तुमं लिहावमो।
   (च) हम तुमसे लिखवाते हैं = अम्हे तुमये लिहावमो।

३. (क) वह क्षमा करता है = सा खमइ ।

(ख) वह उसे क्षमा कराता है = सो तं खामइ = खामेइ = खमावइ = खमावेइ ।

(ग) उसने उसे क्षमा कराया = सो तं खामसी = खामेसी = खमावसी = खमावेसी ।

(घ) वह उसे क्षमा करायेगा = सो तं खामेज्ज = खमावेज्ज = खामहिइ ।

(ङ) वह उसे क्षमा कराये = सो तं खामउ = खामेउ = खमावउ ।

(च) वह उससे क्षमा करवाता है = सो तेण खामइ ।

नियम—

३३. प्रेरणात्मक वाक्यों में दो प्रकार के कर्त्ता होते हैं—

(क) **प्रेरक कर्त्ता या प्रयोजक कर्त्ता**—वह कर्त्ता जो या तो दूसरे के लिए क्रिया करता है या दूसरे से कोई क्रिया करवाता है ।

(ख) **प्रयोज्य कर्त्ता**—वह कर्त्ता जिससे प्रेरक कर्त्ता कोई क्रिया करवाता है अथवा जिसके लिए प्रेरक कर्त्ता स्वयं भी कोई क्रिया करता है ।

ऐसे वाक्यों में कर्तृवाच्य का प्रयोग होने पर प्रेरक कर्त्ता में प्रथमा तथा प्रयोज्य कर्त्ता में यदि उससे क्रिया कराई जाती है तो तृतीया और यदि उसके लिए क्रिया की जाती है तो द्वितीया होती है । जैसे (क)—मैं उससे पढ़वाता हूँ (अहं तेण पढावेमि) । यहाँ 'मैं' प्रेरक कर्त्ता है जो दूसरे से पढ़ने की क्रिया करा रहा है । अतः मैं (अहं) में प्रथमा, उससे (तेण) में तृतीया विभक्ति और क्रिया प्रयोजक कर्त्ता (मैं) के अनुसार हुई । (ख) मैं उसे पढ़ाता हूँ (अहं तं पढावेमि) । यहाँ प्रयोजक कर्त्ता मैं (अहं) की स्वयं के लिए पठन क्रिया न होकर दूसरे के लिए पढ़ाने की क्रिया की जा रही है । अतः ऐसे वाक्यों में प्रयोजक कर्त्ता में (अहं) में प्रथमा तथा प्रयोज्य कर्त्ता 'उसे' (तं) में द्वितीया विभक्ति हुई । क्रिया प्रयोजक कर्त्ता के अनुसार होगी ।

३४. भूतकाल, भविष्यत्काल आदि के वाक्य होने पर पहले मूल धातु में प्रेरक प्रत्यय जोड़े जाते हैं पश्चात् भूतकाल आदि के प्रत्यय जोड़कर वाक्य बनाये जाते हैं ।

अभ्यास—

(क) **प्राकृत में अनुवाद कीजिए**—नर्तक ने नर्तकी को नाचना सिखाया। अध्यापक ने बालकों से पढ़वाया। पिता पुत्र से पत्र लिखवाता है। मैं उसके लिए घुमाता हूँ। तुम उसे सुलाओगे। वह मुझे जगायेगा। रीता पाठशाला में पत्र लिखवायेगी। तुम उसे नमस्कार कराओ। माता ने बालक को स्नान करावाया। भाई बहिन को नोकर से ससुराल भिजवाता है।

(ख) **हिन्दी में अनुवाद कीजिए**—तुम्हे छत्ता पढावेइत्था। अम्हे तुमं हसाविहामो। सो बालाओ सयावउ (सुलाना)। सा तुमं णच्चावीअ। तुमं तेण जलं पिवावेसि। तुम्हे तं ण हसावह। गुरु सीसं पणामावइ। महावीरो लोगे धम्मं सुणावइ।। सेट्ठी सरीरम्मि तेल्लं चोप्पडावइ। निवो कुमारं हत्थिम्मि चडाविहिइ (चढ़ाना)। गोयमो ताए लेहं लिहावसी। ते मए पढावेंति।

⁂

पाठ १२ वाच्य-परिवर्तन

उदाहरण वाक्य [ईअ, ईय और इज्ज प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. (क) मैं गाँव जाता हूँ=अहं गामं गच्छामि (कर्तृवाच्च)।
(ख) मेरे द्वारा गाँव को जाया जाता है=मए गामो गच्छीअइ (कर्मवाच्य)।
२. (क) वह घड़ा बनाता है=सो घडं करइ (कर्तृवाच्च)
(ख) उसके द्वारा घड़ा बनाया जाता है=तेण घडो करीअइ (कर्म०)।
(ग) मेरे द्वारा घड़ा बनाया गया =मए घडो करीअईअ (कर्म०)।
३. (क) राजा तुम्हें देखता है=निवो तुमं पस्सइ (कर्तृवाच्य)।
(ख) राजा के द्वारा तुम देखे जाते हो=निवेण तुमं पासीअसि (कर्म०)।
(ग) राजा के द्वारा तुम देखे गये=निवेण तुमं पासीअईअ पासिज्जीअ वा (कर्म०)।
(घ) राजा के द्वारा तुम देखे जाओगे=निवेण तुमं पासिहिसि (कर्म०)।
४. (क) मैं तुमसे पूछता हूँ=अहं तुमं पुच्छामि (कर्तृ०)।

(ख) मेरे द्वारा तुम पूछे जाते हो = मए तुमं पुच्छिज्जसि (कर्म०)।

(ग) मेरे द्वारा तुम पूछे जाओ = मए तुमं पुच्छीअहि (कर्म० आज्ञा०)।

५. तुम्हारे द्वारा पुस्तक पढ़ी गई = तुमए पोत्थअं पढीअईअ पढिज्जीअ वा।

६. सास के द्वारा बहु संतुष्ट की गई = सासूए बहू तूसीअईअ तूसिज्जीअ वा।

७. छात्रों के द्वारा ग्रंथ सुने जायें = छत्तेहि सत्थाणि सुणीअंतु (कर्म० विधि०)।

८. तुम्हारे द्वारा मैं देखा जाऊंगा = तुमए अहं पासिहिमि (कर्म० भवि०)।

९. (क) मेरे द्वारा हँसा गया = मए हसीअईअ हसिज्जीअ वा (भाव० भूत०)।

(ख) मेरे द्वारा हँसा जाता है = मए हसीअइ (भाव० वर्तमान)।

(ग) मेरे द्वारा हँसा जायेगा = मए हसिहिइ (भाव० भवि०)।

(घ) मेरे द्वारा हँसा जाए = मए हसिज्जउ हसीअउ वा (भाव० विधि०)।

१०. तुम सबके द्वारा ध्यान किया जाता है = तुम्हेहि झाईअइ (भाव०वर्त०)।

नियम—

३५. प्रकृत में संस्कृत की तरह कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य इन तीन प्रकार के वाच्यों का प्रयोग किया जाता है। इस पाठ से पूर्व यहाँ केवल कर्तृवाच्य का प्रयोग बतलाया गया है। तीनों वाच्यों के नियम निम्न प्रकार हैं—

(क) **कर्तृवाच्य में**—इसमें कर्त्ता प्रधान होता है। अतः (i) कर्त्ता में प्रथमा, (ii) कर्म में द्वितीया और (iii) क्रिया कर्त्ता के (पुरुष, वचन आदि के) अनुसार होती है। धातुओं के सभी मूल रूप कर्तृवाच्य में ही होते हैं।

(ख) **कर्मवाच्य में**—इसमें कर्म प्रधान होता है। अतः (i) कर्म में प्रथमा, (ii) कर्त्ता में तृतीया, (iii) क्रिया कर्म के (पुरुष, वचन आदि के) अनुसार तथा (iv) शेष कारक कर्तृवाच्य की ही तरह होते हैं। कर्मवाच्य की क्रिया बनाते समय मूल क्रिया में ईअ, ईय अथवा इज्ज प्रत्यय जोड़े जाते हैं पश्चात् अन्य वर्तमान कालिक आदि प्रत्यय प्रयोगानुसार जोड़े जाते हैं। भविष्यत्काल में तथा क्रियातिपत्ति[1] में ईअ ईय और इज्ज को बिना जोड़े केवल सामान्य भविष्यत् काल की क्रिया या सामान्य क्रियातिपत्ति की क्रिया का प्रयोग किया जाता है।

---

[1] क्रियातिपत्ति के प्रयोग के लिए देखें—पाठ १६।

(ग) **भाववाच्य में**--इसमें भाव (क्रिया) प्रधान होता है। अतः (i) कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। (ii) क्रिया सर्वदा प्र० पु० एकवचन में होती है। (iii) कर्म का अभाव रहता है। (iv) भाववाच्य की क्रिया के रूप कर्मवाच्य की क्रिया की ही तरह बनते हैं।

नोट--वाच्य-परिवर्तन में कर्त्ता, कर्म और क्रिया में ही परिवर्तन होता है, शेष वाक्यांश अपरिवर्तित रहता है।

अभ्यास--

(क) **प्राकृत में अनुवाद कीजिए**--मेरे द्वारा राजा देखा जाता है। बालकों के द्वारा पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। गुरु के द्वारा तुम पूछे जाते हो। मेरे द्वारा तुम संतुष्ट किए गये। उनके द्वारा वह चित्र न देखा जाए। तपस्वी के द्वारा तुम देखे जाओगे। छात्रों के द्वारा लेख लिखे जायें। मेरे द्वारा नौकर भेजा गया। उसके द्वारा तुम पूछे जाते हो। लंकाधिपति रावण ने राम के पास दूत भेजा। कृष्ण ने राधा को देखा। मैं सोया। उसके द्वारा खाया गया। तुम्हारे द्वारा रोया जाता है।

(ख) **हिन्दी में अनुवाद कीजिए**--सीसेहि झाईअइ। तेण भणीअईअ। बालाए नमीअउ। तुमए कंदुओ खेलीअउ। सुधिणा अहं पासीअमु। गोवालेण गउओ दुहीअइ। भारवाहेहिं भारो णीअईअ। तुमए सो णिवो भणीअइअ। तेहि भिच्चो पेसिज्जइ। मए देवो अच्चीअइ। तुमए किं कज्जं करीअइ। साहुणा गंथाणि लिहिज्जंति। पुरिसेण फलाणि किं ण भुंजीअंति? तेहिं णरस्स कज्जाणि ण करिज्जीअ। मन्तीहि णिवो तूसीअईअ। इत्थीए साडी कीणीअउ।

●

पाठ १३ 'जाते हुए' आदि वाक्य

उदाहरण वाक्य [न्त और माण इन वर्तमान-कालिक कृत् प्रत्ययों=कृदन्त विशेषणों का प्रयोग]--

१. गर्जता हुआ मेघ बरसता है=गज्जन्तो मेहो वरिसइ ।
२. जाते हुए बालक हँसते हैं=गच्छंता बालआ हसंति ।
३. पढ़ती हुई युवतियाँ खेलती हैं=पढन्तीओ जुवईओ खेलन्ति ।
४. क्या अध्ययन करते हुए मित्र की यह पुस्तक नहीं है=किं अधीयमाणस्स मित्तस्स इदं पोत्थअं णत्थि ।
५. हिलते हुए फूल गिरते हैं=कंपमाणाणि पुप्फाणि पडन्ति ।
६. लजाती हुई बधुओं में विनय है=लज्जमाणीसु बहूसु विणयं अत्थि ।
७. रोता हुआ वह बालक दौड़ता है=रुदन्तो सो बालो धावइ ।

नियम —

३६. 'जाते हुए', 'पढ़ते हुए' आदि गौण-क्रियाओं से उनके वर्तमान में होते रहने की प्रतीति होती है तथा वे किसी संज्ञा आदि की विशेषण होती हैं । ऐसे वाक्यों का अनुवाद करते समय मूल-क्रिया में न्त और माण इन वर्तमान-कालिक कृत्-प्रत्ययों को जोड़ा जाता है पश्चात् उनके विशेषणरूप होने से उनमें प्रथमा आदि विभक्ति-प्रत्यय विशेष्य के अनुसार जोड़े जाते हैं ।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—उड़ते हुए कबूतरों (कबोआण) की क्या यह पंक्ति है ? दौड़ता हुआ मृग जंगल में छिपता है । क्या स्नान करती हुई बालिकाओं की ये मालायें हैं ? ये पुस्तकें पढ़ने वाले छात्रों के लिए हैं । ध्यान करते हुए इन साधुओं में क्षमा है । यह भक्त नमन करते हुए कुछ पढ़ता है । नाचते हुए मयूर (मोर) को मैं देखता हूँ ।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—गज्जन्तेसु मेहेसु जलं लहु होइ । खेलन्ताणि मित्ताणि फलाणि खादन्ति । णच्चन्तीहि इत्थीहि इदं घरं सोहइ । किं बोलन्तो णरो कमलं गिण्हइ । पलायमाणस्स बालअस्स इदं कलमं अत्थि । पढन्तीहिंतो जुवईहिंतो सो पोत्थअं मग्गइ । भणमाणा सुधिणो गच्छन्ति । पढन्तेण मित्तेण किं कज्जं अत्थि ?

पाठ १४ 'पढ़ा हुआ', 'पढ़ा जाने वाला' आदि वाक्य

उदाहरण वाक्य (त और अ इन भूतकालिक तथा स्संत और स्समाण इन भविष्यत् कालिक कृत्-प्रत्ययों = कृदन्त विशेषणों का प्रयोग)—

१. कर्पूरमञ्जरी पढ़ा हुआ शास्त्र देखती है=कप्पूरमंजरी अहीअं सत्थं पासइ।

२. पूजित हुआ राजा धन देता है=पूइओ णिवो धणं देइ।

३. यह पुस्तक पढ़ी हुई है=इदं पोत्थअं पढिअं अत्थि।

४. यहाँ से गया हुआ मूर्ख कहाँ है=इमाओ गमिओ मुक्खो कहिं अत्थि ?

५. लिखी हुई पुस्तक यहाँ लाओ = लिहिअं पोत्थअं एत्थ आणेहि।

६. सन्तुष्ट हुए पुरुषों का जीवन अच्छा है = संतुट्ठाण पुरिसाण जीवणं उत्तमं अत्थि।

७. विकसित हुई लताओं में लक्ष्मी वसती है=विअसआसु लआसु लच्छी वसइ।

८. पढ़ा जाने वाला ग्रन्थ कहाँ है = पढिस्संतं गंथं कहिं अत्थि ?

९. आज यहाँ क्या होने वाला है=अज्ज अत्थ किं होस्संतो होस्समाणो वा अत्थि ?

१०. क्रोधित होनेवाली स्त्री में लज्जा नहीं होती है = कुविस्समाणाए कुविस्संताए वा णारीए लज्जा ण होइ।

नियम—

३७. 'पढ़ा हुआ', 'गया हुआ' आदि गौण-क्रियाओं से उनके भूतकाल में पूर्ण हो चुकने की प्रतीति होती है तथा वे किसी संज्ञा आदि की विशेषण होती हैं। ऐसे वाक्यों का अनुवाद करते समय मूल क्रिया में 'त' और 'अ' इन भूतकालिक कृत्-प्रत्ययों को जोड़ा जाता है। पश्चात् उनके विशेषण रूप होने से उनमें प्रथमा आदि विभक्ति-प्रत्यय विशेष्य के अनुसार जोड़े जाते हैं।

३८. 'पढ़ा जाने वाला', 'खेला जाने वाला' आदि गौण-क्रियाओं से उनके भविष्य में होने की प्रतीति होती है तथा ये किसी संज्ञा आदि की विशेषण होती हैं। ऐसे वाक्यों का अनुवाद करते समय मूल क्रिया में 'स्संत', 'स्समाण' इन भविष्यत्-कालिक कृत्-प्रत्ययों का विशेषण की तरह प्रयोग होता है और विशेषण होने से अपने विशेष्यानुसार विभक्ति-प्रत्यय आदि होते हैं।

अभ्यास--

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए--चिंतित बालक को यहाँ लाओ। उसने झुकी हुई (णअ) लता से फूल तोड़े ; ये लिखी हुई पुस्तकें किसकी हैं ? भयभीत हुए मित्र ने यह घर छोड़ दिया है। जीते हुए (जिअ) सैनिकों में बहुत हर्ष है। ढके हुए (पिहियं) पात्र से वह कुछ लेता है। रमेश क्लेशयुक्त (किलिटठा) स्त्रियों से शिक्षा लेता है। तुम लिखा जानेवाला पत्र लिखो। क्रोधित होने वाले रोगी का यह पुत्र है। पढ़ी जाने वाली गाथा को सुनो। गिरे हुए पुरुष का यह नया घर है।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—संतुट्ठाहिंतो णिवाहिंतो सो फलाणि गिण्हइ। कुविअस्स णिवस्स इमो पुत्तो अत्थि। पूइत्तो पुरिसत्तो सो सिक्खं लहइ। मुइअत्तो (आनन्दित) मित्तत्तो सो सम्माणं लहइ। पढिस्संता गाहा त्वं भणहि। रक्खिस्संता रक्खिस्समाणा वा इमा इत्थिआ अत्थ णच्चंति। दिट्ठं बालअं अहं जाणामि।

पाठ १५ भूतकालिक वाक्य

उदाहरण वाक्य ['त, अ और द' इन भूतकालिक प्रत्ययों का प्रयोग]--

१ मैं घर गया=अहं घरं गअं।

२. स्त्रियों ने फल खाये=इत्थीहि फलाणि भुंजिआणि।

३. महावीर ने इस प्रकार कहा=महावीरेण एवं कहिअं।

४. व्रतों के पालन करने से पाप नष्ट हुआ और पुण्य उत्पन्न हुआ=वयाणं पालणेण पावं विणट्ठं पुण्णं च जायं।

५. यह पुस्तक समाप्त हुई=इणं पोत्थअं समत्तं ।

नियम—

३९. भूतकाल का अर्थ प्रकट करने के लिए भूतकालिक 'त, अ और द' इन प्रत्ययों का क्रिया के रूप में भी प्रयोग होता है । कर्तृवाच्य की क्रिया का लिङ्ग और वचन कर्त्ता के अनुसार, कर्मवाच्य की क्रिया का लिङ्ग और वचन कर्म के अनुसार होगा । भाववाच्य की क्रिया नपुं० एकवचन में ही होगी ।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—कुम्भकार ने घड़ा बनाया । बालिका ने जल पिया और सो गई । श्याम ने पढ़ी हुई पुस्तकें पुनः पढ़ीं । राम, सीता और लक्ष्मण वन में गये । उन कन्याओं ने बगीचे से दो फूल तोड़े । राजपुरुषों ने नगर की रक्षा की । क्या मैंने पुस्तकें पढ़ीं ।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—मए कोहो जिओ । किं तुमए इमं फलं दिट्ठं । साहूहि णाणं पण्णत्तं (प्रज्ञप्तम्) । किं ण सुयं तेण अम्हाण वयणाणि ? तुम्हेहि हसितं । बहूहि सासूए सुस्सूसिअं । तेण तिलंतरं पि ण चंकमिअं । इमं कज्जं केण कयं (कृतम्) ।

पाठ १६ क्रियातिपत्ति या हेतु-हेतुमद्भावात्मक वाक्य

उदाहरण वाक्य [जइ और ता अव्ययों के साथ ज्जा, ज्ज, न्त और माण प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. यदि ध्यान से पढ़ोगे तो परीक्षा में सफल होगे=जइ झाणेण पढेज्जा (पढेज्ज पढन्तो पढमाणो वा) ता परीक्खाए सहलं होज्जा ।

२. यदि तुम वहाँ जाते तो सब जान जाते=जइ तुमं तत्थ गच्छेज्जा ता सव्वं जाणेज्जा ।

३. वैद्य को शीघ्र बुलाओ अन्यथा रोगी अवश्य मर जायेगा=वेज्जो सिग्घं आणेज्जा अण्णहा रुग्गो अवस्सं मरेज्जा ।

४. यदि तुम लोभी होते तो गड्ढे में गिरते=जइ तुमं लुद्धो होज्जा ता खड्डम्मि पडेज्जा ।

५. यदि वह उद्यमशील होती तो समय पर काम करती=जइ सा उज्जमसीला होज्जा ता समयम्मि कम्मं करेज्जा ।

६. ध्यान से पढ़ो अन्यथा फेल हो जाओगे=झाणेण पढेज्जा अण्णहा अणुत्तीण्णो होज्जा ।

७. यदि मेरे पास धन होता तो मैं बहुत खुश होता=जइ मज्झ समीवे धणं होज्जा ता अहं बहुपसण्णो होज्जा ।

नियम—

४०. यदि किसी वाक्य से हेतु-हेतुमद्भाव (पूर्ववाक्य से कारण की और उत्तर वाक्य से फल) की प्रतीति होती हो तो ऐसे वाक्यों की दोनों क्रियाओं में क्रियातिपत्ति के प्रत्ययों (ज्ज, ज्जा, न्त और माण) का प्रयोग होता है। इनके रूप सभी पुरुषों, वचनों और कालों में एक समान होते हैं।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद करो—यदि तुम मेरी बात मानोगे तो जीवन में सुखी रहोगे। यदि मैं ध्यान करूंगा तो पाप कर्मों को नष्ट करूँगा। यदि वह तुम्हारा मित्र है तो तुम्हारा कार्य अवश्य करेगा। तुम परिश्रम करो अन्यथा पास कैसे होगे? यदि ऐसी बात है तो तुम जाओ। यदि तुम यहाँ आते तो मैं तुम्हारे साथ चलता। यदि पानी बरसेगा तो मैं नहीं जाऊँगा। यदि मैं उसे धन देता तो वह विदेश की यात्रा करता। यदि तुम इस रहस्य को जान जाते तो तुम मेरा उपहास न करते।

(ख) हिन्दी में अनुवाद करो—जइ तुमं पुव्वं आगच्छेज्जा ता ममं अत्थ पासेज्जा। जइ दीवो होज्जा ता अंधयारो नस्सेज्जा। जया णाणं होज्जा तया अण्णाणं नस्सेज्जा। जइ अहं कज्जं करेज्जा ता धणं अवस्सं लभेज्जा। जइ सा भणेज्जा ता सो हसेज्जा। जइ आरंभेव सत्तुस्स दमणं न करेज्जा ता अज्ज सो अणियंत्तणो होज्जा। जइ हं पंच छणं पुव्वं आगच्छेज्जा ता रेलजाणोवरि आसीणो होज्जा।

पाठ १७ कर्तृ, कर्म एवं करण कारक

उदाहरण वाक्य [प्रथमा, द्वितीया एवं तृतीया के विशेष प्रयोग]—

१. उपाध्याय शिष्य को क्षमा करता है=उवज्झाओ सीसं खमइ ।
२. राजा कवियों को पालता है=भूवई (निवो) कविणो पालइ ।
३. हे राम ! यहाँ चन्दन, हल्दी और नमक हैं=हे राम ! अत्थ चंदणं; हलिद्दा लोणो य अत्थि ।
४. आचार्य के द्वारा ग्रन्थ लिखे जाते हैं=आयरियेण गंथाणि लिहिज्जंति ।
५. हरि वैकुण्ठ में रहते हैं=हरी वइउंठं अहिचिट्ठइ ।
६. गाँव के चारों ओर पानी है=गामं अहिओ जलं अत्थि ।
७. वह जल से मुँह धोता है=सो जलेण मुहं पच्छालइ ।
८. पुत्र उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है=पुत्तो मासेसु अस्सं बंधइ ।
९. राम बालक से मार्ग पूछता है=रामो बालअं पहं पुच्छइ ।
१०. विद्वानों को कौन नहीं जानता है=वुहा को ण जाणइ ?
११. पुत्री माता को नमस्कार करती है=धूआ माअं नमइ ।
१२. गुरु शिष्य के साथ भोजन करता है=गुरु सीसेण सह भुंजइ ।
१३. वहू सास के विना नहीं रहती है=सुण्हा सासूए विणा ण वसइ ।
१४. राम के बाण से बाली मारा गया=रामेण बाणेण हओ बाली ।
१५. यह बालक प्रकृति से मनोहर है=इमो बालो पईईअ (प्रकृत्या) चारू ।
१६. जटाओं से यह तपस्वी लगता है=जडाहि तावसो इमो होइ ।
१७. पुण्य से भगवान् के दर्शन हुए=पुण्णेण दिट्ठो भगवओ ।
१८. कान से बहरा आदमी जाता है= कण्णेण बहिरो णरो गच्छइ ।

नियम—

४१. निम्नोक्त स्थलों में प्रथमा विभक्ति होती है—

(क) कर्तृवाच्य के कर्त्ता में । (ख) कर्मवाच्य के कर्म में । (ग) वस्तु आदि के नाम निर्देश मात्र में । (घ) सम्बोधन में ।

४२. निम्नोक्त स्थलों में द्वितीया विभक्ति होती है—

(क) कर्तृवाच्य के कर्म में। (ख) अहि+सय (शी), अहि+चिट्ठ (स्था), अहि+आस, अहि+नि+विस, उव+वस, अनु+वस, अहि+वस, आ+वस इन धातुओं के आधार में। (ग) अहिओ, परिओ, समया, निकहा, हा, पडि, सव्वओ, धिअ, उवरि-उवरि (समीप अर्थ में) शब्दों के योग में इनका जिससे सम्बन्ध हो उसमें। (घ) द्विकर्मक धातुओं (दुहादि) के योग में मुख्यकर्म के साथ-साथ गौणकर्म में यदि वक्ता की इच्छा हो (अन्यथा अपादानादि कारक होंगे)।

४३. निम्नोक्त स्थलों में तृतीया विभक्ति होती है—

(क) कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के कर्त्ता में। (ख) करण (साधकतम कारण) में। (ग) सहार्थक (सह, समं, साअं, सद्धं) शब्दों के योग में जिसका साथ बतलाया जाए; उसमें। (घ) जिस विकृत अङ्ग से अङ्गी (पूरे शरीर) में विकार मालूम पड़े उस अंगवाचक शब्द में। (ङ) पइई (प्रकृति) आदि (गोत्त आदि) शब्दों में यदि उनसे किसी के स्वभाव आदि का ज्ञान हो। (च) जिस चिह्न-विशेष से किसी का बोध हो उस चिह्न-विशेष में। (छ) पिधं (पृथक्), विना और नाना शब्दों के योग में (द्वितीया तथा पञ्चमी भी)। (ज) कारण-बोधक (प्रयोजन सूचक) शब्दों में यदि हेतु शब्द का प्रयोग न हो। (झ) जब निश्चित समय में कार्य की सिद्धि बतलायी जाए तो काल एवं दूरी-वाचक शब्दों में।

अभ्यास—

(क) **प्राकृत में अनुवाद कीजिए**—वह मन्दिर गया। सिंह वन में रहता है और गुफा में सोता है। हे सीते! यहाँ घड़ा, आम और कमल लाओ। महावीर के चारों ओर गणधर हैं। धर्म के बिना भी क्या जीवन है? ज्ञान के बिना सुख कहाँ? मेरे गाँव के निकट एक अच्छा विद्यालय है। मेरे साथ श्याम भी जाता है। गोपाल गाय से दूध दुहता है। वह एक मास तक पढ़ता है। बुद्धि विद्या

से बढ़ती है। वह राम के साथ रथ से गया। पैर से लंगड़ी दासी घर जायेगी। मनन करने से तुम मुनि मालूम पड़ते हो। तुम स्वभाव से मधुर हो परन्तु वह कठोर है। व्यापार के प्रयोजन से रमेश प्रयाग में रहता है। क्या तुमने एक वर्ष में यह पुस्तक पढ़ ली ? वह आँखों से अन्धा है अतः गिर गया है। राजा चोर को दण्ड देता है।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—णणंदाए सह बहू गच्छइ। अक्खिणा विणा सरीरस्स का सोहा ? णाणेण पंडिआ, कमलेहि सरोवरा, सीलेण णरा सोहंति। दंडेण घडो जाओ। पाएण खंजो णरो दीसइ। जलं विणा कमलं चिट्ठतुं ण सक्कइ। रसेण महुरं फलं। सो असीए तं केसरिं, दंडेण फणिं च मारइ। गामं परितः वणं अत्थि। अहं वाणारसीं अहिवसामि। रुक्खं ओचिव्वइ (अवचिनोति) फलाणि। माणवअं धम्मं सासइ। किसाणो खेत्तं कस्सइ। तरुणी वावीं (वापीं) गच्छइ। चाइ (त्यागी) धणं ण गिण्हइ। छत्तो दुवालसवरसेहिं वाअरणं सुणइ।

●

पाठ १८ सम्प्रदान एवं अपादान कारक

उदाहरण वाक्य [चतुर्थी और पञ्चमी विभक्तियों के विशेष प्रयोग]—

१. यह दूध किन स्त्रियों के लिए है = इदं दुद्धं काण इत्थीणि अत्थि ?
२. कुलपति छात्रों को पुस्तकें देते हैं=कुलवइ छत्ताण पोत्थआणि दाइ।
३. बालक के लिए लड्डू अच्छे लगते हैं=बालअस्स मोअआ रोअन्ते।
४. श्याम ने अश्वपति से एक सौ रुपया उधार लिया=सामो अस्सपइणो सयं धारइ।

५. यह भोजन साधुओं के लिए है=इदं भोअणं साहूण अत्थि।
६. प्रजा का कल्याण हो=पआण सुत्थि।
७. शिष्य गुरुओं को नमस्कार करते हैं = सीसा गुरूण नमन्ति।
८. वणिक सेवक पर क्रुद्ध होता है=वणिओ सेवअस्स कुज्झइ।

९. मुक्ति के लिए वह महावीर का भजन करता है=मुत्तिणो सो महावीरं भजइ।

१०. वैद्य मजदूर को धन देता है=वेज्जो समियस्य धणं दाइ।

११. भौजी करधनी के लिए रोती है=भाउजाया मेहलाअ कन्दइ।

१२. गुरु शिष्य को उपदेश देता है=गुरु सिसुणो उवदिसइ।

१३. क्या तुम उससे डरते हो=किं तुमं ताओ बीहसि ?

१४. तुम किससे धन लेते हो=तुमं काओ धणं गिण्हसि ?

१५. सास उन बहुओं से नूपर लेती है=सासू ताहिंतो वहूहिंतो णेउरो गिण्हइ।

१६. वह पेड़ से गिरता है=सो रुक्खत्तो पडइ।

१७. ब्रह्मचारी पाप से घृणा करता है=बंभयारी पावत्तो दुगुच्छइ।

१८. दुष्टों से कौन नहीं डरता है=दुट्ठाण को न बीहइ।

१९. काम से क्रोध उत्पन्न होता है=कामत्तो कोहो अहिजाअइ।

२०. छात्र अध्ययन से भागता है=छत्तो अज्झयणत्तो पराजयइ विरमइ वा।

२१. माता पुत्री से केला माँगती है=माआ पुत्तित्तो कयली मग्गइ।

नियम—

४४. निम्नोक्त स्थलों में चतुर्थी विभक्ति होती है—(क) सम्प्रदान कारक में दान कर्म के द्वारा कर्त्ता जिसे संतुष्ट करना चाहता है, उसमें। (ख) नमो सुत्थि, सुआहा, सुहा तथा अलं (पर्याप्त अर्थ में) के योग में जिसे नमस्कार आदि किया जाए। (ग) कुज्झ, दोह, ईस तथा असूय धातुओं के योग में तथा इनके समान अर्थवाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोधादि किया जाए, उसमें। (घ) सिह (स्पृह) धातु के योग में जिसे चाहा जाये, उसमें। (ङ) रुच्यर्थक धातुओं के योग में जो प्रसन्न हो उसमें। (च) धर (कर्ज लेना) धातु के योग में ऋण देने वाले में। (छ) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाये, उस प्रयोजन में।

४५. निम्नोक्त स्थलों में पञ्चमी विभक्ति होती है—(क) अपादान कारक में (जिससे किसी वस्तु का अलगाव हो, उसमें)। (ख) दुगुच्छ, विराम, पमाय

तथा इनकी समानार्थक धातुओं के योग में जिससे जुगुप्सा आदि की जाए, उसमें। (ग) जिससे भय हो या रक्षा की जाए (तृतीया, चतुर्थी और षष्ठी भी)। (घ) परा+जि धातु के योग में जो असह्य हो। (ङ) जन (पैदा होना) धातु के कर्त्ता के मूल कारण में अर्थात् जिससे या जहाँ से कोई वस्तु पैदा हो।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—सर्वज्ञ (सव्वण्णु) के लिए नमस्कार हो। यह भोजन मजदूर (समिय) के लिए है। ग्वाला (गोव) उन स्त्रियों के लिए दूध देता है। योगी (जोगी) प्राणियों के लिए उपदेश देते हैं। बालिका आभूषण के लिए रोती है। गुरु छात्रों के लिए उपदेश देते हैं। बहू के लिए करधनी (मेहला) अच्छी लगती है। क्या तुमने श्याम से पाँच रुपया उधार लिए ? तुम उस पर क्यों क्रोधित होते हो ? क्या तुम दोनों मुझसे घृणा करते हो ? ओष्ठ (ओट्ठ) से खून निकलता है। वह मुझसे क्यों डरता है ? श्याम से देवदत्त पराजित होता है। घड़ा से पानी गिरता है। गाँव से कौन आया है ? मैं उससे पुस्तकें लेता हूँ। भिखारी उन स्त्रियों से भीख (भिक्खा) माँगता है। इस फूल से सुगन्ध आती है। पिजड़े (पंजर) से पक्षी उड़ता है। क्या वह तालाब से नहीं निकला ?

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—इदं चित्तं (चित्र) तुज्झ अत्थि। इमाणि सत्थाणि काण सन्ति ? छत्ता कुलवइणो नमंति। अम्हे साहूण नमामो णिच्चं। बणिओ जोगिणो भोअणं दाइ। किसाणो बणिअस्स सयं धारइ। छत्ताण सुत्थि। गुरुणो छत्ताण कुज्झहिंति। जुवईओ णेउराण (नूपुरों के लिए) कन्दंति। बालाण मालाओ रोअंते। चडहा (चिड़िया) पुप्फस्स सिहइ (चाहना)। गोवस्स पुत्तो रुक्खत्तो पडइ। मुक्खो सुधित्तो बीहइ। सा पुरिसत्तो चम्मं गिण्हइ। गामत्तो पुरिसो आगच्छइ। पाडलाहिंतो (गुलाब) सुयंधो आयइ। साहु पावत्तो विरमइ। बालो सप्पत्तो बीहइ। मूसिओ छिद्दयत्तो णिस्सरइ। मोहत्तो लोहो अहिजाअइ। अहं सठ्ठत्तो (शठता) दुगुच्छामि।

पाठ १९. सम्बन्धार्थ एवं अधिकरणकारक

उदाहरण वाक्य [षष्ठी एवं सप्तमी विभक्तियों के विशेष प्रयोग]—

१. क्या सीता उन सब (स्त्रियों) की बहिन है = किं सीया ताण वहिणी अत्थि ?

२. यह मेरी पुस्तक नहीं है = इदं मज्झ पुत्थअं णत्थि ।

३. इस साड़ी का रंग पीला है = इमाअ साडीआ रंगं पीअं अत्थि ।

४. वह ज्ञान के निमित्त से (हेतु से) यहाँ रहता है = सो णाणस्स हेउस्स अत्थ वसइ ।

५. गायों में काली गाय अधिक दूध देने वाली होती है = गवाण गोसु वा किसणा बहुक्खीरा हवइ ।

६. क्या संसार का कर्त्ता ब्रह्मा है = किं संसारस्स कत्ता बम्हा अत्थि ।

७. वह शास्त्र का पण्डित नहीं है = सो सत्थस्स पण्डिओ णत्थि ।

८. यह सोने और चाँदी की दुकान है = इमो हेमस्स हिरण्णस्स य आवणो अत्थि ।

९. पेड़ का पत्ता गिरता है = रुक्खस्स पत्तो पडइ ।

१०. यह कृष्ण की कृति है = किसणस्स कइ इयं ।

११. इन मनुष्यों में क्षमा है = इमेसु णरेसु खमा वसइ ।

१२. उस साधु में तेज है = तम्मि साहुम्मि तेओ अत्थि ।

१३. इस तालाब में कमल हैं = इमम्मि पोक्खरे पाडला सन्ति ।

१४. इस महल में खजाना है = इमम्मि पासायम्मि कोसो अत्थि ।

१५. राम गायों का स्वामी है = रामो गवाणं गोसु वा सामी अत्थि ।

नियम—

४६. निम्नोक्त स्थलों में षष्ठी विभक्ति होती है—(क) जिससे सम्बन्ध (स्व-स्वामिभाव आदि) बतलाया जाए। (ख) हेतु, कारण आदि शब्दों के प्रयोग होने पर हेतु और हेत्वर्थ में। (ग) जिन (बहुतों में) से छाँटा जाए, उसमें (सप्तमी भी)। (घ) कृत्-प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग होने पर कर्म में और कर्म के न होने पर कर्त्ता में।

४७. निम्नोक्त स्थलों में सप्तमी विभक्ति होती है—

(क) अधिकरण कारक में। (ख) जिस समुदाय से छांटा जाए (षष्ठी भी)। (ग) सामी, ईसर, अहिवइ, दायाद, साखी, पडिहू और पसूअ इन सात शब्दों के योग में (षष्ठी भी)।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए-मनोरमा सभी छात्राओं में श्रेष्ठ है। यह मेरा विचार है। कवियों में कालिदास कविराज है। वह किस निमित्त से यहाँ रहती है? तुम्हारी पुस्तक कहाँ है? मैं इन महलों का स्वामी हूँ। क्या वह तुम्हारी बहिन नहीं है? क्या राजा विद्वानों का सम्मान नहीं करता है? जीवों में मनुष्य जन्म उत्तम है। यह बैल (वसह) रसोइया (पाचअ) का है। क्या यह पुस्तकों की दुकान है। माता की गोद में बच्चा सोता है। राजा महल में रहता है। उन सब स्त्रियों में सौन्दर्य (लावण्णं) है। पूर्णिमा की रात्रि में (निसाए) चाँदनी (चंदिआ) दिखलाई देती है। उसके ललाट (भाले) पर कान्ति (कंति) है।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—धेणूए दुद्धं महुरं होइ। तुज्झ अभिहाणो (नाम) किं अत्थि? अम्हाण पुत्थआणि कत्थ संति? इमाणि कमलाणि दासीआ संति। इमस्त विजणस्स मोल्लं किं अत्थि? इमाण मोत्तियाण सामी को अत्थि? कंचणचंडो तंबोलाण (पान) ववहारो करेइ। तुम्हेसु को लहु अत्थि? अम्हम्मि बहवा अवगुणा संति! उदहिम्मि रयणाणि संति। कासु जुवईसु लज्जा णत्थि? संझाए तुम्हम्मि विज्जालये सागयं होहिसि। किं संसारस्स संहत्ता ईसरो अत्थि? वासुदेवो पाडलिपुत्तम्मि णिवसइ। हीरओ सव्वेसु मुल्लअमो अत्थि।

●

पाठ २० तद्धित प्रत्ययान्त वाक्य

उदाहरण वाक्य [तद्धित-प्रत्ययों के प्रयोग]—

१. मैंने हजार वार उससे कहा है=मए सहस्सहुत्तं तं भणियं।

२. तुम्हारी प्रतिष्ठा सर्वत्र है=तुम्हकेरो पइट्ठा सव्वत्थ अत्थि।

३. वह अकेली क्या करेगी=सा एकल्ला किं करिस्सइ ?

४. धन का इतना अधिक संचय उचित नहीं है=धणस्स एत्तिअं अहियं संचयं वरं णत्थि ।

५. जितना तुम्हें चाहिए उतना मिलेगा=जित्तिअं तुए आवस्सयकया तित्तियं मिलिस्सइ ।

६. वह विचारवान् है परन्तु ईर्ष्यालु है=सो वियारुल्लो किंतु ईसालू अत्थि ।

७. एक समय इस गाँव में घमण्डी जटाधारी रहता था=एक्कसिअं अस्सिं गामे गव्विरो जडालो णिवसीअ ।

८. दाढ़ीवाला राजा का नया आदमी है=मंसुल्लो रायकेरं नवल्लो णरो अत्थि ।

९. यह घड़ी अपनी है और यह पुस्तक दूसरे की है=इमा घडिआ अप्पणयं इदं पोत्थयं परक्कं य ।

१०. उनकी स्थूलता बढ़ रही है=तेणं पीणिमा वड्ढइ ।

नियम—

४८–तद्धित-प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग सामान्य नियमों के ही अनुसार होता है। तद्धित प्रत्ययान्त शब्द बनाने के लिए देखें 'तद्धित प्रकरण'।

अभ्यास—

(क) प्राकृत में अनुवाद कीजिए—ईर्ष्यालु कभी उन्नति नहीं कर सकता है। जहाँ से वह आया था वहीं गया। तुम्हें कितना धन चाहिए है ? विद्यावान् सदा स्नेहस्वभावी होता है। तीन वार वह रोया। वसुदेव का पुत्र धनवाला है। उसमें मृदुता कैसे आई ? तुम्हारा घर कहाँ है ? वहाँ से मैं दूसरे दिन (अपरज्जु) गया।

(ख) हिन्दी में अनुवाद कीजिए—केत्तिअं रूवगाणं संचयं अत्थि ? दासरही तिहुत्तं गुरुं पणमइ। नेहालू जणो भत्तिवंतो होइ। किं सो सव्वहा एरिसं ण करेइ ? मणुअत्तणस्स सिरीमंतस्स कत्थ ण पइट्ठा होइ ? जत्थ धणं अत्थि तत्थ सोहा होइ। संसारभीओ जणो पीणत्तणं ण लहइ। सेवो इदो देवमंदिरं गओ। भिक्खु पइघरं एयहुत्तं गच्छइ। नयरुल्लो केरिसं कज्जं कुणइ ?

●

भाग ३ : संकलन

(महाराष्ट्री प्राकृत)

(१) पउअकव्वमाहत्तं

(क) हालकृत 'गाथासप्तशती' से—

१. अमिअं पउअकव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणंति।
कामस्स तत्त तत्तिं कुणंति ते कह ण लज्जंति ।। १. २ ।

(ख) अज्ञातकविकृत—

२. पाइयकव्वुल्लावे पडिवयणं सक्कएण जो देइ।
सो कुसुमसत्थरं पत्थरेणं अबुहो विणासेइ ।।

संस्कृत-छाया (प्राकृतकाव्यमाहात्म्यम्)

१. अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति।
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ।।
२. प्राकृतकाव्योल्लापे प्रतिवचनं संस्कृतेन यो ददाति।
सः कुसुमसंस्तरं प्रस्तरेण अबुधो विनाशयति ।।

हिन्दी अनुवाद (प्राकृत काव्य का महत्त्व)

१. अमृत के समान प्राकृत-काव्य को जो न तो पढ़ना जानते हैं और न सुनना जानते हैं वे कामतत्त्व (कामशास्त्र) की चर्चा करते हुए लज्जित क्यों नहीं होते हैं ?

२. जो प्राकृत काव्य के उत्तर में संस्कृत के द्वारा प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) देता है वह मूर्ख व्यक्ति फूलों की शय्या को पत्थर के प्रहार से नष्ट कर देता है।

(ग) राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी से—

३. परुसो सक्कअबंधो पउअबंधो वि होउ सुउमारो।
पुरिसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं ॥ १. ७ ॥

(घ) जयवल्लभकृत वज्जालग्ग से—

४. एयं चिय नवरि फुडं हिययं गाहाण महिलियाणं च।
अणरसिएहि न लब्भइ दविणं व विहीणपुण्णेहिं ॥ ११ ॥

५. सच्छंदिया सरूवा सालंकारा य सरसउल्लावा।
वरकामिणि व्व गाहा गाहिज्जंती रसं देइ ॥ १२ ॥

---

३. परुषः संस्कृतबन्धः प्राकृतबन्धस्तु भवति सुकुमारः।
पुरुषमहिलयोर्यावदिहान्तरं तावदनयोः ॥

४. एतदेव केवलं स्फुटं हृदयं गाथानां महिलाणां च।
अरसिकेभ्यो न लभ्यते द्रविणमिव विहीनपुण्यैः ॥

५. सच्छन्दिकाः सरूपाः सालङ्कारा च सरसोल्लापाः।
वरकामिनीव गाथा गाह्यमाना रसं ददाति ॥

---

३. संस्कृत-रचनायें कठोर होती हैं और प्राकृत-रचनायें सुकुमार। पुरुषों और महिलाओं में जितना अन्तर है उतना ही इन दोनों भाषाओं में है।

४. जैसे पुण्यहीन व्यक्ति धन को प्राप्त नहीं करते हैं उसी प्रकार अरसिक जन महिलाओं के हृदय को तथा प्राकृत की गाथाओं के गूढार्थ को नहीं जान पाते हैं। अर्थात् सरस जन ही वहाँ तक पहुँचते हैं।

५. छन्दोबद्ध (इच्छानुकूल), योग्य वृत्तान्त से पूर्ण (लावण्ययुक्त), उपमादि अलङ्कारों से युक्त (हारादि आभूषणों से अलङ्कृत) तथा सरस वचनों से युक्त (प्रेमयुक्त वचन बोलनेवाली) श्रेष्ठ कामिनी की तरह प्राकृत-गाथायें अवगाहन (पठन, आलिङ्गन) करने पर सुख (रस) देती हैं।

६. गाहाण रशा महिलाण विब्भमा कइयणाण उल्लावा ।
कस्स न हरंति हियय बालाण य मम्मणुल्लावा ।। १३ ।।
७. गाहाणं गीयाणं तंतीसद्दाणं पोढमहिलाणं ।
ताणं चिंय सो दंडो जे ताण रसं न याणंति ।। २१ ।।
८. पाइयकव्वम्मि रसो जो जायइ तह य छेयभणिएहिं ।
उययस्य य वासियसीयलस्स तित्तिं न वच्चामो ।। २८ ।।
९. ललिए महुरक्खरए जुवईयणवल्लहे ससिंगारे ।
संते पाइयकव्वे को सक्कइ सक्कयं पढिउं ।। २९ ।।

---

६. गाथानां रसा महिलानां विभ्रमा कविजनानामुल्लापाः ।
कस्य न हरन्ति हृदयं बालानां मन्मनुल्लापाः ।।
७. गाथानां गीतानां तन्त्रीशब्दानां प्रौढमहिलानाम् ।
तासामेव सो दण्डो ये तेषां रसं न जानन्ति ।।
८. प्राकृतकाव्ये रसो यो जायते तथा च छेकभणितैः ।
उदकस्य च वासितशीतलस्य तृप्ति न व्रजामः ।।
९. ललिते मधुराक्षरके युवतिजनवल्लभे सश्रृङ्गारे ।
सति प्राकृतकाव्ये कः शक्नोति संस्कृतं पठितुम् ।।

---

६. प्राकृत-गाथाओं के रस, स्त्रियों के हावभाव, कवियों के काव्य-वचन तथा बालकों के अव्यक्त वचन किसके हृदय को आकर्षित नहीं करते हैं ? अर्थात् सभी के लिए अच्छे लगते हैं ।

७. प्राकृत-गाथायें, गीत, तन्त्री के शब्द तथा प्रौढ महिलायें ये उनके लिए दण्ड स्वरूप हैं जो उनके रस को नहीं जानते हैं ।

८. प्राकृत-काव्य में तथा विदग्ध (चतुर) पुरुषों के वचनों में जो रस होता है उससे तृप्ति नहीं होती है, जैसे सुवासित और शीतल जल से मन तृप्त नहीं होता है ।

९. ललित (सुन्दर), मधुराक्षरों से युक्त, युवतियों को प्रिय तथा श्रृङ्गार रस से परिपूर्ण प्राकृत-काव्य के मौजूद रहने पर कौन संस्कृत पढ़ने का प्रयत्न करेगा ? अर्थात् कोई नहीं ।

(ङ) जयवल्लभकृत वज्जालग्ग (अपभ्रंशकाव्यत्रयी की प्रस्तावना पृष्ठ ७६ में उद्धृत) से—

१०. उज्झउ सक्कयकव्वं सक्कयकव्वं च निम्मियं जेण ।
वंसहरं व पलित्तं तडयडतट्टत्तणं कुणइ ।।

(च) वाक्पतिराजकृत गउडवहो से—

११. णवमत्थदंसणं संनिवेस-सिसिराओं बंधरिद्धीओ ।
अविरलमिणमो आभुवणबंधमिह णवर पययम्मि ।। ९२ ।।

१२. सयलाओं इमं वाआ विसंति एत्तो य णेंति वायाओ ।
एंति समुद्दं चिय णेंति सायराओ च्चिय जलाइं ।। ९३ ।।

---

१०. उज्झ्यतां संस्कृतकाव्यं संस्कृतकाव्यं च निर्मितं येन ।
वंशगृहमिव प्रदीप्तं तडतडतट्टत्वं करोति ।।

११. नवामार्थदर्शनं संनिवेशशिशिरा बन्धर्द्धयः ।
अविरलमिदमाभुवनबन्धमिह केवलं प्राकृते ।।

१२. सकला एतत् वाचो विशन्ति इतश्च विनिर्गच्छन्ति वाचः ।
आगच्छन्ति समुद्रमेव निर्यान्ति सागरादेव जलानि ।।

---

१०. संस्कृत-काव्य को तथा जिसने संस्कृत-काव्य बनाया है उनको छोड़ो (उनका नाम मत लो) क्योंकि वह (संस्कृत भाषा) जलते हुए बाँस के घर की तरह 'तड़ तड़ तट्ठ' शब्द को करती है, अर्थात् श्रुतिकटु है ।

११. नवीन-नवीन अथ-सम्पत्ति का दर्शन तथा सुन्दर रचना से युक्त प्रबन्ध-सम्पत्ति प्रचुर परिमाण में सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आजतक केवल प्राकृत में है ।

१२. [संस्कृत अपभ्रंश आदि] सभी भाषायें इस प्राकृत में लीन हो जाती हैं । इस प्राकृत से ही वे सभी भाषायें निकली हैं । जैसे जल समुद्र में प्रवेश करता है और समुद्र से ही निकलता है । अर्थात् प्राकृत भाषा सभी भाषाओं की जननी है, वह शब्द ब्रह्म है तथा संस्कृत आदि भाषायें उसके विकार या विवर्त हैं ।

१३. हरिसविसेसो वियसावओ अ मउलावओ अ अच्छीण ।
इह बहिहुत्तो अंतोमुहो अ हिययस्स विप्फुरइ ।। ९४ ।।

१४. उम्मिल्लइ लायण्णं पाययच्छायाएँ सक्कयवयाणं ।
सक्कय-सक्कारुक्करिसणेण पाययस्स वि पहावो ।। ६५ ।।

(छ) महेश्वरसूरिकृत नाणपंचमीकहा से—

१५. गूढत्थदेसिरहियं सुललिय वण्णेहिं विरइयं रम्मं ।
पाययकव्वं लोए कस्स न हिययं सुहावेइ ।। १४ ।।

---

१३. हर्षविशेषो विकासकश्च मुकुलीकारकश्चाक्ष्णोः ।
इह बहिर्मुखः अन्तर्मुखश्च हृदयस्य विस्फुरति ।।

१४. उन्मीलति लावण्यं प्राकृतच्छायया संस्कृतपदानाम् ।
संस्कृतसंस्कारोत्कर्षणेन प्राकृतस्यापि प्रभावः ।।

१५. गूढार्थदेशीरहितं सुललितवर्णैर्विरचितं रम्यम् ।
प्राकृतकाव्यं लोके कस्य न हृदयं सुखयति ।।

---

१३. [प्राकृत काव्य के पढ़ने पर] हृदय के भीतर तथा बाहर एक अपूर्व हर्ष विशेष उत्पन्न होता है जिससे दोनों आँखें एक साथ विकसित और मुद्रित होती हैं। अर्थात् नेत्रों के विकास से हृदयस्थ आनन्द बहिर्मुख होकर प्रकट होता है तथा नेत्रों के मुकुलित होने पर वह अन्तर्मुख होकर प्रकट होता है।

१४. संस्कृत-वचनों का लावण्य प्राकृत-छाया से अभिव्यक्त होता है। संस्कृत भाषा के उत्कृष्ट संस्कार से प्राकृत का भी प्रभाव प्रकट होता है।

१५. गूढार्थक देशी शब्दों से रहित तथा सुललित वर्णों के द्वारा रचित सुन्दर प्राकृत काव्य किसके हृदय को सुखकर नहीं है ? अर्थात् सभी को सुख देता है।

(२) सरअवण्णणं[1]

१. तो हरिवइजसवंथो राहवजीअस्स पढमहत्थालम्बो ।
सीआबाहविहाओ दहमुहवज्झदिअहो उवगओ सरओ ।। १६ ।।

२. रइअरकेसरणिवहं सोहइ धवलब्भदलसहस्सपरिगअं ।
महुमहदंसणजोग्गं पिआमहुप्पत्तिपंकअं व णहअलं ।। १७ ।।

३. धुअमेहमहुअराओ घणसमआअड्ढिओणअ-विमुक्काओ ।
णहपाअव-साहाओ णिअअट्ठाणं व पडिगआओ दिसाओ ।। १९ ।।

संस्कृत-छाया (शरद्वर्णनम्)

१. ततो हरिपतियशःपथो राघवजीवस्य प्रथमहस्तालम्बः ।
सीताबाष्पविघातो दशमुखवध्यदिवस उपगता शरत् ।। १६ ।।

२. रविकरकेसरनिवहं शोभते धवलाभ्रदलसहस्रपरिगतम् ।
मधुमथनदर्शनयोग्यं पितामहोत्पत्तिपङ्कजमिव नभस्तलम् ।।१७ ।।

३, धुतमेघमधुकरा घनसमयाकृष्टावनतविमुक्ताः ।
नभः पादपशाखा निजकस्थानमिव प्रतिगता दिशः ।। १९ ।।

हिन्दी अनुवाद (शरद् ऋतु वर्णन)

१. [वर्षा ऋतु के] पश्चात्, सुग्रीव (हरिपति) के यशोमार्ग के समान, राम के प्रथम हस्तावलम्ब के समान तथा सीता के आँसुओं का अन्त करने वाले रावण के वध दिवस के समान शरद् ऋतु आ गई ।

२. आकाश ब्रह्मा के उत्पत्तिस्थानभूत कमल के समान शोभित हो रहा है जिसमें सूर्य की किरणें ही केशर हैं, सफेद मेघों के हजारों खण्ड ही दल हैं तथा जो भगवान् विष्णु या राम (मधुमथन) के दर्शन के योग्य है ।

३. दिशाएँ मानों अपने स्थान को प्राप्त हो गई हैं जो वर्षाकाल में आकाश-रूपी वृक्ष की शाखाओं के समान झुक गई थीं परन्तु अब (शरद् ऋतु में) मुक्त हो गई हैं । जिनके बादल रूपी भौंरे उड़ गये हैं।

---

[1] प्रवरसेनकृत, सेतुबन्ध (रावणवध) के प्रथम आश्वास से उद्धृत .

४. सुहसंमाणिअणिद्दो विरहालुंखिअसमुद्ददिण्णुक्कंठो ।
असुवंतो वि विबुद्धो पढमविबुद्धसिरिसेविओ महुमहणो ।। २१ ।।
५. सोहइ विसुद्धकिरणो गअणसमुद्दम्मि रअणिवेलालग्गो ।
तारामुत्तावअरो फुडविहडिअमेहसिप्पिसंपुडमुक्को ।। २२ ।।
६. पज्जत्तसलिलधोए दूरालोक्कंतणिम्मले गअणअले ।
अच्चासण्णं व ठिअं विमुक्कपरभाअपाअडं ससिबिम्बं ।। २५ ।।

---

४. सुखसंमानितनिद्रो विरहस्पृष्टसमुद्रदत्तोत्कण्ठः ।
अस्वपन्नपि विबुद्धः प्रथमविबुद्धश्रीसेवितो मधुमथनः ।। २१ ।।
५. शोभते विशुद्धकिरणो गगनसमुद्रे रजनिवेलालग्नः ।
तारामुक्ताप्रकरः स्फुटविघटितमेघशुक्तिसंपुटमुक्तः ।। २२ ।।
६. पर्याप्तसलिलधौते दूरालोक्यमाननिर्मले गगनतले ।
अत्यासन्नमिव स्थितं विमुक्तपरभागप्रकटं शशिबिम्बम् ।।२५।।

---

४. भगवान् विष्णु नहीं सोते हुए भी जाग गये (देवतागण पारमार्थिक रूप से नहीं सोते हैं। जागने से देवोत्थान एकादशी का बोध होता है) हैं जो सुखमात्र के लिए निद्रा का आदर करने वाले हैं, विरह से व्याकुल समुद्र को उत्कंठित करने वाले हैं (भगवान् पुनः कब समुद्र मे शयन करेंगे ऐसी उत्कंठा) तथा उनसे पहले उठी हुई लक्ष्मी से सेवित हैं।

५. आकाश रूपी समुद्र में तारागण रूपी मोतियों का समूह शोभित हो रहा है, जो शुभ्र किरणों वाला है, रात्रि रूपी तट (वेला) से संलग्न है तथा मेघ रूपी सीपों के संपुटों के खुलने से बिखरा हुआ है।

६. मेघादि से विमुक्त होने के कारण अति उज्ज्वल चन्द्रबिम्ब आकाश में अत्यन्त निकटवर्ती सा दिखलाई पड़ रहा है क्योंकि आकाश पर्याप्त जल (वृष्टि धाराओं) से धुला हुआ है तथा दूर से देखने पर भी अत्यन्त निर्मल दिखलाई पड़ रहा है। अर्थात् स्वच्छ आकाश में चन्द्रबिम्ब स्पष्ट दिखलाई दे रहा है।

७. चंदाअवधवलाओ फुरंतदिअसरअणंतरिअसोहाओ ।
सोम्मे सरअस्स उरे मुत्तावलिविब्भमं वहंति णिसाओ ।। २७ ।।

८. पज्जत्तकमलगंधो महुतण्णाओ सरन्तणवकुमुअरओ ।
भमिरभमरोअइव्वो संचरइ सदाणसीअरो वणवाओ ।। ३१ ।।

(३) समुद्दवण्णणं[1]

१. अह पेच्छइ रहुतणओ चडुलं दोससअदुक्खबोलेअव्वं ।
अमअरससारगरुअं कज्जारंभस्स जोव्वणं व समुद्दं ।। १ ।।

---

७. चन्द्रातपधवला: स्फुरद्दिवसरत्नान्तरितशोभा: ।
सौम्ये शरद उरसि मुक्तावलिविभ्रमं वहन्ति निशा: ।। २७ ।।

८. पर्याप्तकमलगन्धो मध्वाद्रर्पासरन्नवकुमुदरजा: ।
भ्रमद्भ्रमरोपजीव्य: संचरति सदानशीकरो वनवात: ।। ३१ ।।

संस्कृत-छाया (समुद्रवर्णनम्)

१. अथ पश्यति रघुतनयश्चटुलं दोपशतदु:खव्यतिक्रमणीयम् ।
अमृतरससारगुरुकं कार्यारम्भस्य यौवनमिव समुद्रम् ।। १ ।।

---

७. कान्तिमान् दिनमणि (सूर्य) की कान्ति से अभिभूत तथा चन्द्रज्योत्स्ना से धवलित रातें सौम्य शरद् ऋतु के हृदय पर मोतियों की माला के विभ्रम को धारण करती हैं ।

८. पर्याप्त कमलगन्ध से परिपूर्ण, मधु के आधिक्य से आर्द्र होकर वायु के झोंकों से बिखरे हुए कुमुदों के नवीन पराग से युक्त, भ्रमणशील भौंरों का उपजीव्य (आश्रय) तथा वनगज के मदजल कणों से युक्त वनपवन बह रहा है ।

हिन्दी अनुवाद (समुद्र वर्णन)

१. इसके बाद (समुद्रतट पर पहुँचने के बाद) राम समुद्र को देखते हैं जो समुद्र चञ्चल है, सैकड़ों बाधाओं के कारण दुर्लंघ्य (दोष=मकरकल्लोल आदि के बाहुल्य से दुर्लंघ्य अथवा दो:शतेन=सैकड़ों बाहुओं से भी दुर्लंघ्य) है, अमृत रस एवं रत्नों (सार) के कारण गौरवयुक्त है एवं कार्यारम्भ के यौवन के समान है ।

---

[1] प्रवरसेनकृत सेतुबन्ध के द्वितीय आश्वास से उद्धृत ।

२. गअणस्स व पडिबिंबं धरणीअ व णिग्गमं दिसाण व णिलअं।
भुअणस्स व मणितडिमं पलअस्स व सावसेसजलविच्छड्डं ॥२॥

३. मुहलघणविप्पइण्णं जलणिवहं भरिअसअलणहमहिविवरं।
णइमुहपल्लत्थंतं अप्पाण विणिग्गअं जसं व पिअंतं ॥ ५ ॥

४. जोह्णाए व्व मिअङ्कं कित्तीअ व सुउरिसं पहाए व्व रविं।
सेलं महाणईअ व सिरीअ चिरणिग्गआइ वि अमुच्चंतं ॥ ६ ॥

---

२. गगनस्येव प्रतिबिम्बं धरण्या इव निर्गमं दिशामिव निलयम्।
भुवनस्येव मणितडिमं प्रलयस्येव सावशेषजलविच्छर्दम् । २ ॥

३. मुखरघनविप्रकीर्णं जलनिवहं भृतसकलनभोमहीविवरम्।
नदीमुखपर्यस्यन्तमात्मनो विनिर्गतं यश इव पिबन्तम् ॥ ५ ॥

४. ज्योत्स्नयेव मृगाङ्कं कीर्त्येव सुपुरुषं प्रभयेव रविम्।
शैलं महानद्येव श्रिया चिरनिर्गतयाप्यमुच्यमानम् ॥ ६ ॥

---

२. आकाश के प्रतिबिम्ब के समान, पृथ्वी के निर्गमद्वार के समान, दिशाओं के निलय (घर) के समान, त्रिभुवन की मणि-निर्मित भित्ति (परिखा) अथवा प्राङ्गण (तडिमं कुट्टिमं भित्ती) के समान तथा प्रलय के अवशेष जल-समूह के समान यह समुद्र दिखलाई दे रहा है।

३. गरजते हुए बादलों के द्वारा सर्वत्र विक्षिप्त, [वृष्टिकाल में] समस्त आकाश तथा पृथिवी में परिव्याप्त, नदियों के मुख से इधर-उधर बहने वाले जलसमूह को समुद्र अपने ही से निकले हुए यश को मानों पान कर रहा हो।

४. जिस प्रकार ज्योत्स्ना (चाँदनी) चन्द्रमा को, कीर्ति सत्पुरुष को, प्रभा सूर्य को तथा महानदी पर्वत को नहीं छोड़ती है उसी प्रकार बहुत पहले निकाली गई भी लक्ष्मी समुद्र को नहीं छोड़ रही है।

५. दीसंतं अहिरामं सुव्वंतं पि अविइण्हसोअव्वगुणं ।
सुकअस्स व परिणामं उअहुज्जंतं पि सासअसुहप्फलअं ॥ १० ॥
६. उक्खअदुम व सेलं हिमहअकमलाअरं व लच्छिविमुक्कं ।
पीअमइर व चसअं बहुलपओसं व मुद्धचंदविरहिअं ॥ ११ ॥
७. पाआलोअरगहिरे महिपइरिक्कविअडे णहणिरालम्बे ।
तेल्लोक्के व्व महुमहं अप्पाण च्चिअ गआगआइँ करेन्तं ॥ १५ ॥

---

५. दृश्यमानमभिरामं श्रूयमाणमप्यवितृष्णश्रोतव्यगुणम् ।
सुकृतस्येव परिणाममुपभुज्यमानमपि स्वाश्रयशुभ-(शाश्वतसुख)फलदम्॥१०॥
६. उत्खातद्रुममिव शैलं हिमहतकमलाकरमिव लक्ष्मीविमुक्तम् ।
पीतमदिरमिव चषकं बहुलप्रदोषमिव मुग्धचन्द्रविरहितम् ॥ ११ ॥
७. पातालोदरगंभीरे महीप्रतिरिक्तविकटे नभोनिरालम्बे ।
त्रैलोक्य इव मधुमथनमात्मन्येव गतागतानि कुर्वन्तम् ॥ १५ ॥

---

५. पुण्यकृत्यों के परिणाम के समान यह समुद्र दृष्टिगोचर होने पर भी रमणीय, सुने जाने पर भी सुनने से तृप्ति न करने वाला, [स्नानादि के द्वारा] उपभुज्य होते हुए भी अपने आश्रितों के लिए मुक्ताफल (श्वेत फल=शुभ फल; अथवा शाश्वत सुख=मुक्ति) देने वाला है ।

६. उखाड़े गये वृक्ष वाले पर्वत के समान, हिम से आहत कमलों वाले शोभाहीन सरोवर के समान, जिसकी मदिरा पी ली गई है ऐसे प्याले के समान तथा मनोहर चन्द्रमा के उदय से रहित अँधेरी (कृष्णपक्ष की) रात्रि के समान यह समुद्र है ।

७. पाताल के अन्तस्तल तक गहरा (गम्भीर), पृथिवी के शून्य प्रदेशों में (गुफा आदि) में विस्तीर्ण होने से भयानक तथा आकाशस्पर्शी तरङ्गों के होने से निरालम्ब अपने ही तीनों लोकों में गमनागमन को करते हुए विष्णु के समान समुद्र अपने में ही व्याप्त हो रहा है । भगवान् विष्णु की कुक्षि में तीनों लोक व्याप्त माने जाते हैं । यह समुद्र भी त्रिलोकव्यापी है ।

८. चडुलं पि थिईअं थिरं तिअसुक्खित्तरअणं पि सारब्भहिअं।
महिअं पि अणोलुग्गं असाउसलिलं पि अमअरसणीसंदं ॥ १८ ॥

९. परिअम्भिअं उवगए बोलीणम्मिअ णिअत्तचडुलसहावं ।
णवजोव्वणेव्व कामं दइअसमागमसुहम्मि चंदुज्जोए ॥ २० ॥

१०. कसणमणिच्छाआरसरज्जंतोत्तरिपरिप्पवंतप्फेणं ।
हरिणाहिपंकअक्खलिअसेसणीसासजणिअविअंडावत्तं ॥ २८ ॥

---

८. चटुलमपि स्थितया स्थिरं त्रिदशोत्क्षिप्तरत्नमपि साराभ्यधिकम् ।
मथितमप्यनवरुग्णमस्वादुसलिलमप्यमृतरसनिःस्यन्दनम् ॥ १८ ॥

९. परिजृम्भितमुपगते व्यतिक्रान्ते निवृत्तचटुलस्वभावम् ।
नवयौवनमिव कामं दयितसमागमसुखे चन्द्रोद्द्योते ॥ २० ॥

१०. कृष्णमणिच्छायारसरज्यमानोपरिप्लवमानफेनम् ।
हरिनाभिपङ्कजस्खलितशेषनिःश्वासजनितविकटावर्तम् ॥ २८ ॥

---

८. यह समुद्र चञ्चल होने पर भी मर्यादा के कारण स्थिर है, देवताओं द्वारा रत्नों के निकाल लिए जाने पर भी अनन्त धनराशि से पूर्ण (रत्नाकर) मथे जाने पर भी अविनष्ट तथा खारे जल वाला (लवणाकर) होने पर भी अत रस का झरना है।

९. प्रिय-समागम के सुख से युक्त नवयौवन में काम (काम ज्वर रूपी चालता) के समान यह समुद्र चन्द्रमा के उदित होने पर बढ़ता है तथा अस्त हो पर उसकी चञ्चलता शान्त हो जाती है। यौवन के आने पर काम विकार बढ़ा है तथा उसके बीतने पर शान्त हो जाता है।

१०. इन्द्रनीलमणि के कान्ति रूपी नीलाभ रंग से अभिरञ्जित झाग जिस समु के ऊपर तैर रहा है (इससे समुद्रतल में विद्यमान नीलमणियों का उद्दा तेज तथा जल की स्वच्छता व्यङ्ग्य है) तथा शेषनाग के निःश्वास से विष की नाभि के कमल के स्खलित होने से (जिस समुद्र के रूप में) भयङ्कर भँव वाला बन गया है।

(४) संज्झावण्णणं[1]

१. सेलग्ग-खण-विहत्ता रवि-वडण-कमेण दूरमुच्छलिया ।
घम्म-च्छेया इव तारअत्तणं एन्ति मउलिन्ता ॥ १०८५ ॥
२. एन्ति गह-मोत्तियड्ढे पओस-सीहाहए दिणेहम्मि ।
ल्हसिअ-ट्ठिय रुहिराअम्ब-कुम्भ करणिं रवि-मियंका ॥ १०८६ ॥
३. जामवई-मुह-भरिए संज्झा-मइराइ दिणयराहारे ।
आगास-केसरं दन्तुरेन्ति णक्खत्त-कुसुमाइं ॥ १०८७ ॥

संस्कृत-छाया (सन्ध्यावर्णनम्)

१. शैलाग्रक्षणविभक्ता रविपतनक्रमेण दूरमुच्छलिताः ।
घर्मच्छेदा इव तारकत्वं यन्ति मुकुलीभवन्तः ॥
२. एतः ग्रहमौक्तिकाढ्ये प्रदोषसिंहाहते दिनेभे ।
ह्लसितस्थितरुधिराताम्रकुम्भसादृश्यं रविमृगाङ्कौ ॥
३. यामवतीमुखभरिते सन्ध्यामदिरया दिनकराधारे ।
आकाशकेसरं दन्तुरयन्ति नक्षत्रकुसुमानि ॥

हिन्दी अनुवाद (सन्ध्या वर्णन)

१. सूर्य जब पर्वत के शिखरभाग पर स्थित था उस समय उसकी किरणें दिशाओं में विभक्त थीं परन्तु जब सूर्य क्रमशः समुद्र में गिरने लगा (अस्त होने लगा) तो उसकी किरणें मुकुलित होकर दूर आकाश में उछल कर तारों के समूह को प्राप्त हो गईं ।

२. प्रदोष रूपी सिंह के द्वारा ग्रह रूपी मोतियों से परिपूर्ण दिनरूपी हाथी के मार दिए जाने से पतित एवं रुधिर से आरक्त गजकुम्भ के सदृश सूर्य और चन्द्रमा उपस्थित हो गये हैं ।

३. रात्रिरूपी युवति के द्वारा किये गये सन्ध्यारूपी मदिरा के कुला से अस्त होता हुआ सूर्यरूपी आलवाल (आधार) जिसका भर गया है ऐसा आकाश

---

[1] वाक्पतिराजकृत 'गउडवहो' नामक ऐतिहासिक-काव्य से उद्धृत ।

४. आयव-किलन्त-महिसच्छि-कोणसोणायवं दिणन्तम्मि ।
उव्वत्ताइ रविणो भू-कलम्ब-पुड-पाडलं बिम्बं ।।१०८८।।

५. संज्झालत्तय-धरियम्मि उअह जलणोवलेव्व रवि-बिम्बे ।
णिव्वडइ धूमलेहव्व मासला जामिणी-च्छाया ।।१०८९।।

६. जायं व धूम-संचय-कलुसारुण किरण-दन्तुरं रविणो ।
तिमिरोवयार-मुज्झन्त-विसम-संज्झायवं बिम्बं ।। १०९० ।।

४. आतपक्लान्तमहिषाक्षिकोणाशोणातपं दिनान्ते ।
उद्वर्तते रवेर्भूकदम्बपुटपाटलं बिम्बम् ।।

५. सन्ध्यालक्तकधृते पश्यत ज्वलनोपल इव रविबिम्बे ।
निर्वर्तते धूमलेखेव मांसला यामिनीच्छाया ।।

६. जातमिव धूमसंचयकलुषारुणकिरणदन्तुरं रवेः ।
तिमिरोपचार मुह्यमानविषमसन्ध्यातपं बिम्बम् ।।

रूपी बकुल वृक्ष (आयासकेसर) नक्षत्ररूपी फूलों से लद गया है। (बकुल वृक्ष युवति के द्वारा मदिरा का कुल्ला करने से विकसित होता है, ऐसी कविसमय-प्रसिद्धि है)।

४. धूप से क्लान्त भैंसे की आँख के कोण के समान रक्ताभ तथा पृथ्वीस्थ कदम्बवृक्ष के पुष्प के समान पाटलवर्ण वाले सूर्य का बिम्ब अस्त हो रहा है।

५. सन्ध्यारूपी महावर को धारण किए हुए अग्निपाषाण=सूर्यकान्तमणि (जलणोवल) के समान सूर्यबिम्ब को देखो जिससे धूमरेखा के समान घनीभूत रात्रि रूपी कान्ति (छाया) निकल रही है। 'संज्झालया' (संध्यालता) पाठ होने पर 'संध्या रूपी लता=दाह्य लकड़ी' अर्थ होगा।

६. अन्धकार के आगमन से मन्द तथा विषम (मिश्रित) सन्ध्यातप वाला सूर्यबिम्ब धूमसंचय से कलुष तथा अरुण किरणों के द्वारा मानों रोमाञ्चित हो गया है।

७. दीसइ णिसासु तारा-णिहेण फुडिय-विरल-ट्ठिय-कवालं ।
बम्भण्डग्ग-पुंडपिव कालन्तर-जज्जरं गयणं ।। ११०९ ।।
८. तम महुयर-जालुप्पयण-पयड-मय-मण्डलं णिसा-वइणो ।
बिम्बं माहवमिय पिण्ड-खण्डमावाडलं उअह ।। १११४ ।।
९. उक्खिप्पइ गअण-तुला-दंडेण समूससंत-कर-केऊ ।
पच्छा रवि-पिंड-भरोणएण कलसो व्व सस-इंधो ।।१११५।।
१०. पावइ उअयाअंबो दर-सिढिल क्खलिअ-तलिण-तम-लेहो ।
ल्हसिअ-विणीलंसुअ-मत्ता-हलहराहं णिसा-णाहो ।।१११६।।

---

७. दृश्यते निशासु तारानिभेन स्फुटितविरलस्थितकपालम् ।
ब्रह्माण्डाग्रपुटमिव कालान्तरजर्जरं गगनम् ।।
८. तमोमधुकरजालोत्पतन प्रकटमृगमण्डलं निशापतेः ।
बिम्वं माधवमिव पिण्डखण्डमापाटलं पश्यत ।।
९. उत्क्षिप्यते गगनतुलादण्डेन समुच्छ्वसत्करकेतुः ।
पश्चाद् रविपिण्डभरावनतेन कलश इव शशचिह्नः ।।
१०. प्राप्नोति उदयाताम्रो दरशिथिलस्खलिततनुतमोलेखः ।
स्रस्तविनीलांशुकमत्तहलधराभां निशानाथः ।।

---

७. रात्रि में तारागणों से स्फुट एवं दूर-दूर स्थित कपाल वाले ब्रह्माण्डाग्र के पुट के समान प्राचीन होने से जर्जर आकाश दिखलाई पड़ रहा है ।

८. अन्धकाररूपी मधुकरसमूह (मधुमक्षिकाओं का समूह) के उड़ने से स्पष्ट लक्ष्य मृगाङ्कमण्डल वाले निशापति के बिम्ब (उदयासन्न चन्द्रमा) को देखो जो माधव (मधुनोयं माधवो माक्षिकसंबन्धी तम् माधवम्) के पिण्डखण्ड के समान ईषत् पाटल वर्ण का है ।

९. पश्चिम दिशा भाग में सूर्यपिण्ड के भार से नम्रीभूत [सूर्य और चन्द्रमा से] निकलती हुई किरणों रूपी तुलासूत्र वाले आकाशरूपी तुलादण्ड से कलश के समान चन्द्रमा (ससइन्ध) ऊपर उठा दिया गया है ।

१०. किञ्चित् स्खलित वस्त्रवाले तथा मदिरा का पान किए हुए हलधर (बलराम) की कान्ति को किञ्चित् शिथिल तथा स्खलित तनुतमोलेखा से युक्त उदयकालीन आताम्र चन्द्रमा प्राप्त कर रहा है ।

(५) सुहासियाइं[1]

१. आरम्भन्तस्स धुअं लच्छी मरणं वि होइ पुरिसस्स ।
तं मरणमणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होइ ।। १.४२ ।।

२. तं मित्तं काअव्वं जं किर वसणम्मि देसआलम्मि ।
आलिहिअभित्तिवाउल्लअं व ण परम्मुहं ठाइ ।। ३.१७ ।।

३. उप्पपाइअदव्वाणं वि खलाणं को भाअणं खलो च्चेअ ।
पक्वाइँ वि णिम्बफलाइँ णवरँ काएहिँ खज्जन्ति ।। १.४८ ।।

संस्कृत-छाया (सुभाषितानि)

१. आरभमाणस्य ध्रुवं लक्ष्मीर्मरणं वा भवति पुरुषस्य ।
तन्मरणमनारम्भेऽपि भवति लक्ष्मीः पुनर्न भवति ।।

२. तन्मित्रं कर्तव्यं यत्किल व्यसने देशकालेषु ।
आलिखितभित्तपुत्तलकमिव न पराङ्मुखं तिष्ठति ।।

३. उत्पादितद्रव्याणामपि खलानां को भाजनं खल एव ।
पक्वान्यपि निम्बफलानि केवलं काकैः खाद्यन्ते ।।

हिन्दी अनुवाद (सुभाषित)

१. कार्य को आरम्भ करने वाले पुरुष को निश्चय ही लक्ष्मी (सफलता) अथवा (अधिक से अधिक) मृत्यु की प्राप्ति होती है। मृत्यु तो कार्य न आरम्भ करने पर भी होती है, परन्तु लक्ष्मी उसे नहीं मिलती है ।

२. मित्र उस (व्यक्ति) को बनाना चाहिए जो किसी भी देश में, किसी भी काल में और किसी भी आपत्ति में कभी भी दीवाल पर अभिलिखित (चित्रित) पुतली के सदृश पराङ्मुख न हो ।

३. धन उत्पन्न करने वाले दुष्टों के दानपात्र कौन होते हैं ? दुर्जन ही । पके हुए नीम के फल केवल कौओं के द्वारा खाये जाते हैं ।

---

[1] सातवाहन हालकृत गाथासप्तशती से उद्धृत ।

४. सुअणो ण कुप्पइ च्चिअ अह कुप्पइ विप्पिअं ण चिन्तेइ ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ लज्जिओ होइ ॥३.५० ॥

५. सो अत्थो जो हत्थे तं मित्तं जं णिरन्तणं वसणे ।
तं रुअं जत्थ गुणा तं विण्णाणं जहिं धम्मो ॥ ३.५१ ॥

६. अउलीणो दोमुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव ।
मुरओ व्व खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसई ॥ ३.१३ ॥

---

४. सुजनो न कुप्यत्येव अथ कुप्यति विप्रियं न चिन्तयति ।
अथ चिन्तयति न जल्पति यदि जल्पति लज्जितो भवति ॥

५. सोऽर्थो यो हस्ते तन्मित्रं यन्निरन्तरं व्यसने ।
तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मः ॥

६. अकुलीनो द्विमुखस्तावन्मधुरो भोजनं मुखे यावत् ।
मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ॥

---

४. (सामान्य रूप से) सज्जन पुरुष कुपित ही नहीं होता, यदि कुपित भी होता है तो अप्रिय नहीं सोचता है । यदि अप्रिय सोचता भी है तो कहता नहीं है और यदि कहता है तो लज्जित होता है ।

५. धन वही है जो हाथ में हो, मित्र वही है जो आपत्ति में सदा साथ देवे, रूप वही है जिसमें गुण हो और विज्ञान वह है जिसमें धर्म हो ।

६. जिस प्रकार अकुलीन (अ+कु=पृथिवी+लीन=जो पृथिवी पर नहीं रखा जाता) द्विमुख तबला (तबले के दो हिस्से) तभी तक मधुर ध्वनि करता है, जब तक उसके मुख पर भोजन (लेप) विद्यमान रहता है, भोजन (लेप) के जीर्ण होते ही वह बेसुरा हो जाता है । उसी प्रकार अकुलीन, (नीच कुलोत्पन्न) द्विमुख (सामने कुछ, पीछे कुछ कहने वाला) दुर्जन (खल) व्यक्ति तभी तक मधुर वचन (प्रशंसा या चाटुकारी का वचन) बोलता है जब तक उसके मुख में भोजन रहता है । भोजन के जीर्ण हो जाने पर (कार्य निकल जाने पर) रसहीन (कटुभाषी या निन्दक) हो जाता है ।

७. लहुअन्ति लहुं पुरिसं पव्वअमेत्तं पि दो वि कज्जाइं।
णिव्वरणमणिव्वूढे णिव्वूढे जं अ णिव्वरणं ॥ ३·५५ ॥

८. कीरन्ति व्विअ णासइ उअए रेहव्व खलअणे मेत्ती।
सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाहाणरेह व्व ॥ ३·७२ ॥

९. फलसंपत्तीअ समोणआइ तुंगाइं फलविपत्तीए।
हिअआइ सुपुरिसाणं महातरुणं व सिहराइं ॥ ३·८२ ॥

---

७. लघयतो लघु पुरुषं पर्वतमात्रमपि द्वे अपि कार्ये।
निर्वरणमनिर्व्यूढे निर्व्यूढे यच्च निर्वरणम् ॥

८. क्रियमाणैव नश्यत्युदके रेखेव खलजने मैत्री।
सा पुनः सुजने कृता अनघा पाषाणरेखेव ॥

९. फलसंपत्या समवनतानि तुङ्गानि फलविपत्या।
हृदयानि सुपुरुषाणां महातरूणामिव शिखराणि ॥

---

७. पर्वत के समान महान् व्यक्ति को भी दो कार्य शीघ्र ही निम्नकोटि का बना देते हैं—(१) किसी भी कार्य को बिना किए हुए (काम करने के पहले) ही उसको प्रकाशित करना। (२) करने के बाद (कार्य पूरा होने के बाद) उसे प्रकट करना अर्थात् प्रशंसा करना।

८. दुष्ट पुरुष की मित्रता जल में खींची गयी रेखा के समान करते-करते ही नष्ट हो जाती है और वही मैत्री सज्जन के साथ करने पर पत्थर की रेखा के समान स्थिर होती है।

९. सज्जनों के हृदय विशाल तरुओं के शिखरों की भाँति फल-सम्पत्ति के आने पर नम्र हो जाते हैं और फल-विपत्ति आने पर (फलों के नष्ट हो जाने पर, वैभव नष्ट होने पर) अत्युच्च (उन्नत स्वाभिमान युक्त) हो जाते हैं।

१०. तुङ्गो च्चिअ होइ मणो मणंसिणो अन्तिमासु वि दसासु ।
अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उद्धं च्चिअ फुरन्ति ।।३·८४।।

११. पोट्टं भरन्ति सउणा वि माउआ अप्पणो अणुव्विग्गा ।
विहलुद्धरणसहावा हुवन्ति जइ के वि सप्पुरिसा ।।३·८५ ।।

१२. दढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिँ विप्पिअं कन्तो ।
राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ।।४·१९।।

१३. वसणम्मि अणुव्विग्गा विहवम्मि अगव्विआ भए धीरा ।
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसेमेसु सप्पुरिसा ।। ४·८० ।।

---

१०. तुङ्गमेव भवति मनो मनस्विनोऽन्तिमास्वपि दशासु ।
अस्तमनेऽपि रवेः किरणाः ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ।।

११. उदरं भरन्ति शकुना अपि हे मातर (हे सखि) आत्मनोऽनुद्विग्नाः ।
विह्वलोद्धरणस्वभावा भवन्ति यदि केऽपि सत्पुरुषाः ।।

१२. दृढरोषकलुषितस्यापि सुजनस्य मुखादप्रियं कुतः ?
राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ।।

१३. व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भये धीराः ।
भवन्त्यभिन्नस्वभावाः समेषु विषमेषु सत्पुरुषाः ।।

---

१०. मनस्वी का हृदय अन्तिम अवस्थाओं (मरणासन्न दशाओं) में भी उन्नत ही रहता है। अस्त होते हुए भी सूर्य की किरणें सदा ऊपर की ओर ही स्फुरित होती हैं।

११. हे सखि ! विना किसी उद्विग्नता के पक्षी भी अपना पेट भर लेते हैं परन्तु यदि कोई सज्जन होते हैं तो वे आपत्ति-ग्रस्त लोगों का उद्धार करने के स्वभाव वाले होते हैं अर्थात् सज्जन की प्राप्ति दुर्लभ है।

१२. अत्यधिक क्रोध से कलुषित होते हुए भी सज्जन के मुख से अप्रिय वचन कहाँ ? राहु के मुख में होने पर भी चन्द्रमा की किरणें अमृत ही बरसाती हैं।

१३. सत्पुरुष विपत्ति में उद्विग्न नहीं होते हैं, वैभवता में गर्व नहीं करते हैं

१४. चावो सहावसरलं विच्छिवई सरं गुणम्मि वि पडन्तं ।
वंकस्स उज्जुअस्स अ संबन्धो किं चिरं होई ॥ ५·२४ ॥
१५. खिप्पइ हारो थणमंडलाहि तरुणीअ रमणपरिरम्भे ।
अच्चिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ ५·२९ ॥
१६. धूलिमइलो वि पंकङ्किओ वि तणरइअदेहभरणो वि ।
तह वि गइन्दो गरुअत्तणेण ढक्कं समुव्वहइ ॥ ६·२६ ॥
१७. दुस्सिखिअरअणपरिक्खएहिँ घिट्टोसि पत्थरे तावा ।
जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगअ ! का तुअ मुल्लकहा ॥ ७·२७ ॥

---

१४. चापः स्वभावसरलं विक्षिपति शिरं गुणेऽपि पतन्तम् ।
वक्रस्य ऋजुकस्य च सम्बन्धः किं चिरं भवति ॥
१५. क्षिप्यते हारः स्तनमण्डलात् तरुणीभिः रमणपरिरम्भे ।
अर्चितगुणा अपि गुणिनो लभन्ते लघुत्वं कालेन ॥
१६. धूलिमलिनोऽपि पङ्काङ्कितोऽपि तृणरचितदेहभरणोऽपि ।
तथापि गजेन्द्रो गुरुकत्वेन ढक्कां समुद्वहति ॥
१७. दुःशिक्षितरत्नपरीक्षकैर्घृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत् ।
यावत्तिलमात्रं वर्तसे मरकत ! का तव मूल्यकथा ॥

और भय के समय धैर्यवान् होते हैं। [इस प्रकार वे] सम (अनुकूल) तथा विषम (प्रतिकूल) परिस्थितियों में एक समान-स्वभाव वाले होते हैं।

१४. स्वभाव से सरल तथा गुण (प्रत्यञ्चा) में आसक्त वाण को भी धनुष दूर फेंक देता है। वक्र (कुटिल) और सरल (निष्कपट) का सम्बन्ध क्या चिर-स्थायी हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है।

१५. प्रिय के आलिङ्गन के समय गुणी (सूत्र में पिरोया गया) हार भी युवतियों के द्वारा कुचमण्डल से उतारकर फेंक दिये जाते हैं। काल के प्रभाव से गुणी व्यक्ति भी लघुता को प्राप्त हो जाते हैं।

१६. धूलि से धूसरित, कीचड़ से सना हुआ और तिनकों से उदरपूर्ति करता हुआ भी गजराज अपती गुरुता के कारण यश को धारण करता है।

१७. हे मरकतमणि ! अनाड़ी रत्नपरीक्षकों के द्वारा तुम पत्थर पर इतने

१८. एक्केण वि वडवीअंकुरेणं सअलवणराइमज्झम्मि ।
तह तेण कओ अप्पा जह सेसदुमा तले तस्स ॥७७० ॥
१९. जे जे गुणिनो जे जे अ चाइणो जे विडड्ढविण्णाणा ।
दारिद्द रे ! विअक्खण ताणं तुमं साणुराओ सि ॥ ७७१ ॥
२०. धण्णा बहिरा अन्धा ते च्चिअ जीअन्ति माणुसे लोए ।
ण सुणन्ति पिसुणवअणं खलाणँ ऋद्धिं ण पेक्खन्ति ॥ ७।९५ ॥

---

१८. एकेनापि वटबीजाङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।
तथा तेन कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्तले तस्य ॥
१९. ये ये गुणिनो ये ये च त्यागिनो ये विदग्धविज्ञानाः ।
दरिद्रय रे विचक्षणः ! तेषां त्वं सानुरागोऽसि ॥
२०. धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।
न शृण्वन्ति पिशुनवचनं खलानामृद्धिं न पश्यन्ति ॥

घिसे गये हो कि अब तिलमात्र रह गये हो । तुम्हारे मूल्य की बात ही क्या ? अर्थात् इतना परखे जाने पर भी अनाड़ी जौहरी तुम्हारा मूल्यांकन नहीं कर सके ।

१८. वटबीज के अकेले एक अङ्कुर ने अपने को समस्त वनराजि के मध्य में इस प्रकार प्रसारित किया कि शेष सभी वृक्ष उसके तल भाग में आ गये अर्थात् इस अन्योक्ति के द्वारा किसी नवयुवक की उन्नति व्यङ्ग्य है ।

१९. हे दारिद्रय ! तुम बहुत चतुर हो क्योंकि जो गुणी हैं, जो त्यागी हैं और जो प्रकाण्ड पण्डित हैं तुम उन्हीं से अनुराग करते हो ।

२०. मनुष्य लोक में अन्धे और बहरे लोग धन्य हैं, वे ही वास्तव में जीवित हैं क्योंकि वे न तो पिशुनों के वचन सुनते है और न दुष्टों की समृद्धि को देखते हैं ।

❀

(जैन महाराष्ट्री)

(६) हणुओ जम्मकहा[1]

१. केत्तियमेते वि गए, काले गब्भप्पयासया बहवे ।
जाया विविहविसेसा, महिन्दतणयाएँ देहम्मि ॥ १ ॥
२. पीणुन्नया य थणया सामलवयणा कडी य वित्थिण्णा ।
गब्भभरभारकन्ता गई य मन्दं समुव्वहइ ॥ २ ॥
३. एएहि लक्खणेहिं, मुणिया पवणंजयस्स जणणीए ।
भणिया य जायगब्भा, पावे ! कन्ते पउत्थम्मि ॥ ३ ॥

संस्कृत-छाया (हनुमज्जन्मकथा)

१. कियन्मात्रेऽपि गते काले गर्भप्रकाशका बहवः ।
जाता विविधविशेषा महेन्द्रतनयाया देहे ॥
२. पीनोन्नतौ च स्तनौ श्यामलवदनं कटिश्च विस्तीर्णा ।
गर्भभारभराक्रान्ता गतिः च मन्दा समुद्वहति ॥
३. एतैः लक्षणैः ज्ञात्वा पवनञ्जयस्य जनन्या ।
भणिता च जातगर्भा पापे ! कान्ते प्रकान्ते ॥

हिन्दी अनुवाद (हनुमान जन्म-कथा)

१. कुछ समय व्यतीत होने के अनन्तर महेन्द्रतनया अंजनासुन्दरी के शरीर में गर्भ के सूचक अनेक प्रकार के विशिष्ट चिह्न उत्पन्न हुए ।

२. पीन एवं उन्नत स्तन हो गये, श्याम मुख हो गया तथा विस्तीर्ण कटि (कमर) भाग हो गया । गर्भ के भार से सुन्दर प्रतीत होने वाली उसकी गति मन्द हो गई ।

३. पवनंजय की माता ने इन लक्षणों से जानकर कहा कि हे पापिनी ! पति के बाहर जाने पर भी गर्भवती हुई हो ।

---

[1] विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' के १७ वें उद्देशक से उद्धृत ।

४. काऊण सिरपणामं, कहेइ पवणंजयागमं सव्वं ।
मुद्दा य पच्चयत्थं, तह वि य न पसज्जई सासू ॥ ४ ॥
५. भणइ तओ कित्तिमई, जो न वि नाम पि गेण्हई तुज्झं ।
सो किह दूरपवासं गन्तूण पुणो नियत्तेइ ? ॥ ५ ॥
६. धिद्धि ! त्ति दुट्ठसीले !, नियकुलं निम्मलं कयं मलिणं ।
लोगम्मि गरहणिज्जं, एरिसकम्मं जणन्तीए ॥ ६ ॥
७. एवं बहुप्पयारं, उवलम्भेऊण तत्थ कित्तिमई ।
आणवइ कम्मकारं, नेह इमं पियहरं सिग्घं ॥ ७ ॥

---

४. कृत्वा शिरः प्रणामं कथयति पवनञ्जयागमनं सर्वम् ।
मुद्रा च प्रत्ययार्थं तथापि च न प्रसाध्यते श्वश्रूः ॥
५. भणति ततः कीर्तिमती यो नापि नाममपि गृह्णाति युष्माकं ।
सः कथं दूरप्रवासं गत्वा पुनः निवर्तते ॥
६. धिक् ! इति दुष्टशीले ! निजकुलं निर्मलं कृतं मलिनम् ।
लोके गर्हणीयं ईदृशकर्म जनयित्वा ॥
७. एवं बहुप्रकारं उपालभ्य तत्र कीर्तिमती ।
आज्ञा यति कर्मकारं नय इमं पितृगृहं शीघ्रम् ॥

---

४. सिर से प्रणाम करके पवनंजय के आगमन का सर्व वृत्तान्त उसने कह सुनाया और साक्षी के तौर पर मुद्रिका भी दिखलाई, तथापि सास को विश्वास नहीं हुआ।

५. तब कीर्तिमती ने कहा कि जो तेरा नाम भी नहीं लेता था वह दूर प्रवास में जाकर कैसे वापस लौट सकता है ?

६. हे दुष्टशीले ! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। लोक में निन्दित ऐसा कर्म करके तूने अपना कुल कलंकित किया है।

७. इस तरह अनेक प्रकार से बुरा-भला कहकर कीर्तिमती ने नौकर को आज्ञा दी कि इसे जल्दी ही इसके मायके ले जाओ।

८. लद्धाएसेण तओ, समयं सहियाए अञ्जणा तुरियं।
जाणम्मि समारूढा, महिन्दनयरामुहं नीया ॥ ८ ॥

९. संपत्ता य खणेणं, पावो मोत्तूण पुरवरासन्ने।
खामेऊण नियत्तो, ताव य अत्थंगओ सूरो ॥ ९ ॥

१०. सूरुग्गमम्मि तो सा सहीएँ समयं कुलोचियं नयरं।
पविसन्ती दीणमुही पडिरुद्धा दारवालेणं ॥ १६ ॥

११. अह सो वि दारवालो सिलाकवाडो त्ति नाम गन्तूणं।
तं चेव वयणनिहसं महिन्दरायस्स साहेइ ॥ १८ ॥

८. लब्धादेशेन ततः समकं (सह) सख्या अञ्जना तुर्यम्।
याने समारूढा महेन्द्रनगरमुखं नीता ॥

९. सम्प्राप्ता च क्षणेन पापी मुक्त्वा पुरवरासन्ने।
आज्ञाप्य निवृत्तः तदा च अस्तंगतः सूर्यः ॥

१०. सूर्योदये सा सख्या सह कुलोचितं नगरं।
प्रविशन्ती दीनमुखी प्रतिरुद्धा द्वारपालेन ॥

११. अथ सोऽपि द्वारपालः शिलाकपाट इति नाम गत्वा ॥
तमेव वचननिखिलं महेन्द्रराज्ञे श्रावयति ॥

८. तब आज्ञा मिलने पर अंजना अपनी सखी के साथ जल्दी ही सवारी में जा बैठी। वह महेन्द्रनगर की ओर ले जाई गई।

९. थोड़ी ही देर में वह वहाँ पहुँच गई। नगर के समीप वह पापी नौकर उसे छोड़कर और क्षमा माँगकर लौट गया। उस समय सूर्य भी अस्त हो गया था।

१० सूर्योदय के होने पर सखी के साथ अपने कुलोचित नगर में प्रवेश करती हुई दीनमुखी वह द्वारपाल के द्वारा रोकी गई।

११. इसके बाद उस शिलाकपाट नाम के द्वारपाल ने जाकर यह समस्त वृत्तान्त महेन्द्र राजा को सुनाया।

१२. भणइ य महिंदराया, पुव्वि पि मए सुयं जहा एसा ।
पवणंजयस्स वेसा, तेण य गब्भस्स संदेहो ॥ २३ ॥
१३. मा होहिइ अववाओ, मज्झं पि इमाएँ संकिलेसेणं ।
भणिओ य दारवालो, धाडेह लहुं पुरवराओ ॥ २४ ॥

१४. तो दारवालएणं, लद्धाएसेण अञ्जणा तुरियं ।
निद्धाडिया पुराओ, सहीएँ समयं परविएसं ॥ २५ ॥

१५ सुकुमालहत्थपाया खरपत्थर-विसमकण्टइल्लेणं ।
पन्थेण वच्चमाणी अइगरुयपरिस्समावन्ना ॥ २६ ॥

१२. भणति च महेन्द्रराजा पूर्वमपि मया श्रुतम् ।
यथा एषा पवनञ्जयस्य द्वेष्या तेन च गर्भस्य सन्देहः ।

१३. मा भवत्वपवादो मह्यमपि अस्याः कलंकेन ।
भणितश्च द्वारपालो निस्सारय लघु पुरवरतः ॥

१४. ततो द्वारपालेन लब्धादेशेन अञ्जना तुरियं ।
निष्कासिता पुरतः सख्या सह परदेशं ॥

१५. सुकुमारहस्तपादखरप्रस्तरविषमकण्टकाकीर्णेन ।
पन्था गच्छन्ती अतिगुरुपरिश्रमापन्ना ॥

१२. इस पर महेन्द्रराजा ने कहा कि पहले भी मैंने सुना था कि यह पवनंजय की द्वेषभाजन है, अतः इसके गर्भ के बारे में सन्देह है ।

१३. इस कलंक से मेरा भी अपमान न हो, ऐसा समझकर उसने द्वारपाल से कहा कि नगर से इसे जल्दी बाहर निकाल दो ।

१४. आदेश प्राप्त द्वारपाल ने सखी के साथ अंजना सुन्दरी को तुरन्त ही नगर से बाहर परदेश में निकाल दिया ।

१५. तीक्ष्ण पत्थरों एवं काँटों से परिव्याप्त विषम मार्ग से ज़ाते हुए कोमल हाथों एवं पैरों वाली उसे अत्यन्त परिश्रम हुआ ।

१६. जं जं सयणस्स घरं वच्चइ आवासयस्स कज्जेणं ।
तं तं वारेन्ति नरा नरिन्दसंपेसिया सव्वं ।। २७ ।।
१७. एवं धाडिज्जन्ती, सव्वेण जणेण निरणुकम्पेणं ।
घोराडविं पविट्ठा, पुरिसाण वि जा भयं देइ ।। २८ ।।
१८. अह अञ्जणा कयाई, वसन्तमालाए विरइएँ सयणे ।
वरदारयं पसूया, पुव्वदिसा चेव दिवसयरं ।। ८९ ।।
१९. तस्स पभावेण गुहा, वरतरुवरकुसुम-पल्लवसणाहा ।
जाया कोइलमुहला, महुयरझंकारगीयरवा ।। ९० ।।

१६. यस्य यस्य स्वजनस्य गृहं गच्छति आवासस्य कार्यार्थम् ।
तं तं वारयन्ति नरा नरेन्द्रसम्प्रेषिताः सर्वम् ।।
१७. एवं निष्कासन्ती सर्वैः जनैः निरनुकम्पैः ।
घोराटवीं प्रविष्टा पुरुषाणामपि या भयं ददाति ।।
१८. अथ अञ्जना कदापि वसन्तमालया विरचिते शयने ।
वरदारकं प्रसूता पूर्वदिशा यथा दिवसकरं ।।
१९. तस्य प्रभावेण गुफा वरतरुवरकुसुमपल्लवसनाथा ।
जाता कोकिलमुखरा मधुकरझंकारगीतरवा ।।

१६. आवास-प्राप्ति के लिए वह जिस-जिस स्वजन के घर जाती थी उस उसको=सभी को राजा के द्वारा संप्रेषित आदमी रोकते थे ।

१७. इस प्रकार सब निर्दय लोगों के द्वारा निष्कासित उसने ऐसे घोर वन में प्रवेश किया जो पुरुषों के लिए भयानक था ।

१८. इसके पश्चात् कभी वसन्तमाला के द्वारा विरचित शय्या के ऊपर अंजना ने पूर्वदिशा में उगने वाले सूर्य की भाँति एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया ।

१९. उसके प्रभाव से वह गुफा उत्तम वृक्षों के सुन्दर फूलों और पत्तों से युक्त, कोयल से मुखरित तथा भौंरों के झंकार की गीत-ध्वनि से व्याप्त हो गई ।

२०. घेत्तूण बालयं सा, उच्छङ्गे अञ्जणा रुयइ मुद्धा ।
किं वच्छ ! करेमि तुहं, एत्थारण्णे अपुण्णा हं ? ।। ९१ ।।
२१. एस पिया ते पुत्तय ! अहवा मायामहस्स य घरम्मि ।
जइ तुज्झ जम्मसमओ, होन्तो वि तओ महाणन्दो ।। ९२ ।।
२२. तुज्झ पसाएण अहं, पुत्तय ! जीवामि नत्थि संदेहो ।
पइसयणविप्पमुक्का, जुहपणट्ठा मई चेव ।। ९३ ।।
२३. भणइ यं वसन्तमाला, सामिणि छड्डेहि परिभवं सव्वं ।
न य होइ अलियवयणं, जं पुव्वं मुणिवराइट्ठं ।। ९४ ।।

---

२०. गृहीत्वा बालकं सा उत्सङ्गे अञ्जना रोदिति मुग्धा ।
किं वत्स ! करोमि तव एतादृशारण्ये अपुण्याऽहं ।।
२१. एष पितुस्ते पुत्रक ! अथवा मातामहस्य च गृहे ।
यदि तव जन्मसमयो भवेदपि तदा महानन्दः ।।
२२. तव प्रसादेन अहं पुत्रक ! जीवामि नास्ति सन्देहः ।
पतिस्वजनविप्रमुक्ता यूथप्रणष्टा मृगीव ।।
२३. भणति च वसन्तमाला स्वामिनि ! परित्यज परिभवं सर्वम् ।
न च भवति अलीकवचनं यत् पूर्वं मुनिवरादिष्टम् ।।

---

२०. बालक को गोद में धारण करके वह मुग्धा अंजना रोती थी कि हे वत्स ! अपुण्यशाली मैं इस अरण्य में तेरे लिए क्या करूँ ?

२१. हे पुत्र ! पिता के अथवा मातामह के घर में तेरा यह जन्मोत्सव होता तो बहुत आनन्द छा जाता ।

२२. हे पुत्र ! तेरे प्रसाद से ही पति एवं स्वजन से मुक्त मैं यूथ से परिभ्रष्ट हिरनी की भाँति जी रही हूँ ।

२३. इस पर वसन्तमाला ने कहा कि हे स्वामिनी ! ऐसी समस्त ग्लानि का परित्याग करो । मुनिवर ने पहले जो कुछ कहा है वह असत्य कथन नहीं होगा ।

२४. एयं ताण पलावं, सुणिऊण नहङ्गणाउ ओइण्णो ।
सयलपरिवारसहिओ, ताव य विज्जाहरो सहसा ।। ९५ ।।

२५. पेच्छइ गुहापविट्ठो, जुवईओ दोण्णि रूवकलियाओ ।
पुच्छइ किवालुयमणो, कत्तो सि इहागया तुब्भे ? ।। ९६ ।।

२६. भणइ य वसन्तमाला, सुपुरिस ! एसा महिन्दनिवधूया ।
- नामेण अञ्जणा वि हु, महिला पवणंजयभडस्स ।। ९७ ।।

२७. सो अन्नया कयाई, काऊण इमाएँ गब्भसंभूई ।
चलिओ सामिमयासं न य केणइ तन्थ परिणाओ ।। ९८ ।।

---

२४. एवं तयोः प्रलापं श्रुत्वा नभाङ्गणादवतीर्णः ।
सकलपरिवारसहितः तावच्च विद्याधरः सहसा ।।

२५. प्रेक्षति गुफाप्रविष्टो युवत्यौ द्वयौ रूपकलितौ ।
पृच्छते कृपालुमनः कुत इह आगता युवाभ्याम् ।।

२६. भणति वसन्तमाला सुपुरुष ! एषा महेन्द्रनृपधूता ।
नाम्ना अञ्जना खलु महिला पवनञ्जयभटस्य ।।

२७. स अन्यदा कदाचिद् कृत्वा अस्यां गर्भसम्भूतिः ।
चलितः स्वामिसकाशं न च केनापि तत्र परिज्ञातः ।।

---

२४. उनकी ऐसी बातचीत को सुनकर सम्पूर्ण परिवार के साथ एक विद्याधर सहसा वहाँ आकाश से नीचे उतरा ।

२५. गुफा में प्रवेश करके उसने दो रूपवती युवतियों को देखा । दयालु मनवाले उसने पूछा कि तुम यहाँ पर कहाँ से आई हो ? ।

२६ वसन्तमाला ने कहा कि हे सुपुरुष ! यह महेन्द्र की अंजना नाम की पुत्री तथा सुभट पवनंजय की पत्नी है ।

२७. वह पवनंजय कभी एक समय इसमें गर्भ की उत्पत्ति करके स्वामी रावण के पास चला गया । किसी ने भी वहाँ यह बात न जानी ।

२८. दिट्ठा य सासुयाए, गुरुभारा एस मूढहिययाए।
काऊण दुट्ठसीला, पिउभवणं पेसिया सिग्घं ॥ ९९ ॥

२९. तेण वि य महिन्देणं, निच्छूढा तिव्वदोसभीएणं।
समयं मए पविट्ठा, एसा रण्णं महाघोरं ॥ १०० ॥

३०. एसा दोसविमुक्का, रयणीए अज्ज पच्छिमे जामे।
वरदारयं पसूया, पलियङ्कगुहाएँ मज्झम्मि ॥ १०१ ॥

३१. एयं चिय परिकहिए, जंपइ विज्जाहरो सुणसु भद्दे !।
नामेण चित्तभाणू, मज्झ पिया कुरुवरद्दीवे ॥ १०२ ॥

२८. दृष्टा च श्वश्र्वा गुरुभारा एषा मूढहृदयया।
कृत्वा दुष्टशीला पितृभवनं प्रेषिता शीघ्रम् ॥

२९. तेनापि च महेन्द्रेण निष्क्रान्ता तीव्रदोषभीतेन।
सह मया प्रविष्टा एषाऽरण्यं महाघोरम् ॥

३०. एषा दोषविमुक्ता रजन्या अद्य पश्चिमे यामे।
वरदारकं प्रसूता पर्यङ्कगुफायां मध्ये ॥

३१ एवमेव परिकथिते जल्पति विद्याधरः श्रुणु भद्रे !।
नाम्ना चित्रभानुर्मम पिता कुरवरद्वीपे ॥

२८. मूढ़ हृदयवाली सास ने देखा कि यह गभंवती है। अतः कुशील का दोषारोपण करके उसे शीघ्र ही पिता के घर भेज दिया।

२९. बड़े भारी दोष के भय से उस महेन्द्र ने भी इसे निकाल दिया। इस कारण मेरे साथ इसने अतिभयंकर अरण्य में प्रवेश किया है।

३०. दोष से रहित इसने आज के पिछले प्रहर में इस पर्यङ्क-गुफा में उत्तम पुत्र को जन्म दिया है।

३१. इस प्रकार कहने पर विद्याधर ने कहा कि हे भद्रे ! सुनो, कुरुवर द्वीप में मेरे चित्रभानु नाम के पिता हैं।

3600

३२. पडिसुज्जउ त्ति अहयं, सुन्दरमायाएँ कुच्छिसंभूओ ।
वरहिययसुन्दरीए, भाया य महिन्दभज्जाए ॥ १०३ ॥

३३. मह एस भइणिधूया, बाला चिरकालदिट्ठपम्हुट्ठा ।
साभिन्नाणेहि पुणो, मुणिया सयणाणुराएणं ॥ १०४ ॥

३४. नाऊण माउलं सा, रुवइ वणे तत्थ अञ्जणा कलुणं ।
घणदुक्खवेढियङ्गी, वसन्तमालाएँ समसहिया ॥ १०५ ॥

३५. वारेऊण रुयन्ती, भणिओ पडिसुज्जएण गणियण्णू ।
नक्खत्त-करण-जोगं, कहेहि एयस्स बालस्स ॥ १०६ ॥

---

३२. प्रतिसूर्यक इत्यहं सुन्दरमातृकुक्षिसम्भूतः ।
वरहृदयसुन्दरया भ्राता च महेन्द्रभार्यायाः ॥

३३. मम एष भगिनी धूता बाला चिरकालदृष्टविस्मृता ।
साऽभिज्ञानैः पुनः ज्ञाता स्वजनानुरागेण ॥

३४. ज्ञात्वा मातुलं सा रोदिति वने तत्र अञ्जना करुणं ।
घनदुःखवेष्टिताङ्गी वसन्तमालया समाश्वसिता ॥

३५. वारयित्वा रुदन्ती भणितः प्रतिसूर्यकेन गणितज्ञः ।
नक्षत्रकरणयोगं कथय एतस्य बालस्य ॥

---

३२. सुन्दर माता की कोख से उत्पन्न मैं प्रतिसूर्यक नाम वाला महेन्द्र की भार्या वर-हृदयसुन्दरी का भाई हूँ ।

३३. यह कन्या मेरी बहन की लड़की है। चिरकाल के बाद देखने के कारण यह विस्मृत सी हो गई थी, परन्तु स्वजन के अनुराग के कारण मैंने इसे पहचान लिया है ।

३४. अपने मामा को पहचानकर वह अंजना उस अरण्य में करुण स्वर में रोने लगी । अत्यन्त दुःख से परिव्याप्त शरीरवाली वह वसन्तमाला के द्वारा आश्वस्त की गई ।

३५. रोती हुई उसे शान्त करके प्रतिसूर्यक ने ज्योतिषी से पूछा कि इस बालक का नक्षत्र, करण एवं योग कहें ।

३६. सो भणइ अज्ज दियहो, विभावसू बहुलअट्ठमी य चेत्तस्स ।
समणो च्चिय नक्खत्तं बम्भा उण भणणए जोगो ॥ १०७ ॥

३७. सुपुरिस ! सुभो मुहुत्तो, उदओ मीणस्स आसि तव्वेलं ।
सव्वे गहाऽणुकूला, विद्धिट्ठाणेसु वट्टन्ति ॥ ११० ॥

३८ एवं महानिमित्तं, भणियं बल-भोग-रज्ज-सामिद्धी ।
भोत्तूण एस बालो, सिद्धिसुहं चेव पाविहिई ॥ १११ ॥

३९. नक्खत्तपाढयं पि य, संपूएऊण तत्थ पडिसूरो ।
तो भणइ भाइणेज्जी, हणुरुहनयरं पगच्छामो ॥ ११२ ॥

४०. तो निग्गया गुहाओ, ठाणनिवासि सुरं खमावेउं ।
वच्चइ नहङ्गणेणं, वरकणयविमाणमारूढा ॥ ११३ ॥

---

३६. सो भणति अद्य दिवसो विभावसोः (रविवार) कृष्णाष्टमी च चैत्रस्य ।
श्रमण एव नक्षत्रं ब्राह्मः पुनो भण्यते योगः ॥

३७. सुपुरुष ! शुभो मुहूर्त उदयो मीनस्य आसीत् तद्वेलायाम् ।
सर्वे ग्रहाऽनुकूला वृद्धिस्थानेषु वर्तन्ते ॥

३८. एवं महानिमित्तं भणति बलभोगराज्यसमृद्धिम् ।
भुक्त्वा एष बालः सिद्धिसुखमेव प्राप्स्यति ॥

३९. नक्षत्रपाठकमपि च सम्पूज्य तत्र प्रतिसूर्यः ।
ततो भणति भागिनेयीं हनुरुहनगरं प्रगच्छामः ॥

४०. ततो निर्गता गुहाया स्थाननिवासिनं सुरं क्षमापयितुम् ।
गच्छति नभाङ्गणेन वरकणकविमानमारूढा ॥

---

३६. उसने कहा कि आज रविवार का दिन तथा चैत्रमास की कृष्णाष्टमी है । श्रवण नक्षत्र और ब्राह्म नाम का योग कहा है ।

३७. हे सुपुरुष ! उस समय शुभ मुहूर्त था और मीन का उदय था । सभी अनुकूल ग्रह वृद्धिस्थान में हैं ।

३८. यह महानिमित्त कहता है कि बल, भोग, राज्य एवं समृद्धि का उपभोग करके यह बालक मोक्षसुख प्राप्त करेगा ।

३९. वहाँ प्रतिसूर्य ने नक्षत्रपाठक (ज्योतिषी) का सम्मान करके अपनी भांजी से कहा कि हम हनुरुह नगर को चलें ।

४०. बाद में उस स्थान में रहनेवाले देव से क्षमायाचना करके वह गुफा से बाहर निकली और सोने के बने हुए उत्तम विमान में आरूढ़ होकर चली ।

४१. उच्छङ्गवट्टियतणू, बालो दट्ठूण खिङ्खिणीजालं।
मीणो व्व समुच्छलिउं, पडिओ गिरिणो सिलावट्टे ॥ ११४ ॥

४२. दट्ठूण सुयं पडियं, रोयन्ती भणइ अञ्जणा कलुणं
दाऊण निही मज्झं, अच्छीणि पुणो अवहियाणि ॥ ११५ ॥

४३. तो सा महिन्दतणया, समयं पडिसुज्जएण अवइण्णा।
हाहाकारमुहरवा, पेच्छइ य सिलायले बालं ॥ ११६ ॥

४४. निरुवहयङ्गोवङ्गो, गहिओ बालाएँ परमतुट्ठाए।
पडिसुज्जएण वि तओ, पसंसिओ हरिसियमणेणं ॥ ११७ ॥

---

४१. उत्सङ्गवर्तिततनुबालो दृष्ट्वा किंकिणीजालम्।
मीन इव समुच्छलित: पतितो गिरिण: शिलापट्टे ॥

४२. दृष्ट्वा सुतं पतितं रुदन्ती भणति अञ्जना करुणम्।
दत्वा निधिं मह्यम् अक्षिणी पुनोऽपहृते ॥

४३. तदा सा महेन्द्रतनया सह प्रतिसूर्यकेण अवतीर्ण:।
हाहाकारमुखरवा प्रेक्षते च शिलातले बालम् ॥

४४. निरुपहताङ्गोपाङ्गो गृहीतो बाल: परमतुष्ट्या।
प्रतिसूर्यकेणाऽपि तत: प्रशंसितो हर्षितमनस: ॥

---

४१. गोद में जिसका शरीर धारण किया हुआ है ऐसा वह बालक किंकिणी के समूह को देखकर मछली की भाँति उछला और पहाड़ की शिला पर जा गिरा।

४२. पुत्र को नीचे गिरा हुआ देखकर अंजना करुण स्वर में रोती हुई कहने लगी कि मुझे खजाना देकर फिर आँखें छीन ली हैं!

४३. तब मुख से हाहाकार करती हुई वह महेन्द्रतनया अंजना प्रतिसूर्य के साथ नीचे उतरी और वहाँ शिलातल पर बालक को देखा।

४४. अक्षत अंगोपांग वाले उस बालक को अंजना ने आनन्द-विभोर होकर उठा लिया। हर्षित मनवाले प्रतिसूर्य ने भी तब उसकी प्रशंसा की।

४५. जाणविमाणारूढा, समयं पुत्तेण अञ्जणा तुरियं ।
बहुतूरमङ्गलेहिं, पवेसिया हणुरुहं नयरं ॥ ११८ ॥
४६. जम्मूसवो महन्तो, तस्स कओ खेयरेहि तुट्ठेहिं ।
देवेहि देवलोए, नज्जइ इन्दे समुप्पन्ने ॥ ११९ ॥
४७. बालत्तणम्मि जेणं, सेलो आचुण्णिओ य पडिएणं ।
तेणं चिय सिरिसेलो, नामं पडिसुज्जएण कयं ॥ १२० ॥
४८. हणुरुहनयरम्मि जहा सक्कारो पाविओ अइमहन्तो ।
हणुओ त्ति तेण नामं बीयं ठवियं गुरुयणेणं ॥ १२१ ॥

---

४५. यानविमानारूढा सह पुत्रेण अञ्जना त्वरितम् ।
बहुतूर्यमङ्गलैः प्रवेशिता हनुरुहं नगरं ॥
४६. जन्मोत्सवो महान् तस्य कृतः खेचरैः तुष्टैः ।
देवैर्देवलोके ज्ञायते इन्द्रे समुत्पन्ने ॥
४७. बाल्यकाले येन शैल आचूर्णितश्च पतितेन ।
तेनैव श्रीशैलो नाम प्रतिसूर्यकेण कृतम् ॥
४८. हनुरुहनगरे यथा सत्कारः प्रापितोऽतिमहान् ।
'हनुमान' इति तेन नाम द्वितीयं स्थापितं गुरुजनैः ॥

---

४५. पुत्र के साथ अंजना शीघ्र पुनः ही विमान पर आरूढ़ हुई और तब नानाविध मंगल-वाद्यों के साथ हनुरुह नगर में उसका प्रवेश कराया गया ।

४६. देवलोक में देवों के द्वारा जैसा जन्मोत्सव इन्द्र के उत्पन्न होने पर मनाया जाता है वैसा ही आनन्द-विभोर खेचरों ने उसका जन्मोत्सव मनाया ।

४७. बचपन में पहाड़ पर गिरकर उसे चूर्ण-चूर्ण कर दिया था, अतएव प्रतिसूर्य ने उसका नाम 'श्रीशैल' रखा ।

४८. और चूंकि हनुरुहनगर में बहुत बड़ा सत्कार पाया था, इसलिए गुरुजनों ने उसका दूसरा नाम 'हनुमान' रखा ।

●

(७) साहसिओ बालो[1]

एत्थंतरम्मि हिययब्भंतर-गुरु-दुक्ख-जलण-जालावलि-तत्तेहिं बाह-जललवेहिं रोविउं पयत्तो कुमारो। तओ राइणा ससंभमेण गलिय-बाह-बिंदु-प्पवाहाणुसारेणावलोइयं से वयणयं जाव पेच्छइ जल-तरंग-पव्वालियं पिव सयवत्तयं। तओ 'अहो, बालस्स किं पि गरुयं दुक्खं'ति भणमाणस्स राइणो वि बाह-जलोल्लियं णयण-जुवलयं। पयइ-करुण-हिययाए देवीओ वि पलोट्टो बाह-पसरो। मंतियणस्स वि णिवडिओ अंसु-वाओ। तओ राइणा भणियं—'पुत्त कुमार! मा अद्धिइं कुणसु' त्ति भणमाणेण णियय-पट्टंसुअंतेण पमज्जियं से वयण-कमलयं। तओ

संस्कृत-छाया (साहसिको बालः)

अत्रान्तरे आभ्यन्तरगुरुदुःखज्वलनज्वालावलीतप्तैः वाष्पजललवैः रोदितुं प्रवृत्तः कुमारः। ततो राज्ञा संसंभ्रमं गलितवाष्पविन्दुप्रवाहानुसारेणावलोकितं तस्य वदनं यावत् प्रेक्ष्यते जलतरङ्गस्फालितमिव शतपत्रम्। ततो अहो बालस्य किमपि 'गुरुकं दुःखम्' इति भण्यतो राज्ञोऽपि वाष्पजलार्द्रं नयनयुगलम् [अभूत्]। प्रकृतिकरुणहृदयाया देव्या अपि वाष्पप्रसरः। मंत्रिजनस्यापि निपतितोऽश्रुप्रसरः। ततो राज्ञा भणितम्—पुत्र कुमार! मा विषादं कुरु'

हिन्दी अनुवाद (साहसी बालक)

इसी बीच आभ्यन्तरवर्ती अत्यधिक दुःख रूपी आग की ज्वालाओं से संतप्त आँसू रूपी जलकणों से कुमार रोने लगा। इसके बाद राजा ने जलतरंगों से आस्फलित शतपत्र (कमल) के समान गिरते हुए वाष्पबिन्दुओं के प्रवाह से युक्त उसके मुख को देखा। इसके बाद, कष्ट के साथ 'इस बालक को कोई बहुत बड़ा दुःख है' ऐसा कहते हुए राजा के नेत्र-युगल भी आँसुओं (वाष्प जल) से गीले हो गये। स्वभाव से करुण हृदय वाली देवी के आँसू बह पड़े। मन्त्रियों के भी आँसू गिरने लगे। इसके बाद राजा ने कहा—'पुत्र कुमार! खेद मत करो'। इस प्रकार कहते हुए राजा ने उसके मुख

---

[1] उद्योतनसूरि-विरचित, कुवलयमाला, पृ०१० से उद्धृत।

परियणोवणीय-जलेण य पक्खालियाइं णयणाइं कुमारस्स अत्तणो देवीय मंतियणेणं ति ।

भणियं च राइणा 'भो भो सुर-गुरु-प्पमुहा मंतिणो, 'भणइ, किं कुमारेण मह उच्छंग-गएण रुण्णं' ति । तओ एक्केण भणियं 'देव !' किमेत्थ जाणियव्वं । बालो खु एसो माया-पिइ-विउत्तो विसण्णो । ता इमिणा दुक्खेण रुण्णं' ति । अण्णेण भणियं 'देव, तुमं पेच्छिऊण णियए जणणि-जणए संभरियं ति इमिणा दुक्खेण रुण्णं' ति । अण्णेण भणियं 'देव, तहा जं आणियं ति, कत्थ राया देवी य कं वा अवत्थंतरमणु-

---

इति भण्यता निजपट्टांशुना प्रमार्जितं तस्य वदनकमलम् । ततः परिजनोपनीत-जलेन च प्रक्षालितानि नयनानि कुमारस्य स्वस्य देव्या मन्त्रिगणानामिति ।

भणितं च राज्ञा 'भो भोः सुरगुरुप्रमुखा मन्त्रिणः ! भणत, किं कुमारेण ममोत्सङ्गगतेन रुदितम्' इति । तत एकेन भणितम् 'देव ! किमत्र ज्ञेयम् ! बालः खलु एष मातृपितृवियुक्तो विषण्णः । अतोऽनेन दुःखेन रुदितम्' इति । अन्येन भणितम्—'देव, त्वां विलोक्य निजपितरौ संस्मृतवान् इत्यनेन दुःखेन रुदितम्' इति । अन्येन भणितम् 'देव ! तथा यदानीतमिति कथं राजा देवी च किं वा अवस्थान्तरमनुभवतोऽनेन दुःखेन रुदितम्' इति । राज्ञा भणितम्—'किमत्र विचारेण इममेव

रूपी कमल को अपने वस्त्राञ्चल से प्रमार्जित किया । इसके पश्चात् परिजनों के द्वारा लाए गए जल से कुमार के, अपने, देवी के तथा मंत्रियों के नेत्र धोए गए । राजा ने कहा—हे देवगुरु प्रमुख मन्त्रियो ! बतलायें, यह कुमार मेरी गोद में आकर क्यों रोया ? इसके बाद एक मंत्री ने कहा—'हे राजन् ! इसमें जानने योग्य क्या है ? यह बालक माता-पिता के वियोग के कारण दुःखी है । अतः इसी दुःख के कारण रोया है ।' दूसरे मन्त्री ने कहा—'हे राजन् ! आपको देखकर अपने माता-पिता का स्मरण हो आया जिससे दुःखी होकर रोया है ।' दूसरे मन्त्री ने कहा—'हे राजन् ! अपरिचित राजा और देवी को देखकर घबड़ा गया है अतः इसी दुःख से रोया है ।' राजा ने कहा—इसमें विचार करने की क्या आवश्यकता है, इससे ही पूछते हैं । राजा

भवंति, इमिणा दुक्खेण रुण्णं' ति । 'राइणा भणियं 'किमेत्थ वियारेण; इमं चेव पुच्छामो' । भणिओ य राइणा 'पुत्त महिंदकुमार ! साहह मह्यं कीस एयं तए रुण्णयं' ति । तओ ईसिललिय-महुर-गंभीरक्खरं भणियं कुमारेण 'पेच्छह, विहि-परिणामस्स जं तारिसस्स वि तायस्स हरि-पुरंदर-विक्कमस्स एयस्स एरिसे समए अहं सत्तुयणस्स उच्छंग-गओ सोयणिज्जो जाओ त्ति । ता इमिणा मह मण्णुणा ण मे तीरइ बाह-पसरो रुंभिऊणं' ति । तओ राइणा विम्हयाबद्ध-रस-पसर-खिप्पमाण-हियएण भणियं । 'अहो, बालस्स अहिमाणो, अहो सावट्ठंभत्तणं, अहो वयण-विण्णासो, अहो फुडक्खरालावत्तणं, अहो कज्जाकज्ज-वियारणं ति । सव्वहा विम्हावणीयं एयं, जं इमाए वि अवत्थाए एरिसो बुद्धि-

---

पृच्छामः' । भणितश्च राजा 'पुत्र महेन्द्रकुमार ! कथय मां, कथमेतत् त्वया रुदितम्' इति । तत ईषल्ललित-मधुर-गम्भीराक्षरं भणितं कुमारेण 'प्रेक्ष्य, विधि-परिणामस्य यत् तादृशस्यापि तातस्य हरिपुरन्दरविक्रमस्य एतस्य एतादृशे समये अहं शत्रुजनस्योत्संगगतः शोचनीयो जात इति । ततोऽनेन महा मन्युना न मया तीर्यते वाष्पप्रसरः रोद्धुम्' इति । ततो राज्ञा विस्मयाबद्धरसप्रसराक्षिप्यमाण-हृदयेन भणितम्—'अहो बालस्य अभिमानः, अहो सावष्टम्भत्वम्, अहो वचन-विन्यासः, अहो स्फुटाक्षरालापत्वम्, अहो कार्याकार्यविचारणमिति । सर्वथा विस्मयनीयमेतम्, यदेतस्याप्यवस्थायामीदृश बुद्धिविस्तारो वचनविन्यासश्च'

ने कहा—'पुत्र गहेन्द्रकुमार ! मुझसे कहो तुम क्यों रोये ?' इसके बाद ईषत् सुन्दर, मधुर और गम्भीर वाणी से कुमार ने कहा—'सूर्य और इन्द्र के समान पराक्रमी उस पिताजी का पुत्र होकर भी भाग्य के विपरीत परिणाम के कारण मैं शत्रु की गोद में बैठा हुआ शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ । इसीलिए अत्यधिक क्रोध के आवेग के कारण आँसुओं को न रोक सका' । इसके बाद राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'बालक का अभिमान आश्चर्यजनक है । साहस आश्चर्यजनक है । वाणी का विलास आश्चर्यजनक है । स्पष्ट वाणी में बोलना आश्चर्यजनक है । कार्य और अकार्य का विचार आश्चर्यजनक है । यह

परियणोवणीय-जलेण य पक्खालियाइं णयणाइं कुमारस्स अत्तणो देवीय मंतियणेणं ति।

भणियं च राइणा 'भो भो सुर-गुरु-प्पमुहा मंतिणो, 'भणइ, किं कुमारेण मह उच्छंग-गएण रुण्णं' ति। तओ एक्केण भणियं 'देव!' 'किमेत्थ जाणियव्वं। बालो खु एसो माया-पिइ-विउत्तो विसण्णो। ता इमिणा दुक्खेण रुण्णं' ति। अण्णेण भणियं 'देव, तुमं पेच्छिऊण णियए जणणि-जणए संभरियं ति इमिणा दुक्खेण रुण्णं' ति। अण्णेण भणियं 'देव, तहा जं आणियं ति, कत्थ राया देवी य कं वा अवत्थंतरमणु-

---

इति भण्यता निजपट्टांशुना प्रमार्जितं तस्य वदनकमलम्। ततः परिजनोपनीत-जलेन च प्रक्षालितानि नयनानि कुमारस्य स्वस्य देव्या मन्त्रिगणानामिति।

भणितं च राज्ञा 'भो भोः सुरगुरुप्रमुखा मन्त्रिणः! भणत, किं कुमारेण ममोत्सङ्गगतेन रुदितम्' इति। तत एकेन भणितम् 'देव! किमत्र ज्ञेयम्! बालः खलु एष मातृपितृवियुक्तो विषण्णः। अतोऽनेन दुःखेन रुदितम्' इति। अन्येन भणितम्–'देव, त्वां विलोक्य निजपितरौ संस्मृतवान् इत्यनेन दुःखेन रुदितम्' इति। अन्येन भणितम् 'देव! तथा यदानीतमिति कथं राजा देवी च किं वा अवस्थान्तर-मनुभवतोऽनेन दुःखेन रुदितम्' इति। राज्ञा भणितम्—'किमत्र विचारेण इममेव

रूपी कमल को अपने वस्त्राञ्चल से प्रमार्जित किया। इसके पश्चात् परिजनों के द्वारा लाए गए जल से कुमार के, अपने, देवी के तथा मंत्रियों के नेत्र धोए गए। राजा ने कहा—हे देवगुरु प्रमुख मन्त्रियो! बतलायें, यह कुमार मेरी गोद में आकर क्यों रोया? इसके बाद एक मंत्री ने कहा—'हे राजन्! इसमें जानने योग्य क्या है? यह बालक माता-पिता के वियोग के कारण दुःखी है। अतः इसी दुःख के कारण रोया है।' दूसरे मन्त्री ने कहा—'हे राजन्! आपको देखकर अपने माता-पिता का स्मरण हो आया जिससे दुःखी होकर रोया है।' दूसरे मन्त्री ने कहा—'हे राजन्! अपरिचित राजा और देवी को देखकर घबड़ा गया है अतः इसी दुःख से रोया है।' राजा ने कहा—इसमें विचार करने की क्या आवश्यकता है, इससे ही पूछते हैं। राजा

भवंति, इमिणा दुक्खेण रुण्णं' ति । 'राइणा भणियं 'किमेत्थ वियारेण; इमं चेव पुच्छामो' । भणिओ य राइणा 'पुत्त महिंदकुमार ! साहह महं कीस एयं तए रुण्णयं' ति । तओ ईसिललिय-महुर-गंभीरक्खरं भणियं कुमारेण 'पेच्छह, विहि-परिणामस्स जं तारिसस्स वि तायस्स हरि-पुरंदर-विक्कमस्स एयस्स एरिसे समए अहं सत्तुयणस्स उच्छंग-गओ सोयणिज्जो जाओ त्ति । ता इमिणा मह मण्णुणा ण मे तीरइ बाह-पसरो रुंभिऊणं' ति । तओ राइणा विम्हयाबद्ध-रस-पसर-खिप्पमाण-हियएण भणियं । 'अहो, बालस्स अहिमाणो, अहो सावट्ठंभत्तणं, अहो वयण-विण्णासो, अहो फुडक्खरालावत्तणं, अहो कज्जाकज्ज-वियारणं ति । सव्वहा विम्हावणीयं एयं, जं इमाए वि अवत्थाए एरिसो बुद्धि-

पृच्छामः' । भणितश्च राज्ञा 'पुत्र महेन्द्रकुमार ! कथय मां, कथमेतत् त्वया रुदितम्' इति । तत ईषल्ललित-मधुर-गम्भीराक्षरं भणितं कुमारेण 'प्रेक्ष्य, विधि-परिणामस्य यत् तादृशस्यापि तातस्य हरिपुरन्दरविक्रमस्य एतस्य एतादृशे समये अहं शत्रुजनस्योत्संगगतः शोचनीयो जात इति । ततोऽनेन महा मन्युना न मया तीर्यते वाष्पप्रसरः रोद्धुम्' इति । ततो राज्ञा विस्मयाबद्धरसप्रसराक्षिप्यमाण-हृदयेन भणितम्—'अहो बालस्य अभिमानः, अहो सावष्टम्भत्वम्, अहो वचन-विन्यासः, अहो स्फुटाक्षरालापत्वम्, अहो कार्याकार्यविचारणमिति । सर्वथा विस्मयनीयमेतम्, यदेतस्याप्यवस्थायामीदृश बुद्धिविस्तारो वचनविन्यासश्च'

ने कहा—'पुत्र महेन्द्रकुमार ! मुझसे कहो तुम क्यों रोये ?' इसके बाद ईषत् सुन्दर, मधुर और गम्भीर वाणी से कुमार ने कहा—'सूर्य और इन्द्र के समान पराक्रमी उस पिताजी का पुत्र होकर भी भाग्य के विपरीत परिणाम के कारण मैं शत्रु की गोद में बैठा हुआ शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ । इसीलिए अत्यधिक क्रोध के आवेग के कारण आँसुओं को न रोक सका' । इसके बाद राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'बालक का अभिमान आश्चर्यजनक है । साहस आश्चर्यजनक है । वाणी का विलास आश्चर्यजनक है । स्पष्ट वाणी में बोलना आश्चर्यजनक है । कार्य और अकार्य का विचार आश्चर्यजनक है । यह

वित्थरो वयण-विण्णासो य' त्ति भणमाणेण राइणा पलोइयाइं मंति-वयणाइं। तओ मंतीहिं भणियं 'देव' ! को एत्थ विम्हओ, जहा गुंजा-हल-फल-प्पमाणो वि जलणो दहण-सहावो, सिद्धत्थ-पमाणो वि वइर-विसेसो गुरुसहावो, तहा एए वि महावंस-कुल-प्पसूया रायउत्ता सत्त-पोरुस-माण-प्पमाण-प्पभूय-गुणेहिं संवड्ढिय-सरीरा एव होंति। अण्णं च देव, ण एए पयइ-पुरिसा, देवत्तण-चुया सावसेस-सुह-कम्मा एत्थ जायंति' त्ति। तओ राइणा भणियं 'एवं चिय एयं, ण एत्थ संदेहो' त्ति।

भणिओ य साणुणयं कुमारो राइणा 'पुत्त महिंदकुमार मा एवं

इति भण्यमाणेण राज्ञा प्रलोकितानि मंत्रिवदनानि। ततो मन्त्रिभिर्भणितम्—'देव ! कोऽत्र विश्मयः ? यथा गुञ्जाफलप्रमाणोऽपि ज्वलनो दहनस्वभावः, सिद्धार्थ-प्रमाणोऽपि वैरविशेषो (रत्नविशेषो) गुरुस्वभावः तथैतेऽपि महावंशकुलप्रसूता राजपुत्राः सत्त्व-पौरुषमानप्रमाणप्रभूतगुणैः संवर्धितशरीरा एव भवन्ति। अन्यच्च देव नैते प्रकृतिपुरुषाः ; देवत्वच्युताः सावशेषशुभकर्माणोऽत्र जायन्ते' इति। ततो राज्ञा भणितम् 'एवमेवैतत् नात्र संदेह' इति।

भणितश्च सानुनयं कुमारो राज्ञा 'पुत्र महेन्द्रकुमार ! मा एवं चिन्तय,

सब सर्वथा आश्चर्यजनक है जो इस अवस्था में होने पर भी इस प्रकार का बुद्धिविलास और वचनप्रयोग है।' इस प्रकार कहते हुए राजा ने मंत्रियों के मुख की ओर देखा। इसके बाद मन्त्रियों ने कहा—'हे राजन् ! इसमें आश्चर्य क्या है ? जैसे गुन्जाफल (अत्यन्त तुच्छ) प्रमाण भी आग दहन-स्वभाव वाली होती है, जैसे सिद्धार्थ प्रमाण भी रत्नविशेष गुरु-स्वभाव वाला होता है उसी प्रकार ये महाकुलोत्पन्न राजपुत्र भी सत्त्व, पौरुष, मान आदि अनेक गुणों के द्वारा संबधित शरीर वाले होते हैं।' और भी 'हे राजन् ! ये सामान्य पुरुष नहीं हैं अपितु अवशिष्ट शुभकर्मों वाले देवता की पर्याय से च्युत हुए ही यहाँ पैदा होते हैं'। तब राजा ने कहा—'यह ऐसा ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है'।

राजा ने विनम्रता के साथ कुमार से कहा—'पुत्र महेन्द्रकुमार ! तुम ऐसा

चिंतेसु जहा अहं तुम्हाणं सत्तू । जं सच्चं आसि ण उण संपयं । जत्तो च्चेय तुमं अम्हाण गेहे समागओ, तओ चेव तुह दंसणे मित्तं सो राया संवुत्तो । तुमं च मम पुत्तो त्ति । ता एवं जाणिऊण मा कुणसु आद्धिइं, मुंचसु पडिवक्ख-बुद्धि, अभिरमसु एत्थ अप्पणो गेहे । अवि य जहा सव्वं सुदरं होहिइ तहा करेमि' त्ति भणिऊण परिहिओ से सयमेव राइणा रयण-कंठओ, दिण्णं च करे करेणं तंबोलं । 'पसाओ' त्ति भणिऊण गहियं, समप्पिओ य देवगुरुणो । भणिओ य मंतिणो 'एस तए एवं उवयरियव्वो जहा ण कुलहरं संभरइ त्ति । सव्वहा तहा कायव्वो जहा मम अउत्तस्स एस पुत्तो हवइ' त्ति । तओ कंचि कालं

यथाऽहं युष्माकं शत्रुः । यत् सत्यमासीत्, न पुनः साम्प्रतम् । यदैव त्वमस्माकं गृहे समागतः तदैव तवदर्शनेन मित्रं सो राजा संवृत्तः । त्वं च मम पुत्र इति । तस्माद् एवं ज्ञात्वा मा कुरु अधृतिं (विषादम्), मुञ्च प्रतिपक्षबुद्धि, अभिरमस्व अत्र आत्मनो गृहे । अपि च यथा सर्वं सुन्दरं भविष्यति तथा करिष्यामि इति भणित्वा परिधापितः स्वयमेव राज्ञा रत्नकण्ठकः, दत्तं च करे कराभ्यां ताम्बूलम् । 'प्रसीद' इति भणित्वा गृहीतम्, समर्पितश्च देवगुरून् । भणितवांश्च मन्त्रिणः 'एष त्वया एवमुपचरितव्यो यथा न कुलगृहं संस्मरेत्' इति । सर्वथा तथा

मत सोचो कि मैं तुम्हारा शत्रु हूँ । जो पहले सत्य था वह अब नहीं है । जब से तुम मेरे घर में आये हो उसी समय से तुम्हारे दर्शन होने के बाद से वह राजा मेरा मित्र हो गया है और तुम मेरे पुत्र हो । अतः ऐसा जानकर विषाद मत करो, शत्रुभाव (प्रतिपक्षबुद्धि) को छोड़ दो । अपने घर के समान यहाँ आनंद से रहो' और भी–'जैसे सब मंगलमय होगा वैसा करूँगा ।' इस प्रकार कहकर राजा ने स्वयं ही उसके गले में रत्नों का हार पहनाया और अपने हाथों से उसे ताम्बूल (पान) दिया । 'प्रसन्न होवें' ऐसा कहकर स्वीकार किया । देवगुरु को समर्पित किया । मन्त्रियों से कहा—'इसके साथ ऐसा व्यवहार करें जिससे यह अपने कुलगृह का स्मरण न करे । सर्वथा वैसा ही करें जिससे पुत्रहीन मेरा यह पुत्र हो जाए ।' इसके बाद कुछ देर रुककर राजा

अच्छिऊण समुट्ठिओ राया आसणाओ, कय-दियह-वावारस्स य अइक्कंतो सो दियहो ।

(८) कल्लाणमित्तो

अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे दीवे अवरविदेहे वासे, उत्तुङ्गधवलपागार-मण्डियं नलिणीवणसंछन्नपरिहासणाहं, सुविभत्ततिय-चउक्क-चच्चरं भवणेहिं जियसुरिन्दभवणसोहं खिइपइट्ठियं नाम नयरं ।

तत्थ य राया संपुण्णमण्डलो मयकलङ्कपरिहीणो ।
जणमणणयणाणन्दो नामेणं पुण्णचन्दो त्ति ।।

कर्तव्यं यथा ममापुत्रस्य एष पुत्रो भवति' इति । ततः किञ्चित्कालं स्थित्वा समुत्थितो राजा आसनात् । कृतदिवसव्यापारस्य च तस्यातिक्रान्तो दिवसः ।

संस्कृत-छाया (कल्याणमित्रम्)

अस्ति इहैव जम्बूद्वीपे, अपरविदेहे वर्षे, उत्तुङ्गधवलप्राकारमण्डितम्, नलिनीवनसंछन्नपरिखासनाथम्, सुविभक्तत्रिक-चतुष्कचत्वरम्, भवनैर्जितसुरेन्द्रभवन-शोभं क्षितिप्रतिष्ठितं नाम नगरम् ।

तत्र च राजा संपूर्णमण्डलो मृग (मद)-कलंकपरिहीणः ।
जनमनो-नयनानन्दो नाम्ना पूर्णचन्द्र इति ।।

सिंहासन से उठ खड़ा हुआ । दैनिक क्रियाओं को करते हुए उसका दिन बीत गया ।

हिन्दी अनुवाद (कल्याणमित्र)

यहीं जम्बूद्वीप में अपरविदेह नामक देश में क्षितिप्रतिष्ठ नाम का नगर था जो उन्नत तथा सफेद परकोटे से मण्डित था, कमलिनियों के वन से आच्छादित खाई (परिखा) से युक्त था, त्रिकों (जहाँ तीन रास्ते मिलते हैं), चतुष्कों (जहाँ चार रास्ते मिलते हैं) और चत्वरों (चौक) से सुविभक्त था तथा इन्द्र के भवनों की शोभा को जीतने वाले भवनों से युक्त था ।

वहाँ पूर्णचन्द्र (पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान) नाम का राजा था जो

अन्तेउरप्पहाणा देवी नामेण कुमुइणी तस्स ।
सइ वड्ढियविसयसुहा इट्ठा य रइ व्व मयणस्स ॥
ताण य सुओ कुमारो गुणसेणो नाम गुणगणाइण्णो ।
बालत्तणओ वंतरसुरो व्व केलिप्पिओ णवरं ॥

तम्मि य नयरे अतीव सयलजणबहुमओ, धम्मसत्थसंघायपाढओ, लोगववहार-नीइ-कुसलो, अप्पारम्भपरिग्गहो जन्नदत्तो नाम पुरोहिओ त्ति । तस्स य सोमदेवागब्भसंभवो आपिङ्गलवट्टलोयणो, ठाणमेत्तोवलक्खियचिविडनासो, बिलमेत्तकण्णसन्नो, विजियदन्तक्खय-

---

अन्तःपुरप्रधाना देवी नाम्ना कुमुदिनी तस्य ।
सदा वर्धितविषयसुखा इष्ट च रतिरिव मदनस्य ॥
तयोश्च सुतः कुमारो गुणसेनो नाम गुणगणाकीर्णः ।
बालत्वतः व्यन्तरसुर इव केलिप्रियो नवरम् ॥

तस्मिश्च नगरे अतीव सकलजनबहुमतः, धर्मशास्त्रसंघातपाठकः, लोकव्यवहार-नीतिकुशलः अल्पारम्भपरिग्रहो यज्ञदत्तो नाम पुरोहित इति । तस्य च सोमदेवागर्भसंभूतः, आपिंगलवृत्तलोचनः, स्थानमात्रोपलक्षितचिपिटनासः, बिलमात्रकर्णसंज्ञः, विजितदन्तच्छदमहादशनः, वक्रसुदीर्घशिरोधरः, विषमपरिह्रस्व-

---

सम्पूर्ण राजमण्डल से व्याप्त था, मदरूपी कलङ्क से रहित था, लोगों के मन और नेत्रों को आनन्दित करने वाला था ।

उसकी कुमुदिनी नाम की रानी थी जो अन्तःपुर में प्रधान (पटरानी) थी, कामदेव की रति के समान प्रिय थी तथा जिससे विषय सुख वृद्धि पाते थे ।

उनका कुमार गुणसेन नाम का पुत्र था जो अनेक गुणों से युक्त था परन्तु बाल्यावस्था से ही वह व्यन्तरदेव के समान केलिप्रिय (परिहास आदि क्रीड़ाओं में विशेष रुचि लेने वाला) था ।

उस नगर में यज्ञदत्त नाम का पुरोहित था जो सभी लोगों से सम्मानित था, अनेक धर्मशास्त्रों को पढ़ने वाला था, लोकव्यवहार और नीति में निपुण था, अल्प-आरम्भ (हिंसादि क्रियायें) एवं अल्प-परिग्रह (धनादि का संग्रह).

महल्लदसणो, वंकसुदीहरसिरोहरो, विसमपरिहस्सबाहुजुयलो, अइमडहवच्छत्थलो, वंकविसमलम्बोयरो, विसमपइट्ठिऊरुजुयलो, परिथूलकढिणहस्सजंघो, विसमवित्थिण्णचलणो, हुतहुयवहसिहाजालपिङ्गकेसो अग्गिसम्मो नाम पुत्तो त्ति ।

तं च कोउहल्लेण कुमारगुणसेणो पहयपडुपडहमुइङ्गवंस-कंसालयप्पहाणेण महया तूरेण नयरजणमज्झे सहत्थतालं हसन्तो नच्चावेइ, रासहम्मि आरोवियं, पहट्ठबहुडिम्भविन्दपरिवारियं, आरोवियमहारायसद्दं बहुसो रायमग्गे सुतुरियतुरियं हिण्डावेइ । एवं च पइदिणं कयन्तेणेव तेण कयत्थिज्जन्तस्स तस्स वेरग्गभावणा जाया ।

बाहुयुगलम्, अतिलघुवक्षस्थलः, वक्रविषमलम्बोदरः; विषमप्रतिष्ठितोरुयुगलः, परिस्थूलकठिनह्रस्वजङ्घः, विषमविस्तीर्णचरणः, हुतवहशिखाजालपिङ्गकेशः, अग्निशर्मा नाम पुत्र इति ।

तं च कुतूहलेन कुमारगुणसेनः प्रहतपटुपटह-मृदङ्ग-वंश-कांस्यक-लयप्रधानेन महता तूर्येण नगरजनमध्ये सहस्ततालं हसन् नर्तयति, रासभे आरोपितम्; प्रहृष्टबहुडिम्भवृन्दपरिवारितम्, आरोपितमहाराजशब्दम्, बहुशो राजमार्गे

वाला था । उसका अग्निशर्मा नामक पुत्र था जो सोमदेवा (यज्ञदत्त की पत्नी) के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, पीलापन लिए हुए गोल आँखों वाला था. स्थानमात्र से जानी जानेवाली चपटी नाक वाला था, विल (छेद) मात्र से कानवाला था, होठों से बाहर निकले हुए बड़े-बड़े दाँतोंवाला था, टेढ़ी और मोटी गर्दन वाला था, असमान और छोटी भुजाओं वाला था, अत्यन्त संकीर्ण वक्षस्थल वाला था, टेढ़ा, विषम (ऊँचा-नीचा) तथा लम्बे पेटवाला था, विषम उरुयुगल वाला था, अत्यन्त स्थूल, कठिन और छोटी जाँघों वाला था, असमान एवं लम्बे पैरों वाला था, आग की लपटों के समान पीले बालों वाला था ।

कुमार गुणसेन कुतूहलवश सुन्दर नगाड़ा, मृदंग, बांसुरी, कांस्यक की लय तथा बड़ी तुरही की ध्वनि के साथ नगरवासियों के मध्य में हाथों से तालियाँ बजाता हुआ और हँसता हुआ उसे (अग्निशर्मा को) नचाता था । गधे पर बैठाये

पवन्नवेरग्गमग्गो निग्गओ नयराओ, पत्तो य तापसजणजणियहियपरिओसं सुपरिओसं नाम तवोवणं ति। इसिणा तओ अइक्कन्तेसु कइवयदिणेसु पसत्थे तिहिकरणमुहुत्तजोग-लग्गे दिन्ना से तावसदिक्खा। महापरिभवजणियवेरग्गाइसयभाविएण याणेण तम्मि चेव दिक्खादिवसे सयलतावसलोयपरियरियगुरुसमक्खं कया महापइन्ना। जहा 'जावज्जीवं मए मासाओ चेव भोत्तव्वं, पारणगदिवसे य पढमपविट्ठेणं पढमगेहाओ चेव लाभे वा अलाभे वा नियत्तियव्वं, न गेहन्तरमभिगन्तव्वं' ति।

सुत्वरितत्वरितं हिण्डयति। एवं प्रतिदिन कृतान्तेनेव तेन कदर्थ्यमानस्य तस्य वैराग्यभावना जाता।

प्रपन्नवैराग्यमार्गो निर्गतो नगरात्, प्राप्तश्च तापसजनजनितहृदयपरितोषं सुपरितोषं नाम तपोवनमिति। ऋषिणा ततोऽतिक्रान्तेषु कतिपयदिनेषु प्रशस्ते तिथि-करणमुहूर्तयोग-लग्ने दत्ता तस्य तापसदीक्षा। महापरिभवजनितवैराग्यातिशयभावितेन चानेन तस्मिन्नेव दीक्षादिवसे सकलतापसलोकपरिचरितगुरुसमक्षं कृता महाप्रतिज्ञा। यथा—यावज्जीवं मया मासाद् एव भोक्तव्यम्, पारणकदिवसे च प्रथमप्रविष्टेन प्रथम-गृहाद् (गेहाद्) एव लाभे वाऽलाभे वा निर्वर्तितव्यम्, न गेहान्तरमभिगन्तव्यमिति।

हुए, बहुत से प्रसन्न बालकों से घिरे हुए तथा महाराज शब्द से सम्बोधित करते हुए अनेक बार राजमार्ग पर जल्दी-जल्दी घुमाया करता था। इस प्रकार प्रतिदिन यमराज के समान उस कुमार के द्वारा पीड़ित किए जाते हुए उसके मन में वैराग्य की भावना उदित हुई।

वैराग्य के मार्ग को प्राप्त हुआ वह नगर से बाहर निकल गया। पश्चात् तपस्वियों के हृदय में परितोष (सन्तुष्टि) उत्पन्न करने वाले सुपरितोष नामक तपोवन को प्राप्त हुआ। इसके बाद कुछ दिनों के बीतने पर ऋषि ने शुभ तिथि, करण, मुहूर्त और लग्न में उसे तपस्वी की दीक्षा दी। घोर तिरस्कार से उत्पन्न अत्यधिक वैराग्य के कारण उस (अग्निशर्मा) ने दीक्षा के ही दिन

इओ य पुण्णचन्दो राया कुमारगुणसेणं कयदारपरिग्गहं रज्जे अभिसिञ्चिऊण सह कुमुइणीए देवीए तवोवणवासी जाओ। सो य कुमारगुणसेणो अन्नया सह वसन्तसेणाए महादेवीए रज्जसोक्खं अणुहवन्तो आगओ वसन्तउरं। एत्थन्तरम्मि गहियनारङ्गकढिणया आगया दुवे तापसकुमारया। दिट्ठो य णेहि राया, अभिनन्दिओ य ससमयपसिद्धाए आसीसाए। अब्भुट्ठाणासणपयाणाइणा उवयारेण बहुमन्निया य राइणा। भणियं च णेहिं महाराय ! सुगिहीयनामधेयेण

इतश्च पूर्णचन्द्रो राजा कुमारगुणसेनं कृतदारपरिग्रहं राज्येऽभिषिच्य सह कुमुदिन्या देव्या तपोवनवासी जातः। स च कुमारगुणसेनो अन्यदा सह वसन्तसेनया महादेव्या राज्यसौख्यमनुभवन् आगतो वसन्तपुरम्। अत्रान्तरे गृहीतनारंगकठिनकौ आगतौ द्वौ तापसकुमारकौ। दृष्टश्च आभ्यां राजा, अभिनन्दितश्च स्वसमयप्रसिद्धया आशिषा। अभ्युत्थानासनप्रदानादिनोपचारेण बहुमानितौ च राज्ञा। भणितं चाभ्याम्—महाराज ! सुविहितनामधेयेन आवां

समस्त तपस्वियों से पूजित गुरु के समक्ष महाप्रतिज्ञा की—'मैं जीवनपर्यन्त मास-मास के पश्चात् भोजन करूँगा तथा पारणे (भोजन लेने) के दिन जिस घर में सबसे पहले प्रवेश करूँगा उस प्रथम घर से [प्रथम बार में] भिक्षा के प्राप्त होने अथवा न होने पर वापिस आ जाऊँगा, पुनः दूसरे घर नहीं जाऊँगा।'

इधर राजा पूर्णचन्द्र कुमार गुणसेन का विवाह करके तथा राज्याभिषेक करके कुमुदिनी देवी के साथ तपोवनवासी हो गया। वह कुमार गुणसेन वसन्तसेना नामक महादेवी के साथ राज्यसुखों का अनुभव करता हुआ एक समय वसन्तपुर आया। इसी बीच नारंगियों की टोकरी लिए हुए दो तापसकुमार आये। उन्होंने राजा को देखा और अपनी प्रसिद्ध परम्परा के अनुसार आशीर्वाद के द्वारा राजा का अभिनन्दन किया। राजा ने भी अभ्युत्थान (उठकर खड़े होना), आसन-प्रदान आदि व्यवहार के द्वारा उनका सत्कार किया। उन्होंने (तापसकुमारों ने) कहा—'महाराज ! हमारे स्वनाम धन्य कुलपति ने चारों

अम्हे कुलवइणा भवओ चउरासमगुरुस्स, सुकयधम्माधम्मववत्थस्स सरीरपउत्तिपरिन्नाणनिमित्तं पेसिया। एवं सोऊण संपयं तुमं पमाणं ति। राइणा भणियं—कहिं सो भयवं! 'कुलवइ' त्ति। तेहिं भणियं—इओ नाइदूरे सुपरिओसनामे तवोवणे त्ति।

तओ य सो राया भत्तिकोउगेहिं गओ तं तवोवणं ति। दिट्ठा य तेण तत्थ बहवे तावसा कुलवइ य। तओ संजायसंवेगेण जहारिहमभिवन्दिया। उवविट्ठो कुलवइसमीवे, ठिओ य तेण सह धम्मकहावावारेण कंचि कालं। तओ भणिओ य णेण सविणयं पणमिऊण भयवं कुलवई। जहा करेहि मे पसायं सयलपरिवारपरिगओ मम

कुलपतिना भवतश्चतुराश्रमगुरोः सुकृतधर्माऽधर्मव्यवस्थस्य शरीरप्रवृत्तिपरिज्ञाननिमित्तं प्रेषितौ। एवं श्रुत्वा साम्प्रतं त्वं प्रमाणमिति। राज्ञा भणितम्—कुत्र स भगवन्! कुलपतिः? इति। ताभ्यां भणितम्—इतो नातिदूरे सुपरितोषनाम्नि तपोवने इति।

ततश्च स राजा भक्ति-कौतुकाभ्यां गतस्तत् तपोवनमिति। दृष्टाश्च तेन तत्र बहवस्तापसाः, कुलपतिश्च। ततः संजातसंवेगेन यथार्हमभिवन्दिताः। उपविष्टः कुलपतिसमीपे, स्थितश्च तेन सह धर्मकथाव्यापारेण कंचित् कालम्। ततो भणितश्चानेन सविनयं प्रणम्य भगवान् कुलपतिः। यथा कुरु मम प्रसादं सकल-

---

आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास) के मान्य, धर्म और अधर्म की समीचीन व्यवस्था करने वाले आपके शरीर व्यापार का कुशल समाचार जानने के लिए हमें भेजा है।' राजा ने कहा—'वे भगवान् कुलपति जी कहाँ हैं'? उन्होंने कहा— 'यहाँ से थोड़ी दूर पर ही सुपरितोष नामक तपवन में हैं।'

इसके पश्चात् वह राजा भक्तिभाव एवं कुतूहलवश उस तपोवन में गया। वहाँ उसने बहुत से तपस्वियों और कुलपति को देखा। इसके बाद उत्पन्न हुए संवेगभाव (धर्म के प्रति आकर्षण) से उसने यथोचित रूप से उनकी वन्दना की। वह कुलपति जी के पास में बैठा और उनके साथ धर्म-सम्बन्धी वार्तालाप करता हुआ कुछ समय तक रुका। पश्चात् कुलपति को विनयपूर्वक प्रणाम

गेहे आहारगहणेणं। कुलवइणा भणियं—वच्छ ! एवं। किंतु एगो अग्गिसम्मो नाम महातावसो, सो य न पइदियहं भुञ्जइ, किंतु मासाओ मासाओ, तत्थ वि य पारणगदिवसे पढमपविट्ठो पढमगेहाओ चेव लाभे वा अलाभे वा नियत्तइ, न गेहन्तरमुवगच्छइ। ता तं महातवस्सि मोत्तूण पडविन्ना ते पत्थणा। राइणा भणियं—भगवं ! अणुगिहीओ म्हि। अह कहिं पुण सो महातावसो ? पेच्छामि णं ताव, करेमि तस्स दरिसणेण अप्पाणं विगयपावं। कुलवइणा भणियं—वच्छ ! एयाए सहयारवीहियाए हेट्ठा झाणवरगओ चिट्ठइ।

परिवारपरिगतो मम गेहे आहारग्रहणेन। कुलपतिना भणितम्—वत्स ! एवम्। किन्तु एकोऽग्निशर्मा नाम महातापसः, स च न प्रतिदिवसं भुङ्क्ते, किन्तु मासाद् मासात्, तत्राऽपि च पारणकदिवसे प्रथमप्रविष्टप्रथमगेहाद् एव लाभे वाऽलाभे वा निवर्तते, न गेहान्तरमुपगच्छति। तस्मात् तं महातपस्विनं मुक्त्वा प्रतिपन्ना तव प्रार्थना। राज्ञा भणितम्—भगवन् ! अनुगृहीतोऽस्मि। अथ कुत्र पुनः स महातापसः ? प्रेक्षे तं तावत्, करोमि तस्य दर्शनेन आत्मानं विगतपापम्। कुलपतिना भणितम्—वत्स ! एतस्यां सहकारवीथिकायां अधस्ताद् ध्यानवरगतस्तिष्ठति।

करके उसने कहा--'समस्त तापस-परिवार के साथ मेरे घर आहार ग्रहण करके मुझे अनुगृहीत कीजिए।' कुलपति ने कहा-'पुत्र ! ऐसा ही हो। किन्तु अग्निशर्मा नामक एक महातपस्वी है जो प्रतिदिन भोजन नहीं करता है, वह महीने महीने के बाद भोजन करता है उसमें भी वह पारणे के दिन प्रथम प्रविष्ट प्रथम घर से भिक्षा की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति होने से वापिस आ जाता है, पुनः दूसरे घर नहीं जाता है। अतएव उस महातपस्वी को छोड़कर आपकी प्रार्थना स्वीकार है।' राजा ने कहा—'भगवन् ! मैं अनुगृहीत हूँ। वे महातपस्वी जी कहाँ हैं ? मैं उन्हें देखूँ और उनका दर्शन करके अपने आपको पाप से रहित करूँ।' कुलपति जी ने कहा—'पुत्र ! इस आम्रवीथिका (आम के वक्षों की पंक्ति) के नीचे ध्यान में तल्लीन हैं।

तओ सो राया ससंभन्तो गओ सहयारवीहियं। दिट्ठो य तेण पउमासणोवविट्ठो, थिरधरियनयणजुयलो, पसन्तविचित्तचित्तवावारो, किंपि तहाविहं, झाणं झायन्तो अग्गिसम्मतावसो त्ति। तओ राइणा हरिसवसपयट्टन्तपुलएण पणमिओ। तेण विय आसीसाए सबहुमाणमेवाहिणन्दिओ, 'सागयं ते' भणिऊण 'उवविसाहि' त्ति संलत्तो। उवविसिऊण सुहासणत्थेण भणियं राइणा-भयवं! किं ते इमस्स महादुक्करस्स तवचरणववसायस्स कारणं? अग्गिसम्मतावसेण भणियं—भो महासत्त! दारिद्ददुक्खं, परपरिहवो, विरूवया, तहा महारायपुत्तो य गुणसेणो नाम कल्लाणमित्तो त्ति।

ततः स राजा ससंभ्रान्तो गतः सहकारवीथिकाम्, दृष्टश्च तेन पद्मासनोपविष्टः स्थिरधृतनयनयुगलः, प्रशान्तविचित्रचित्तव्यापारः, किमपि तथाविधं ध्यानं ध्यायन् अग्निशर्मतापस इति। ततो राज्ञा हर्षवशप्रवर्तमानपुलकेन प्रणतः। तेनाऽपि च आशिषा सबहुमानमेव अभिनन्दितः, 'स्वागतं तव' भणित्वा 'उपविश' इति संलपितः। उपविश्य सुखासनस्थेन भणितं राज्ञा—भगवन्! किं तव अस्य महादुष्करस्य तपश्चरणव्यवसायस्य कारणम्? अग्निशर्मतापसेन भणितम्—भो महासत्त्व! दारिद्र्यदुःखम्, परपरिभवः, विरूपता तथा महाराजपुत्रश्च गुणसेनो नाम कल्याणमित्रम् इति। ततः संजातनिजनामाऽऽशङ्केन

इसके बाद राजा वेगपूर्वक आम्रवीथिका की ओर गया और उसने वहाँ अग्निशर्मा तपस्वी को देखा जो पद्मासन से बैठा था, दोनों नेत्रों को स्थिर किए हुए था, चित्त की विभिन्न वृत्तियों को प्रशान्त किए हुए था तथा किसी ध्यान विशेष में आसक्त था। इसके बाद राजा ने हर्ष से पुलकित होकर उन्हें प्रणाम किया। उसने भी आशीर्वाद के द्वारा राजा का सम्मानपूर्वक अभिनन्दन किया। 'आपका स्वागत है' ऐसा कहकर 'बैठिए' कहा। बैठकर, सुखासन पर बैठे हुए राजा ने कहा—'भगवन्! आपके इस महादुष्कर (अत्यन्त कठिन) तपश्चरण का क्या कारण है?' अग्निशर्मा तपस्वी ने कहा—'हे महानुभाव! दरिद्रता का दुःख, दूसरों से तिरस्कार, कुरूपता तथा महाराजा का पुत्र गुणसेन

तओ संजायनियनामासङ्केण भणियं राइणा--भयवं ! चिट्ठउ ताव दारिद्दुक्खाइयं ववसायकारणं, अह कहं पुण महारायपुत्तो गुणसेणो नाम कल्लाणमित्तो त्ति। अग्गिसम्मतावसेण भणियं—महासत्त ! एवं कल्लाणमित्तो। सुण—

जे होन्ति उत्तमनरा धम्मं सयमेव ते पवज्जन्ति।
मज्झिमपयई संचोइया उ न कयाइ वि जहन्ना ।।
चोएइ य जो धम्मे जीवं विविहेण केणइ नएण।
संसारचारयगयं सो नणु कल्लाणमित्तो त्ति ।।

भणितं राज्ञा—भगवन् ! तिष्ठतु तावद् दारिद्र्यदुःखादिकं व्यवसायकारणम्; अथ कथं पुनर्महाराजपुत्रो गुणसेनो नाम कल्याणमित्रम् इति ? अग्निशर्मतापसेन भणितम्—महासत्त्व ! एवं कल्याणमित्रम्। श्रुणु—

ये भवन्ति उत्तमनरा धर्मं स्वयमेव ते प्रपद्यन्ते।
मध्यमप्रकृतय संचोदितास्तु न कदाचिदपि जघन्याः ।।
चोदयति च यो धर्मे जीवं विविधेन केनचिद् नयेन।
संसारचारकगतं स ननु कल्याणमित्रमिति ।।

नामक कल्याण मित्र (इस तपस्वी जीवन के प्रति कारण) हैं।' इसके अनन्तर अपने नाम की आशंका से युक्त राजा ने कहा—'भगवन् ! दारिद्र्य के दुःख आदि तो इस व्यवसाय के प्रति कारण हों, यह उचित है, परन्तु महाराज का गुणसेन नामक पुत्र कल्याणमित्र कैसे ?' अग्निशर्मा तपस्वी ने कहा---'महाराज ! वह इस प्रकार कल्याणमित्र है, सुनें--

जो उत्तम मनुष्य होते हैं वे स्वयं ही धर्म को प्राप्त करते हैं, मध्यमप्रकृति के मनुष्य दूसरों से प्रेरित होकर [धर्म में प्रवृत्त होते हैं] और अधम मनुष्य किसी भी तरह से [धर्म में प्रवृत्त] नहीं होते हैं।

संसाररूपी कारागार में पड़े हुए जीव को जो विविध प्रकार से अथवा किसी एक नयविशेष के द्वारा धर्म में प्रेरित करता है, वह निश्चय ही कल्याणमित्र है।

⁂

(९) अमंगलियपुरिसकहा[1]

अमंगलमुहो लोगो नेव कोवीह भूयले।
वहाइट्ठेण भूमीसो अमंगलमुहो कओ ॥

एगंमि नयरे एगो अमंगलिओ मुद्धो पुरिसो आसि। सो एरिसो अत्थि जो को वि पभायंसि तस्स मुहं पासेइ, सो भोयणं पि न लहेज्जा। पउरा वि पच्चूसे कया वि तस्स मुहं न पिक्खंति। नरवइणा वि अमंगलियपुरिसस्स वट्टा सुणिआ। परिक्खत्तं नरिंदेण एगया पभायकाले सो आहूओ, तस्स मुहं दिट्ठं। जया राया भोयणत्थमुवविसइ,

संस्कृत-छाया (अमाङ्गलिकपुरुषकथा)

अमंगलमुखो लोको नैव कोऽपीह भूतले।
वधानीतेन भूमीशोऽमंगलमुखः कृतः ॥

एकस्मिन् नगरे एकोऽमाङ्गलिको मुग्धः पुरुष आसीत्। स ईदृश आसीत् यः कोऽपि प्रभाते तस्य मुखमपश्यत् स भोजनमपि न अलप्स्यत। पौरा अपि प्रत्यूषे कदापि तस्य मुखं न प्रेक्षन्ति। नरपतिनाऽपि अमंगलपुरुषस्य वार्ता श्रुता। परीक्षणार्थं नरेन्द्रेण एकदा प्रभातकाले स आहूतः, तस्य मुखं च

हिन्दी अनुवाद (अमाङ्गलिक पुरुष की कथा)

इस संसार में कोई भी अमंगल (अनिष्टकारी) मुख वाला व्यक्ति नहीं है। वधस्थान को ले जाए जाते हुए [अमङ्गल मुख वाले व्यक्ति] ने राजा को अमङ्गलमुख वाला बना दिया।

एक नगर में एक अमाङ्गलिक मूर्ख पुरुष रहता था, वह ऐसा था कि जो कोई भी प्रातःकाल उसका मुख देख लेता था उसे भोजन भी प्राप्त नहीं होता था। पुरवासी भी प्रातःकाल कभी भी उसका मुख नहीं देखते थे। राजा ने भी अमाङ्गलिक पुरुष का समाचार सुना। परीक्षा करने के लिए एक समय राजा ने प्रातःकाल उसे बुलाया और उसका मुख देखा। जब राजा भोजन के

---

1. पाइअविन्नाणकहा, पृष्ठ ४७ से उद्धृत।

कवलं च मुहे पक्खिवइ, तया अहिलंमि नयरे अकम्हा परचक्कभएण हुलबोलो जाओ। तया नरवई वि भोयणं चिच्चा सहसा उत्थाय ससेण्णो नयराओ बहिं निग्गओ। भयकारणमदट्ठूण पुणो पच्छा आगओ नरिंदो चिंतेइ अस्स अमङ्गलिअस्स सरूवं मए पच्चक्खं दिट्ठं, तओ एसो हंतव्वो' एवं चिंतिऊण अमङ्गलियं बोल्लाविऊण वहत्थं चंडालस्स अप्पेइ, जया एसो रूयंतो, सकम्मं निंदंतो चंडालेण सह गच्छंतो अत्थि। तया एगो कारूणिओ बुद्धिनिहाणो बहाइ नेइज्जमाणं तं दट्ठूणं कारणं णच्चा तस्स रक्खणाय कण्णे किं पि कहिऊण उवायं दंसेइ।

दृष्टम्। यदा राजा भोजनार्थमुपविशति, कवलं च मुखे प्रक्षिपति तदा अहिले नगरे अकस्मात् परचक्रभयेन हलबोलो (शब्दः) जातः।

तदा नरपतिरपि भोजनं त्यक्त्वा सहसा उत्थाय सशैन्यो नगराद् बहिः निर्गतः। भयकारणमदृष्ट्वा पुनः पश्चादागतो नरेन्द्रः चिन्तयति—'अस्य अमाङ्गलिकस्य स्वरूपं मया प्रत्यक्षं दृष्टम्, अत एष हन्तव्यः' एवं चिन्तयित्वा अमाङ्गलिकमाहूय वधाय चाण्डालमर्पयति। यदा एष रुदन् स्वकर्मनिन्दन् चाण्डालेन सह गच्छन्नासीत् तदा एकः कारुणिको बुद्धिनिधानो वधाय नीयमानं तं दृष्ट्वा कारणं ज्ञात्वा तस्य रक्षणाय कर्णे किमपि कथयित्वा उपायं दर्शयति।

लिए बैठता है और ग्रास को मुख में ले जाता है तभी 'अहिल' नगर में अचानक शत्रु के भय से कोलाहल हो गया। तब राजा भी भोजन को छोड़कर, अचानक उठकर सेना के साथ नगर से बाहर निकल गया। भय के कारण को न देखकर वापस आया हुआ राजा विचार करता है—'इस अमांगलिक पुरुष के स्वरूप को मैंने प्रत्यक्ष देख लिया, अतएव इसे मार देना चाहिए।' इस प्रकार विचार करके तथा अमांगलिक को बुलाकर वध के लिए चाण्डाल को सौंप देता है। जब वह रोता हुआ एवं अपने कर्मों की निन्दा करता हुआ चाण्डाल के साथ जा रहा था तभी वध के लिए ले जाते हुए उसको देखकर

हरिसंतो जया वहत्थंभे ठविओ तया चंडालो तं पुच्छइ—'जीवणं विणा तव कावि इच्छा सिया, तया मग्गियव्वं'। सो कहेइ—'मज्झ नरिंदमुहदंसणेच्छा अत्थि'। तया सो नरिंदसमीवे माणीओ। नरिंदो तं पुच्छइ—'किमेत्थ आगमणपओयणं?' सो कहेसी—'हे नरिंद! पच्चूसे मम मुहस्स दंसणेण भोयणं न लब्भइ परन्तु तुम्हाणं मुहपेक्खणेण मम वहो भविस्सइ, तया पउरा किं कहिस्संति? मम मुहाओ सिरिमंताणं मुहदंसणं केरिसफलयं संजाअं, नयरा वि पभाए तुम्हाणं मुहं कहं पासिहिरे'। एवं तस्स वयणजुत्तीए संतुट्ठो नरिंदो वहाए संनिसेहिऊण पारितोसिअं च दच्चा तं अमंगलिअं संतोसीअ।

हर्षयुक्तो [सः] यदा वधस्तम्भे स्थापितः तदा चाण्डालः तं पृच्छति-'जीवनं विना तव कापि इच्छा स्यात्तदा याचितव्यम्'। सः कथयति—'मम नरेन्द्रमुखदर्शनेच्छा अस्ति'। तदा स नरेन्द्रसमीपमानीतः। नरेन्द्रः तं पृच्छति—'किमत्र आगमनप्रयोजनम्?' सः कथयति—'हे नरेन्द्र! प्रत्यूषे मम मुखस्य दर्शनेन [त्वया] भोजनं न लभ्यते परन्तु युष्मद्मुखप्रेक्षणेन मम वधो भविष्यति, तदा पौराः किं कथयिष्यन्ति? मम मुखात् श्रीमन्मुखदर्शनं कीदृशफलकं संजातम्। नागरा अपि प्रभाते युष्मन्मुखं कथं प्रेक्षिष्यन्ति। एवं तस्य वचनयुक्त्या संतुष्ठो नरेन्द्रो वधं सन्निषिध्य पारितोषिकं च दत्वा तम् अमाङ्गलिकं समतोषयत्।

तथा कारण को जानकर उसकी रक्षा के लिए कोई दयालु बुद्धिमान् कान में कुछ कहकर उपाय बतलाता है।

हर्ष से युक्त वह जब वधस्थान पर खड़ा किया गया तब चाण्डाल ने उससे पूछा—'जीवन के अलावा यदि तुम्हारी कोई इच्छा हो तो माँगो।' वह कहता है—'राजा का मुख देखने की मेरी इच्छा है।' तब वह राजा के पास लाया गया।

राजा ने उससे पूछा—'यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?' वह कहता है—'हे राजन्! प्रातःकाल मेरा मुख देखने से आपको तो भोजन नहीं मिला परन्तु आपका मुख देखने से मेरा वध किया जायेगा, तब पुरवासी लोग क्या कहेंगे?

उवएसो—

अमंगलमुहस्सेवं रक्खणं धीमया कयं ।
सोच्चा तुम्हे तहा होह मईए कज्जसाहगा ॥

(अर्धमागधी)

(१०) उवएसपया

(क) दशवैकालिक से—

१. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ १.१ ॥

उपदेशः—

अमङ्गलमुखस्येवं रक्षणं धीमता कृतम् ।
श्रुत्वा त्वं तथा भव मत्या कार्यसाधकः ॥

संस्कृतछाया (उपदेशपदानि)

१. धर्मो मंगलमुत्कृष्टमहिंसा–संयमस्तपः ।
देवा अपि तं नमस्यन्ति यस्य धर्मे सदा मनः ॥

श्रीमान् आपके मुख का दर्शन कैसे फलवाला हुआ ? नगरवासी भी प्रातःकाल आपके मुख को कैसे देखेंगे ? इस प्रकार उसकी वचनयुक्ति से संतुष्ट हुए राजा ने उसके वध का निषेध करके तथा पुरस्कार देकर उस अमांगलिक को सन्तुष्ट किया ।

उपदेश—

इस प्रकार बुद्धिमान् के द्वारा अमंगलमुख वाले की रक्षा की गई । इसे सुनकर तुम भी बुद्धि के द्वारा कार्य की सिद्धि करने वाले होओ ।

हिन्दी अनुवाद (उपदेश-पद)

१. धर्म मंगल उत्कृष्ट है जो अहिंसा, संयम और तप रूप है । जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

२. जरा जाव न पीडेइ वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे ॥ ८.३६ ॥
३. दिट्ठं मियं असंदिद्धं पडिपुण्णं वियं जियं।
अयंपिरमणुव्विग्गं भासं निक्षिर अत्तवं ॥ ८.४९ ॥
४. विवत्ती अविणीयस्स संपत्ती विणीयस्स य।
जस्सेयं दुहओ नायं सिक्खं से अभिगच्छइ ॥ ९.२.२२. ॥
५. कोहो पीइं पणासेइ माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ लोभो सव्वविणासणो ॥ ८.३८ ।

---

२. जरा यावन्न पीडयति व्याधिर्यावन्न वर्द्धते।
यावदिन्द्रियाणि न हीयन्ते तावदधर्मं समाचरेत् ॥
३. दृष्टां मितामसंदिग्धां प्रतिपूर्णां व्यक्तां चिताम्।
अजल्पनशीलामनुद्विग्नां भाषां निसृजेदात्मनः ॥
४. विपत्तिरविनीतस्य सम्पत्ति-(सम्प्राप्ति) र्विनीतस्य च।
यस्यैतद द्विधा ज्ञातं शिक्षां सोऽभिगच्छति ॥
५. क्रोधः प्रीतिं प्रणाशयति मानो विनयनाशनः।
माया मैत्र्याणि नाशयति लोभः सर्वविनाशनः ॥

---

२. जब तक बुढ़ापा नहीं सताता है, रोग जब तक नहीं बढ़ते हैं और जब तक इन्द्रियाँ हीन (अशक्त) नहीं होती हैं तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

३. आत्मार्थी के लिए दृष्ट (सत्य), परिमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण, स्पष्ट अनुभूत, वाचलता-रहित और अनुद्वेगकारी वाणी को बोलना चाहिए।

४. 'अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति' जिसने ये दोनों बातें जान ली हैं वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

५. क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का विनाश करता है, माया मित्रता को नष्ट करती है और लोभ सभी सद्गुणों को समाप्त कर देता है।

६. अलोलुए अक्कुहए अमाई अपिसुणे यावि अदीणवित्ती ।
नो भावए नो वि य भावियप्पा अकोउहल्ले य सया स पुज्जो ।।

(ख) उत्तराध्ययन से— ९.३.१० ।।

७. समया सव्वभूएसु सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई जावज्जीवाए दुक्करं ।। १९.२६ ।।

८. आणानिद्देस करे गुरूणमुववायकारए ।
इंगियागारसंपन्ने से विणीए त्ति वुच्चइ ।। १.२ ।।

९. चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं ।। ३.१ ।।

६. अलोलुपः अकुहकः अमायी अपिशुनश्चापि अदीनवृत्तिः ।
नो भावयेत् नापि च भावितात्मा अकौतूहलश्च सदा सः पूज्यः ।।

७. समता सर्वभूतेषु, शत्रुमित्रेषु वा जगति ।
प्राणातिपातविरतिः यावज्जीवं दुष्करा ।।

८. आज्ञानिर्देशकरः, गुरूणामुपपातकारकः ।
इंगिताकारसम्पन्नः, स विनयीत्युच्यते ।।

९. चत्वारि परमांगानि, दुर्लभानीह जन्तोः ।
मनुष्यत्वं श्रुतिः श्रद्धा, संयमे च वीर्यम् ।।

६. जो रसलोलुप नहीं हैं, जादू टोना आदि नहीं करता है, मायावी नहीं है, चुगलखोर नहीं है, दीन भाव से याचना करने वाला नहीं है, दूसरे से अपनी प्रशंसा सुनने की इच्छा नहीं करता है, स्वयं अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करता है, कौतूहल स्वभाव वाला नहीं है, वही पूज्य है ।

७. संसार में सभी प्राणियों के प्रति चाहे वह शत्रु हो या मित्र समभाव रखना तथा जीवन पर्यन्त प्राणियों की हिंसा से विरक्त रहना बहुत कठिन है ।

८. जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, उनके पास रहता है, तथा उनके इंगितकारों (इशारों) को जानता है वही विनीत कहलाता है ।

९. इस संसार में प्राणियों को इन चार श्रेष्ठ अंगों को प्राप्त करना अत्यन्त

१०. वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते इमम्मि लोए अदुवा परत्थ ।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ।।४.५ ।।

११ कुसग्गे जह ओसविंदुए थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं समयं गोयम ! मा पमायए ।। १०२ ।।

१२. दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ।।
३२.८ ।।

---

१०. वित्तेन त्राणं न लभते प्रमत्तः, अस्मिँल्लोकेऽथवा परत्र ।
दीपप्रणष्ट इवानन्तमोहः, नैयायिकं दृष्ट्वा अदृष्ट्वेव ।।

११. कुशाग्रे यथावश्यायबिन्दुः, स्तोकं तिष्ठतिलम्बमानकः ।
एवं मनुजानां जीवितं, समयं गौतम ! मा प्रमादीः ।।

१२ दुःखं हतं यस्य न भवति मोहः, मोहो हतो यस्य न भवति तृष्णा ।
तृष्णा हता यस्य न भवति लोभः, लोभो हतो यस्य न किञ्चन ।

दुर्लभ (क्रमशः दुर्लभतर) है—मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा तथा संयम में पुरुषार्थ ।

१०. प्रमत्त पुरुष धन के द्वारा न तो इस लोक में और न परलोक में अपनी रक्षा कर सकता है । जैसे दीपक के बुझ जाने पर मार्ग देखने पर भी दिखलाई नहीं पड़ता है उसी प्रकार असीम मोह से युक्त मनुष्य को न्यायमार्ग नहीं दिखता है ।

११. जैसे कुशा के अग्रभाग पर ओस की बूंद थोड़ी ही देर तक रहती है वैसे ही मनुष्यों का जीवन भी है । अतः हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद मत करो ।

१२. उसने दुःख को नष्ट कर दिया जिसे मोह नहीं, उसने मोह को विनष्ट कर दिया जिसे तृष्णा नहीं, उसने तृष्णा को नष्ट कर दिया जिसे लोभ नहीं तथा उसने लोभ को नष्ट कर दिया जिसके पास धनादि का संग्रह नहीं ।

१३. जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ ।
दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं ॥ ८.१२ ॥

१४. सुवण्णरूप्पस्स य पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥
९.४८ ॥

१५. अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं य दुप्पट्ठिय-सुप्पट्ठिओ ॥ २०.३७ ॥

---

१३. यथा लाभस्तथा लोभः, लाभाल्लोभः प्रवर्धते ।
द्विमाषकृतं कार्यं, कोट्याऽपि न निष्ठितम् ॥

१४. सुवर्णस्य रूप्यस्य च पर्वता भवेयुः, स्यात्खलु कैलाससमा असंख्यकाः ।
नरस्य लुब्धस्य न तैः किंचित्, इच्छा खलु आकाशसमा अनन्तिका ॥

१५. आत्मा कर्त्ता विकर्ता च, दुःखानां च सुखानां च ।
आत्मा मित्रममित्रञ्च, दुःप्रस्थितः सुप्रस्थितः ॥

---

१३. जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे वैसे लोभ बढ़ता जाता है । दो मासा सुवर्ण की आवश्यकता होने पर भी अधिक मिलने पर करोड़ों सुवर्ण-मुद्राओं से भी आवश्यकता पूर्ण नहीं हुई ।

१४. कैलास के समान सोने और चाँदी के असंख्य पर्वत भी यदि पास में हों तो भी लोभी मनुष्य की तृप्ति के लिये कुछ भी नहीं हैं क्योंकि इच्छा (तृष्णा) आकाश के समान अनन्त है ।

१५. आत्मा ही अपने दुःखों और सुखों का कर्त्ता और विकर्त्ता (भोक्ता) है । अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा मित्र है और खराब मार्ग पर चलने वाला आत्मा शत्रु है ।

१६. सरीरमाहु नावत्ति जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो जं तरंति महेसिणो ।। २३.७३ ।।
१७. जहा पोम्मं जले जायं नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं तं वयं बूम माहणं ।। २५.२७ ।।
१८. न वि मुण्डिएण समणो न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेणं कुसचीरेण ण तावसो ।। २५.३१ ।।
१९. समयाए समणो होइ बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेण मुणी होइ तवेण होइ तावसो ।। २५.३२ ।।

१६. शरीरमाहुर्नौरिति, जीव उच्यते नाविकः ।
संसारोऽर्णव उक्तः, यं तरन्ति महर्षयः ।।
१७. यथा पद्मं जले जातं, नोपलिप्यते वारिणा ।
एवमलिप्तं कामैः, तं वयं ब्रूमो ब्राह्मणम् ।।
१८. नाऽपि मुण्डितेन श्रमणः, न ओंकारेण ब्राह्मणः ।
न मुनिररण्यवासेन, कुशचीरेण न तापसः ।।
१९. समतया श्रमणो भवति, ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः ।
ज्ञानेन च मुनिर्भवति, तपसा भवति तापसः ।।

१६. शरीर को नाव कहा है, जीव को नाविक कहा जाता है तथा संसार को समुद्र कहा गया है जिसे महर्षिजन पार करते हैं ।

१७. जैसे कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता है वैसे ही जो कामभोगों से अलिप्त होता है उसे ही हम ब्राह्मण कहते हैं ।

१८. सिर मुँड़ा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता, ओंकार का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, जंगल में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता और कुशा के वस्त्र धारण करने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता है ।

१९. समता से श्रमण होता है और ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि तथा तप से तपस्वी होता है ।

२०. कम्मुणा बंभणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ।। २५.३३ ।।

(ग) पंचप्रतिक्रमण से—

२१. खामेमि सव्वे जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणवि ।। ४९ ।।

⁂

(११) रोहिणिया सुण्हा[1]

तत्थ णं रायगिहे नयरे धण्णे नामं सत्थवाहे अड्ढे परिवसइ । तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्था, अहीणपंचिंदिय-

---

२०. कर्मणा ब्राह्मणो भवति, कर्मणा भवति क्षत्रियः ।
वैश्यो कर्मणा भवति, शूद्रो भवति कर्मणा ।।

२१. क्षमयामि सर्वान् जीवान्, सर्वे जीवाः क्षमयन्तु माम् ।
मैत्री मे सर्वभूतेषु, वैरं मह्यं न केनापि ।।

संस्कृत-छाया (रोहिणिका पुत्रवधूः)

तत्र खलु राजगृहे नगरे धन्यनामा सार्थवाह आढ्यः परिवसति स्म । तस्य खलु सार्थवाहस्य भद्रानाम्नी भार्या आसीदहीनपञ्चेन्द्रियशरीरा यावत् सुरूपा ।

---

२०. कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है ।

२१. मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ और सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें । सभी जीवों से मेरा मैत्रीभाव है, मेरा किसी के साथ वैरभाव नहीं है ।

हिन्दी अनुवाद (रोहिणिका पुत्रवधू)

वहाँ राजगृह नगर में 'धन्य' नामक धनाढ्य सार्थवाह रहता था । उस सार्थवाह की 'भद्रा' नाम की पत्नी थी जो पाँचों इन्द्रियों तथा शरीर के अवयवों

---

[1] ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र, अध्ययन ७ से संकलित ।

सरीरा जाव सुरूवा। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए भारियाए अत्तया चत्तारि सत्थवाहदारया होत्था। तं जहा—धणपाले धणदेवे, धणगोवे, धणरक्खिए। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चउण्हं पुत्ताणं भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था, तं जहा--उज्झिया भोगवइया रक्खिया रोहिणिया।

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइं पुव्वरत्ताकालसमयंसि इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था 'जं मए गयंसि वा चुयंसि वा मयंसि वा भग्गंसि वा विदेसत्थंसि वा इमस्य कुडुंबस्स किं मन्ने आहारे वा आलंबे वा पडिबंधे वा भविस्सइ?

तस्य खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य पुत्रा भद्राया भार्याया आत्मजाः चत्वारः सार्थवाहदारका आसन्। तद्यथा—धनपालः धनदेवः धनगोपः धनरक्षितश्चेति। तस्य खलु धन्यसार्थवाहस्य चतुर्णां पुत्राणां भार्याश्चतस्रः स्नुषाः (पुत्रवध्वः) बभूवुः। तद्यथा--उज्झिका, भोगवतिका, रक्षिका रोहिणिका च।

ततः खलु तस्य धन्यस्य सार्थवाहस्य अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये एवं रूपः आध्यात्मिको यावत् [संकल्पः] समुदपद्यत 'यत् मयि गते वा [कर्मवशात्] च्युते वा मृते वा भग्ने वा देशान्तरं गत्वा तत्रैव स्थिते वा अस्य कुटुम्बस्य, मन्ये कः आधारो वा आलम्बो वा प्रतिबन्धो भविष्यति ?'

से पूर्ण थी तथा सुन्दर रूपवाली थी। उस धन्य सार्थवाह के अथवा पत्नी भद्रा के चार सार्थवाह पुत्र आत्मज (उदरजात पुत्र) थे। वे इस प्रकार थे—धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। उस धन्य सार्थवाह के चार पुत्रों की चार पत्नियाँ—धन्य सार्थवाह की पुत्रवधुयें थीं। वे इस प्रकार थीं—उज्झिका, भोगवतिका, रक्षिका और रोहिणिका।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को किसी समय मध्यरात्रि के समय इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि मेरे कहीं दूसरी जगह चले जाने पर, कर्मवशात् अपने स्थान से च्युत हो जाने पर, मर जाने पर, देशान्तर में जाकर वहीं रह जाने पर इस कुटुम्ब का आधार अथवा अवलम्ब अथवा प्रतिबन्ध (एकता में बाँधने वाला) कौन होगा ?

तओ पच्छा ण्हाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए चउण्हं य सुण्हाणं कुलघरवग्गेणं सद्धि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव सक्कारेइ सम्माणेइ। सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्तणाइयपमुहाग्गे चउण्हं य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेट्ठा सुण्हा उज्झिइया तं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, गेण्हित्ता अणुपुव्वेणं सारक्खेमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए

ततः पश्चात् स्नातो भोजनमण्डपे सुखासननिषण्णो मित्रज्ञातिप्रभृतीनां चतसृणां स्नुषाणां कुलगृहवर्गेण च सार्द्धं तद्विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं च भोजयित्वा यावत्सत्कारयति [वस्त्रादिभिः], सम्मानयति [मधुरवचनादिभिः]। सत्कारयित्वा सम्मानयित्वा च तस्यैव मित्रज्ञातिप्रमुखाग्रे चतसृणां स्नुषाणां कुलगृहवर्गस्य पुरतः पञ्च शाल्यक्षतान् गृह्णाति, गृहीत्वा ज्येष्ठां स्नुषां उज्झिकां शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्—'हे पुत्रि ! त्वं खलु मम हस्तादिमान् पञ्चशाल्यक्षतान् गृहाण, गृहीत्वा च अनुपूर्व्या (अनुक्रमेण) संरक्षन्ती संगोपायन्ती विहर। हे पुत्रि ! यदा खलु अहं भवद्भ्यः इमान् पञ्चशाल्यक्षतान्

इसके बाद स्नान करके भोजन-मण्डप में सुखासन पर बैठा। पश्चात् मित्र, ज्ञाति आदि तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के साथ उस विपुल अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य पदार्थों का भोजन कराकर [वस्त्रादि के द्वारा] उनका सत्कार किया तथा [मधुर वचनों आदि से] सम्मान किया। सत्कार करके और सम्मान करके उन्हीं मित्र, ज्ञाति आदि के सामने तथा चारों वधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष पाँच चावल के दाने लिये; लेकर बड़ी पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया, बुलाकर कहा—'हे पुत्री ! तुम मेरे हाथ से पाँच चावल के दाने लो, लेकर अनुक्रम से इनका संरक्षण और संगोपन करती हुई रहो। हे पुत्री ! जब मैं तुमसे इन पाँच चावल के दानों को माँगूँ तब तुम ये पाँच चावल के दाने मुझे वापिस

पडिदिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु सुण्हाए हत्थे दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं सा उज्झिया धण्णस्स तह त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडसुणित्ता धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जेत्था—'एवं खलु तायाणं कोट्ठागारंसि बहवे पल्ला सालीणं पडिपुण्णा चिट्ठंति, तं जया णं ममं ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएस्सइ, तया णं अहं पल्लंतराओ अन्ने पंच सालिअक्खए गहाय दाहामि'

याचये तदा खलु त्वं मम इमान् पञ्च शाल्यक्षतान् प्रतिदद्याः' इति कृत्वा [ज्येष्ठायाः] स्नुषाया हस्ते ददाति, दत्वा च प्रतिविसर्जयति ।

ततः खलु सा उज्झिका धन्यस्य एतमर्थं 'तथेति' प्रतिश्रृणोति (स्वीकरोति), प्रतिश्रुत्य धन्यस्य सार्थवाहस्य हस्तात् तान् पञ्चशाल्यक्षतान् गृह्णाति, गृहीत्वा एकान्तमपक्रामति, एकान्तमपक्रमितायाः एवं रूपः आध्यात्मिको यावत् [संकल्पः] समुदपद्यत—'एवं खलु तातस्य (श्वशुरस्य) कोष्ठागारे [शालिभिः] बहवः पल्यकाः प्रतिपूर्णाः तिष्ठन्ति । तस्मात् यदा खलु मम तातः (श्वसुरः) इमान् पञ्चशाल्यक्षतान् याचयिष्यति, तदा खल्वहं पल्लान्तरादन्यान् पञ्चशाल्यक्षतान् गृहीत्वा दास्यामि' इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य (पर्यालोच्य) तान्

लौटाना ।' इस प्रकार कहकर बड़ी पुत्रवधू के हाथ में दाने दिये और देकर विदा किया ।

तदनन्तर उस उज्झिका ने 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर धन्य सार्थवाह के इस अर्थ (आदेश) को स्वीकार किया, स्वीकार करके धन्य सार्थवाह के हाथ से उन पाँच चावल के दानों को ग्रहण किया, ग्रहण करके एकान्त में चली गई, एकान्त में चले जाने पर उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार निश्चय ही पिता जी के कोष्ठागार में चावलों से भरे हुये बहुत से पल्य हैं, अतः जब पिता जी मुझसे ये पाँच चावल माँगेंगे तब मैं दूसरे पल्य से

त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ते पंच सालिअक्खए एगंते एडेइ, एडित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था ।

एवं भोगवईयाए वि, णवरं सा छोल्लेइ, छोल्लित्ता अणुगिलइ, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया। एवं रक्खियाए वि, णवरं गेण्हइ, गेण्हित्ता इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था– एवं खलु ममं ताओ इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ सद्दावेत्ता एवं वयासी--'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ जाव पडिदिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयइ,

पञ्चशाल्यक्षतान् एकान्ते एडति (प्रक्षिपति), प्रक्षिप्य स्वकर्मसंयुक्ता जाता चाप्यभवत् ।

एवं भोगवतिकामपि० ; केवलं सा तुषरहितं करोति, निष्तुषीकृत्य अनुगिलति (भक्षयति), अनुगिल्य (भक्षयित्वा) स्वकर्मसंयुक्ता जाता । एवं रक्षितामपि ; केवलं गृहणाति, गृहीत्वा एवं रूपः आध्यात्मिको यावत् [संकल्पः] समुदपद्यत–'एवं खलु मां तात एतेषां मित्रज्ञातिप्रमुखाणां पुरतः चतसृणां स्नुषाणां कुलगृहवर्गस्य च पुरतः शब्दयित्वा एवमवादीत्— 'त्वं खलु हे पुत्रि ! मम हस्ताभ्यां यावत् प्रतिदद्याः इति कृत्वा मम हस्ते पञ्चशाल्यक्षतान् ददाति, तस्माद्भवितव्यमत्र कारणम्' इनि कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य तान्

दूसरे चावल लेकर दे दूँगी ।' इस प्रकार विचार करके उसने उन पाँच चावलों को एकान्त में डाल दिया और डालकर अपने कार्य-व्यापार में लग गई ।

इसी प्रकार भोगवतिका को भी [बुलाकर पाँच चावल के दाने दिये]; विशेष यह है कि उसने वे दाने छीले और छीलकर खा गई, खाकर अपने काम में लग गई । इसी प्रकार रक्षिका को भी [बुलाकर पाँच चावल के दाने दिये] विशेष यह है कि उसने वे लिये तथा लेने पर यह विचार आया —'मेरे पिता ने मित्र, ज्ञाति आदि तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष बुलाकर यह कहा है कि 'पुत्री ! तुम मेरे हाथ से ये पाँच चावल के दाने लो, यावत् जब मैं माँगूँ तो लौटा देना, यह कहकर मेरे हाथ में पाँच चावल के दाने दिये हैं, तो यहाँ

तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवेइ, पक्खिवित्ता ऊसीसामूले ठावेइ, ठावित्ता तिसंझं पडिजागरमाणी विहरइ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे तहेव चउत्थिं रोहिणीयं सुण्हं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाव 'तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं, त सेयं खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संवड्ढेमाणीए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कुलघरपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! एए पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं

पञ्चशाल्यक्षतान् शुद्धे वस्त्रे बध्नाति, बध्वा रत्नकरण्डिकायां प्रक्षिपति, प्रतिक्षिप्य उच्छीर्षकमूले स्थापयति, स्थापयित्वा त्रिसंध्यं प्रतिजाग्रती विहरति।

ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः तथैव चतुर्थीं रोहिणिकां स्नुषां शब्दयति, शब्दयित्वा यावत् (यथा रक्षिका तथैव रोहिणिकापि चिन्तयति); 'तस्माद्भवितव्यमत्र कारणेन, तद् श्रेयः खलु मम एतान् पञ्चशाल्यक्षतान् संरक्षन्त्याः संगोपायन्त्याः संवर्द्धयन्त्याः' इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते। संप्रेक्ष्य कुलगृहपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्--यूयं खलु हे देवानुप्रियाः ! एतान् पञ्चशाल्यक्षतान गृहणीत, गृहीत्वा प्रथमप्रावृषि महावृष्टिकाये (महावृष्टिरूपेण जलराशि-

कोई कारण होना चाहिये।' उसने इस प्रकार विचार किया और विचार करके वे पाँच चावल के दाने शुद्ध वस्त्र में बाँधे; बाँधकर रत्नों की डिबिया में रख लिये, रखकर सिरहाने के नीचे स्थापित किया, स्थापित करके तीनों सन्ध्या के समय उनकी देखभाल करती हुई रहने लगी।

अनन्तर, धन्य सार्थवाह ने उसी प्रकार चोथी पुत्रवधू रोहिणिका को बुलाया, [रक्षिका के समान रोहिणिका के मन में भी विचार हुआ कि इसमें कोई कारण होना चाहिये] अतएव मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि इन पाँच चावलों का संरक्षण करते हुये, संगोपन करते हुये संवर्द्धन करूँ।' ऐसा विचार करके अपने कुलगृहवर्ग के पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

सुपरिकम्मियं करेह। करित्ता इमे पंच सालिअक्खए बावेह. बावेत्ता दोच्चं पि तच्चं पि उक्खयनिक्खए करेह, करेत्ता वाडिपक्खेवं करेह; करित्ता सारक्खेमाणा संगोवेमाणा अणपुव्वेणं संवड्ढेह। तए णं अणुपुव्वेण चउत्थे वासारत्ते बहवे कुभंसया जाया।

तए णं तस्स धण्णस्स पंचमयंसि संवच्छरंसि परिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु मम इओ अईए पंचमे संवच्छरे चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणट्ठयाए ते पंच सालिअक्खया हत्थे दिन्ना, तं सेयं खलु मम कल्लं जाव जाणामि ताव काए किहं सारक्खिया वा संगोविया वा संवड्ढिया

रूपेऽप्काये भूमौ) निपतिते सति क्षुल्लकं (क्षुद्रकं) केदारं (क्षेत्रम्) सुपरिकर्मितं (वपनयोग्यम्) कुरुत। कृत्वा इमान् पञ्चशाल्यक्षतान् वपत, उप्त्वा द्वितीयमपि तृतीयमपि उत्खातनिहतान् कुरुत। कृत्वा (रोपयित्वा) वाटिकापरिक्षेपं कुरुत; कृत्वा संरक्षन्त संगोपायन्त अनुक्रमेण संवर्धयत। ततः खलु अनुक्रमेण चतुर्थे वर्षारात्रे (चातुर्मास्यकाले) बहूनि कुम्भशतानि जातानि।

ततः खलु तस्य धन्यस्य पञ्चमे संवत्सरे परिणम्यमाने सति पूर्वरात्रापररात्रकालसमये एतद्रूपः आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यत–एवं खलु मया इतः अतीते पञ्चमे संवत्सरे चतसृणां स्नुषाणां परीक्षणार्थाय ते पञ्चशाल्यक्षता हस्ते दत्ता,

---

'हे देवानुप्रियो ! तुम इन पाँच चावलों को ग्रहण करो, ग्रहण करके पहली वर्षा ऋतु में महावृष्टि होने पर एक छोटी सी क्यारी को अच्छी तरह साफ करना, साफ करके इन पाँच दानों को बो देना, बोने के बाद दूसरी और तीसरी बार उत्क्षेप और निक्षेप करना, पश्चात् क्यारी के चारों ओर बाड़ लगाना, बाड़ लगाकर इनकी रक्षा और संगोपना करते हुये अनुक्रम से बढ़ाना। अनन्तर अनुक्रम से चतुर्थ वर्षाकाल में सैकड़ों कुम्भ-प्रमाण चावल (शालि) हो गये।

अनन्तर जब पाँचवाँ वर्ष चल रहा था तब धन्य सार्थवाह को मध्यरात्रि के समय इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ 'मैंने इससे पूर्व के अतीत पाँचवें वर्ष में चारों पुत्रवधुओं को परीक्षा करने के लिए पांच चावल के दाने हाथ में दिए थे तो कल सूर्योदय के होने पर वे पांच चावल के दाने वापिस मांगना मेरे लिए

वा ? जाव त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं जाव सम्माणित्ता, तस्सेव मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाण कुलघरवग्गस्स पुरओ जेट्ठं उज्झियं सद्दावेइ। सद्दावित्ता एवं वयासि—

'एवं खलु अहं पुत्ता ! इओ अईए पंचमंसि संवच्छरंसि इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह सुण्हाण कुलघरवग्गस्सय पुरओ तव हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयामि, जया ण अहं पुत्ता ! एए पंच सालिअक्खए जाएज्जा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिदिज्जाएसि से नूणं पुत्ता ! अट्ठे समट्ठे ?'

तान् श्रेयः खलु मम कल्ये यावज्ज्वलति (सूर्योदये सति) पञ्चशाल्यक्षतान् प्रतियाचितुम्; यावज्जानामि तावत् कया कथं संरक्षिताः संगोपिता वा संवर्द्धिता वा ? यावत् इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते (विचारयति), संप्रेक्ष्य कल्ये यावज्ज्वलति विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यमुपस्कारयति, उपस्कार्य मित्रज्ञातिप्रभृतीन् चतस्रः च स्नुषाः कुलगृहवर्गेण (सार्द्धम्) यावत् सम्मान्य, तस्यैव मित्रज्ञातिप्रभृतेः चतसृणां स्नुषाणां कुलगृहवर्गस्य च पुरतः ज्येष्ठां 'उज्झितां' शब्दयति, शब्दयित्वाएवमवादीत्—

एवं खलु अहं पुत्रि ! इतोऽतीते पञ्चमे संवत्सरे अस्य मित्रादेश्चतसृणां स्नुषाणां कुलगृहवर्गस्य च पुरतस्तव हस्ते पञ्चशाल्यक्षतान् ददामि [कथितवांश्च] यदा खलु अहं पुत्रि ! एतान् पञ्चशाल्यक्षतान् याचेयं तदा खलु त्वं मह्यमिमान् पञ्चशाल्यक्षतान् प्रतिदद्याः' इति स नूनं पुत्रि ! अर्थः समर्थः ?

उचित होगा। जानूं तो सही कि किसने किस प्रकार उनका संरक्षण, संगोपन और संवर्धन किया है। इस प्रकार विचार किया, विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाया, बनवाकर मित्र, ज्ञाति आदि को तथा चारों कुलवधुओं के कुलगृहवर्ग को सम्मानित करके उन्हीं मित्र आदि के समक्ष तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष बड़ी पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा——

'हे पुत्री ! इससे अतीत पाँचवें वर्ष में इन्हीं मित्रों आदि तथा चारों पुत्र-

"हंता, अत्थि ।'

'तए णं पुत्ता ! मम ते सालिअक्खए पडिनिज्जाएहि ।'

तए णं सा उज्झिया एयमट्ठं धण्णस्स पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव कोट्ठागारं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पल्लाओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'एए णं ते पंच सालिअक्खए' त्ति कट्टु धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थंसि ते पंच सालिअक्खए दलयइ ।

[उज्झिता प्राह] हन्त ! अस्ति (एतत्सत्यमस्ति) ।

[धन्यः प्राह] तत् (तस्मात्) खलु त्वं हे पुत्रि ! मह्यं तान् शाल्यक्षतान् प्रतिनिर्यातय ।

ततः खलु सा उज्झिका एतमर्थं धन्यस्य प्रतिश्रृणोति (स्वीकरोति), प्रतिश्रुत्य यत्रैव कोष्ठागारं तत्रैवोपागच्छति, उपगत्य पल्लात् पञ्चशाल्यक्षतान् गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपागच्छति । उपागत्य धन्यं सार्थवाहमेवमादीत्—'एते खलु ते पञ्चशाल्यक्षताः' इति कृत्वा धन्यस्य सार्थवाहस्य हस्ते तान् पञ्चशाल्यक्षतान् ददाति ।

वधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष मैंने तुम्हारे हाथ में पाच चावल के दाने दिए थे और यह कहा था कि हे पुत्री ! जब मैं ये पाँच चावल मागूँ, तब तुम मेरे ये पाँच चावल के दाने मुझे वापिस लौटाना । तो यह अर्थ समर्थ है—सत्य है ।

उज्झिका ने कहा—'हाँ ! यह सत्य है ।'

[धन्य ने कहा]—तब हे पुत्री ! मेरे वे चावल के दाने वापिस लौटाओ ।

तत्पश्चात्, उज्झिका ने धन्य की यह बात स्वीकार की, स्वीकार करके जहाँ कोष्ठागार था वहाँ पहुँची. वहाँ पहुँचकर पल्य में से पाँच चावल के दाने ग्रहण किए और ग्रहण करके जहाँ धन्य सार्थवाह था वहीं पहुँची । वहाँ पहुँचकर धन्य सार्थवाह से बोली—'ये हैं आपके पाँच चावल के दाने' इस प्रकार कहकर धन्य सार्थवाह के हाथ में पाँच चावल के दाने दे दिए ।

तए णे धण्णं सत्थवाहे उज्झियं सवहसावियं करेइ, करित्ता एवं वयासी– 'किं णं पुत्ता ! एए चेव पंच सालिअक्खए उदाहु अन्ने ?

तए णं उज्झिया धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी–तए णं मम इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था।—एवं खलु तायाणं कोट्ठागारंसि० सकम्मसंजुत्ता । तं णो खलु ताओ ! ते चेव पच सालिअक्खए, एए णं अन्ने ।

तए णं से धण्णे उज्झियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरत्ते जाव मिसिमिसेमाणे उज्झइयं तस्स मित्तनाइ० चउण्ह सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स झारुज्झियं

ततः खलु धन्यः सार्थवाहः उज्झितां शपथशापितां करोति, कृत्वा एवमवदत्—किं खलु पुत्रि ! एते एव पञ्च शाल्यक्षताः, उदन्ये ?

ततः खलु उज्झिता धन्यसार्थवाहमेवमवदत्—'तात ! तदा खलु मम [मनसि] एतद्रूपः आध्यात्मिको [विचारः] यावत् समुदपद्यत—एवं खलु तातानां (तातस्य श्वशुरस्य) कोष्ठागारे० स्वकर्मसंयुक्ता । तस्मात् नो खलु तात ! त एव पञ्च शाल्यक्षताः, एते खल्वन्ये ।

ततः खलु सो धन्यः उज्झिताया अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा, निशम्य आशुरुप्तः (शीघ्रकोपान्वितः) यावत् मिसमिसन् ' क्रोधाग्निना जाज्वल्यमानः) उज्झितां तस्य मित्रज्ञातिप्रभृतेः० चतसृणां स्नुषाणां कुलगृहवर्गस्य च पुरतः तां तस्य

तदनन्तर धन्य सार्थवाह ने उज्झिका को सौगन्ध दिलाई, सौगन्ध दिलाकर इस प्रकार कहा—पुत्री ! क्या ये वही पाँच चावल के दाने हैं अथवा दूसरे हैं ?

तदनन्तर उज्झिका ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'हे पिता जी ! उस समय मेरे मन में इस प्रकार का विचार हुआ कि पिता जी के कोष्ठागार में बहुत चावल हैं जब माँगेंगे तब दे दूंगी, ऐसा विचारकर मैंने वह दाने फेंक दिए और अपने कार्य में लग गई। अतएव हे पिता जी ! ये वही चावल के दाने नहीं हैं अपितु दूसरे हैं।

अनन्तर उज्झिका से यह अर्थ सुनकर क्रुद्ध हुआ तथा क्रोधित होकर मिसमिसाते हुए उसने उज्झिका को उन मित्रों, ज्ञातिजनों आदि के तथा चारों

च छाणुज्झियं च कयवरुज्झियं च समुच्छियं च सम्मज्जिअं च पाउवदाइं च ण्हाणावदाइं च बाहिरपेसणकारिं ठवेइ।

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पव्वइए पंच य से महव्वयाइं उज्झियाइं भवंति. से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टइस्सइ, जहा सा उज्झिया।

एवं भोगवइया वि। नवरं तस्स कुलघरस्स कंडंतियं कुट्टंतियं

(स्वस्य) कुलगृहस्य क्षारोज्झिकां (भस्मप्रक्षेपिकां), छगणोज्झकां (गोमयप्रक्षेपिकाम्), कचवरोज्झिकां (गृहकचवरप्रक्षेपिकाम्), समुक्षिकां (गृहाङ्गणे जलसेचनिकाम्), संमार्जिकां, पादोदकदायिकां स्नानोदकदायिकां वाह्यप्रेषणकारिकां च स्थापयति (तादृशकार्यकारिणीत्वेन नियोजयतीत्यर्थ.)।

[श्रीवर्धमानस्वामी प्राह]—एवमेव हे श्रमणाः ! आयुष्मन्तः ! योऽस्माकं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा यावत् प्रव्रजितः सन् विहरति [यदि] पञ्च च तस्य महाव्रतानि उज्झितानि भवन्ति [तर्हि] स खलु इह भवे एव बहूनां श्रमणानां बह्वीनां श्रमणीनां बहूनां श्रावकानां बह्वीनां श्राविकानां च हालनीयः (निन्दनीयः) यावत् [संसारकान्तारम्] अनुपर्यटिष्यति, यथा सा उज्झिका।

एवं भोगवतिकाऽपि (शाल्यक्षतभक्षिका द्वितीया पुत्रवधूरपि); केवलं

पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष अपने कुलगृह की राख फैंकने वाली, गोबर फैंकने वाली, कचड़ा साफ करने वाली, पैर धोने का पानी देने वाली, स्नान के लिए पानी देने वाली तथा बाहर दासी के कार्य में नियुक्त किया।

[श्री वर्धमान स्वामी ने कहा]—इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु या साध्वी प्रव्रज्या लेकर पाँच (चावल के दानों के समान पाँच) महाव्रतों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) का परित्याग कर देता है वह उज्झिका के समान इसी जन्म में बहुत से श्रमणों (साधुओं), बहुत सी श्रमणियों (साध्वियों), बहुत से श्रावकों (गृहस्थों) और बहुत सी श्राविकाओं (गृहस्थनियों) का तिरस्कार का पात्र बनता है और संसार में भटकता है।

इसी तरह भोगवतिका के विषय में समझना चाहिए। विशेषता यह है कि

पीसंतियं च एवं रंधंतियं च परिवेसंतियं च परिभायंतिगं च अब्भंतरियं च पेसणकारिं महाणसिणि ठवेइ। एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं समणो वा समणी वा पंच य से महव्वयाइं फोडियाइं भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं, जाव हीलणिज्जे, जहा व सा भोगवइया।

एवं रक्खिया वि। नवरं जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मंजूसं विहाडेइ, विहाडित्ता रयणकरंडगाओ ते पंच सालि-

---

(विशेषस्त्वयम्) [तां भोगवतिकाम्] तस्य कुलगृहस्य यावत् कण्डन्तिकां (उदूखलादौ तण्डुलादीनां तुषापसारणार्थं मुसलादिनाऽवघातिनीम्), कुट्टयन्तिकां, पेषयन्तिकां, रुन्धयन्तिकां, रन्धयन्तिकां, परिवेषणकारिकां, परिभाजयन्तिकां (पर्वदिनादौ स्वजनगृहेषु खण्डखाद्यादीनां संविभागकारिकाम्) आभ्यन्तरिकां च प्रेषणकारिकां महानसिकां स्थापयति। [श्रीवर्धमानस्वामी प्राह]—एवमेव हे श्रमणाः ! आयुष्मन्तः ! योऽस्माकं श्रमणो वा श्रमणी वा [यदि] पञ्च च तस्य महाव्रतानि स्फोटितानि भवन्ति [तर्हि] स खलु इह भवे चैव बहूनां श्रमणानां० यथा सा भोगवतिका।

एव रक्षिताऽपि (तृतीयपुत्रवधूरपि), केवलं यत्रैव वासगृहं तत्रैवोपा-

---

उसे खांडने वाली, पीसने वाली, जांते में दलकर धान्य के छिलके उतारने वाली, रांधने वाली, परोसने वाली, पर्वों के प्रसङ्ग में स्वजनों के घर जाकर त्योहारी बाँटने वाली, भीतर का कार्य करने वाली तथा रसोईदारिन का कार्य करने वाली के रूप में नियुक्त किया। [श्री वर्धमानस्वामी ने कहा]—इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु अथवा साध्वी पांच महाव्रतों को फोड़ने वाला (इन्द्रियों के वशीभूत होकर नष्ट करने वाला) होता है। वह इसी जन्म में भोगवतिका के समान श्रमणादियों के द्वारा तिरस्कार का पात्र होता है।

इसी प्रकार रक्षिका के विषय में जानना चाहिए। विशेषता यह है कि

अक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच सालिअक्खए धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयइ। तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियं एवं वयासी—किं णं पुत्ता ! ते चेव एए पंच सालिअक्खए, उदाहु अण्णे ?' त्ति। तए णं रक्खिया धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'ते चेव ताया ! एए पंच सालिअक्खया, णो अन्ने।' 'कह णं पुत्ता ?'

'एवं खलु ताओ ! तुब्भे इओ पंचमम्मि संवच्छरे जाव भवियव्वं

गच्छति, उपागत्य मञ्जूषां विघटयति (उद्घाटयति), विघटय्य रत्नकरण्डकात् तान् पञ्चशाल्यक्षतान् गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पञ्चशाल्यक्षतान् धन्यस्य सार्थवाहस्य हस्ते ददाति। ततः खलु स धन्यः सार्थवाहो रक्षितामेवमवदत्—किं खलु पुत्रि। त एवैते पञ्चशाल्यक्षता उदाहु (अथवा) अन्ये इति। ततः खलु रक्षिता धन्यं सार्थवाहमेवमवदत्—'त एव तात ! एते पञ्चशाल्यक्षताः, नो अन्ये।' [धन्य आह]—'कथं खलु पुत्रि ?'

[रक्षिता प्राह]—एवं खलु तात ! यूयमितः पञ्चमे संवत्सरे यावत् भवितव्यमत्र [केनापि] कारणेन इति कृत्वा तान् पञ्चशाल्यक्षतान् शुद्धे वस्त्रे [बद्ध्वा रत्नकरण्डके निक्षिप्य उच्छीर्षकमूले स्थापयित्वा] त्रिसन्ध्यं

वह वहाँ गई जहाँ उसका निवास गृह था, वहाँ जाकर मञ्जूषा खोली, खोलकर रत्न की डिबिया में से वे पाँच चावल के दाने लिए, लेकर जहाँ धन्य सार्थवाह था वहाँ गई, आकर धन्य सार्थवाह के हाथ में वे पाँच चावल के दाने दे दिए। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने रक्षिका से इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! क्या ये वही पाँच चावल के दाने हैं अथवा दूसरे हैं ? तब रक्षिका ने धन्य सार्थवाह से कहा—'हे पिता जी ! ये वही पाँच चावल के दाने हैं, दूसरे नहीं हैं।' धन्य के पूछा—'पुत्री ! कैसे ?

रक्षिका ने कहा—'हे पिता जी ! आपने इससे अतीत पाँचवें वर्ष में पाँच चावल के दाने दिए थे तो मैंने विचार किया कि इसमें कोई कारण होना चाहिए, ऐसा विचार करके इन पाँच दानों को शुद्ध वस्त्र में

एत्थ कारणेणं ति कट्टु ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे जाव तिसंझं पडिजागरमाणी यावि विहरामि। तओ एएणं कारणेणं ताओ ! ते चेव ते पंच सालिअक्खए, णो अन्ने। तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ० तस्स कुलघरस्स हिरन्नस्स य कंसदूसविपुलधण जाव सावतेज्जस्स य भंडागारिणिं ठवेइ। एवामेव समणाउसो ! जाव पंच य से महव्वयाइं रक्खियाइं भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे, जहा से रक्खिया।

रोहिणिया वि एवं चेव। नवरं–'तुब्भे ताओ ! मम सुबहुयं सगडी-

प्रतिजाग्रती विहरामि यावत् (अद्यावधि)। तदेतेन कारणेन हे तात ! त एवैते पञ्चशाल्यक्षताः, नो अन्ये ! ततः खलु स धन्यः सार्थवाहो रक्षितायाः अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा हृष्टतुष्टः ० तस्य कुलगृहस्य हिरण्यस्य च कांस्यदूष्यविपुलधनं यावत् स्वापतेयस्य (हिरण्यादियावन्मात्रधनस्य) भण्डागाराधिष्ठात्रीं स्थापयति। [श्रीवर्धमानस्वामी प्राह]–एवमेव हे श्रमणाः ! आयुष्मन्तः ! यदि पञ्च च तस्य महाव्रतानि रक्षितानि भवन्ति स खलु इहभवे चैव बहूनां श्रमणानां ० अर्चनीयः, यथा सा रक्षिता।

रोहिणिकाऽप्येवमेव; केवलं [रोहिणिका – चतुर्थपुत्रवधूः श्रेष्ठिनं प्रत्याह] हे तात ! यूयं मह्यं सबहुकं शकटीशाकटं दत्त, येन (शकट्यादिना) अहं

बाँधा तथा तीनों सन्ध्याओं में इनकी देखभाल करती रही, अतएव हे पिता जी ! ये वही दाने हैं, दूसरे नहीं हैं। अनन्तर धन्य सार्थवाह रक्षिका से यह अर्थ सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट हुआ। उसे अपने कुलगृह के हिरण्य (सोना); कांसा, रेशमी वस्त्र (दूष्य) आदि विपुल धन की रक्षा करने वाली भाण्डागारिणी के रूप में नियुक्त किया। [श्रीवर्धमान स्वामी ने कहा]—इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो इन पाँच महाव्रतों की रक्षा करता है वह इसी जन्म में बहुत से श्रमणादिकों के द्वारा पूज्य हो जाता है; जैसे वह रक्षिका।

रोहिणिका के भी विषय में ऐसा जानना चाहिए। विशेषता यह है कि

सागडं दलाहि, जेण अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएमि'। तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणिं एवं वयासी—'कहं णं तुमं मम पुत्ता ! ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाइस्ससि ?'

तए णं सा रोहिणी धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'एवं खलु ताओ ! इओ तुब्भे पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त० जाव बहवे कुंभसया जाया, तणेव कमेणं। एव खलु ताओ ! तुब्भे ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाएमि।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणीयाए सुबहुयं सगडसागडं दलयइ,

युष्माकं तान् पञ्च शाल्यक्षतान् प्रतिनिर्यातयामि। ततः खलु स धन्यः सार्थवाहो रोहिणीमेवमवदत्—'कथं खलु हे पुत्रि ! त्वं मम तान् पञ्चशाल्यक्षतान् शकटीशाकटेभ्यः प्रतिनिर्यातयिष्यसि ?

ततः खलु सा रोहिणी धन्यं सार्थवाहमेवमवदत्—'एवं खलु हे तात ! यूयम् इतः पञ्चमे संवत्सरे अस्य मित्रज्ञातिप्रभृतेः ० यावत् बहूनि कुम्भशतानि जातानि तेनैव क्रमेण। एवं खलु हे तात ! युष्माकं तान् पञ्चशाल्यक्षतान् शकटीशाकटेभ्यः प्रतिनिर्यातयामि।

ततः खलु स धन्यः सार्थवाहो रोहिणिकायै सबहुकं शकटीशाकटं ददाति। ततः खलु सा रोहिणी सुबहुकं शकटीशाकटं गृहीत्वा यत्रैव स्वकं कुलगृहं तत्रैवो-

पिता जी के द्वारा चावल के दाने माँगने पर रोहिणिका ने कहा—हे पिता ‘जी ! आप मुझे बहुत सी छोटी एवं बड़ी गाड़ियाँ देवें जिनसे मैं आपको वे पाँच चावल के दाने लौटाऊँ।' तब धन्य सार्थवाह ने रोहिणिका से इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! तुम मुझे वे पाँच चावल के दाने कैसे गाड़ियों में भरकर दोगी ?'

तब उस रोहिणिका ने धन्य सार्थवाह से कहा—'हे पिता जी ! आपने जो अतीत पाँच वर्ष पूर्व मुझे पाँच चावल के दाने मित्र, ज्ञाति आदि के समक्ष दिये थे वे अब पूर्वोक्त क्रम से सैकड़ों घड़े प्रमाण हो गये हैं। अतएव हे पिता जी ! मैं आपको वे पाँच दाने गाड़ियों में भरकर लौटाती हूँ।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने रोहिणिका को बहुत सी गाड़ियाँ दीं। अनन्तर

तए णं रोहिणी सुबहुं सगडसागडं गहाय जेणेव सए कुलघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोट्ठागारे विहाडेइ, विहाडित्ता पल्ले उब्भिदइ, उब्भिदित्ता सागडीसागडं भरेइ, भरित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ।

तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव बहुजणो अन्नमन्नं एवमाइक्खइ—'धन्ने णं देवाणुप्पिया! धण्णे सत्थवाहे, जस्स णं रोहिणिया सुण्हा, जीए णं पंच सालिअक्खए सगडसागडिएणं निज्जाइए।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाइए पासइ, पासित्ता हट्ट तुट्ठपडिच्छइ, पडिच्छित्ता, तस्सेव

पागच्छति, उपागत्य कोष्ठागाराणि विघटयति, विघटय्य पल्लान् (शालिकोष्ठान्) उद्भिनत्ति, उद्भिद्य शकटीशाकटेषु भरति, भृत्वा राजगृहं नगरं मध्य-मध्येन यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपागच्छति।

ततः खलु राजगृहे नगरे शृङ्गाटकं यावत् (महापथपथेषु) बहुजनोऽन्योऽन्यमेवमाचष्टे—'धन्यः खलु हे देवानुप्रियाः! धन्यः सार्थवाहो यस्य खलु रोहिणिका स्नुषा, यया खलु पञ्चशाल्यक्षताः शकटीशाकटेभ्य निर्यातिताः।

ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चशाल्यक्षतान् शकटीशाकटेभ्यो निर्यातितान् पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टः तुष्टः प्रतीच्छति, प्रतीष्य (स्वीकृत्य) तस्यैव मित्रज्ञाति-

रोहिणिका उन गाड़ियों को लेकर जहाँ अपना कुलगृह (पितृगृह) था वहाँ गई। आकर कोठार खोले, कोठार खोलकर पल्य (प्रकोष्ठ) खोले, पल्य खोलकर गाड़ियाँ भरीं, भरकर राजगृह नगर के मध्य भाग में से होकर जह अपना घर (ससुराल) था और जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ पहुँची।

तब राजगृह नगर में महापथों (शृङ्गाटकों) में बहुत से लोग आपस में इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रियो! धन्य सार्थवाह धन्य है जिसकी रोहिणिका पुत्रवधू है जिसने पाँच चावल के दाने गाड़ियों में भरकर लौटाये।

अनन्तर धन्य सार्थवाह उन पाँच चावल के दानों को गाड़ियों (छकड़ा-

मित्तनाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ रोहिणियं सुण्हं तस्स कुलघरवग्गस्स बहुसु कज्जेसु य जाव रहस्सेसु य आपुच्छणिज्जं जाव सव्वकज्जवड्ढावियं प्रमाणभूयं ठावेइ।

एवामेव समणाउसो ! जाव पंच य से महाव्वया संवड्ढिया भवंति से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं० अच्चणिज्जे जाव वीईवइस्सइ जहा व सा रोहिणिया।

प्रभृतेः, चतसृणां च स्नुषाणां कुलगृहवर्गस्य पुरतो रोहिणिकां स्नुषां तस्य कुलगृहवर्गस्य बहुषु कार्येषु यावद्रहस्येषु च आप्रच्छनीयां यावत् सर्वकार्यवर्द्धिकां प्रमाणभूतां स्थापयति।

[श्रीवर्धमानस्वामी प्राह] एवमेव हे श्रमणाः ! आयुष्मन्तः ! यदि पञ्च च तस्य महाव्रतानि संवर्द्धितानि भवन्ति स खलु इह भवे एव बहूनां श्रमणानां ० अर्चनीयः यावत् [संसारकान्तारम्] व्यतिव्रजिष्यति (पारयिष्यति) यथा च सा रोहिणिका।

छकड़ियों) द्वारा लौटाते हुए देखता है, देखकर हर्षित एवं सन्तुष्ट होता हुआ उन्हें स्वीकार करता है। स्वीकार करके उसने उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने रोहिणिका पुत्रवधू को उस कुलगृहवर्ग के अनेक कार्यों में यावत् रहस्यों में पूछने योग्य, यावत् गृहकार्य का संचालन करने वाली और प्रमाणभूत के रूप में नियुक्त किया।

[श्री वर्धमान स्वामी ने कहा] इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो अपने पाँच महाव्रतों को बढ़ाते हैं वे इसी जन्म में बहुत से श्रमणों आदि के द्वारा पूजनीय होकर यावत् संसार से मुक्त हो जाते हैं, जैसे वह रोहिणिका।

(मागधी प्राकृत)

(१२) शुकिद-दुक्किदश्श पलिणामे[1]

शकारः—अधम्मभीलू एशे बुड्ढकोले। भोदु, थावलअं चेड अणुणेमि । पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! शोवण्णखडआइं दइश्शं ।

चेटः—अहं पि पलिइश्शं ।

शकारः—शोवण्णं दे पीढके कालइश्शं ।

चेटः—अहं उवविशश्शं ।

शकारः—शव्वं दे उच्छिट्टं दइश्शं ।

संस्कृत-छाया (सुकृत-दुष्कृतयोः परिणामः)

शकारः—अधर्मभीरुरेष वृद्धकोलः । भवतु, स्थावरक चेटमनुनयामि । पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! सुवर्णकटकानि दास्यामि ।

चेटः—अहमपि परिधास्यामि ।

शकारः—सौवर्णं ते पीठकं कारयिष्यामि ।

चेटः—अहमपि उपवेक्ष्यामि ।

शकारः—सर्वं ते उच्छिष्टं दास्यामि ।

हिन्दी अनुवाद (पुण्य और पाप का परिणाम)

शकार—यह वृद्ध शूकर (विट) अधर्मभीरु है। अच्छा, [इस कार्य के लिए] स्थावरक चेट को मनाता हूँ। पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! तुम्हें सोने का कङ्कण दूँगा ।

चेट—मैं भी पहनूँगा ।

शकार—तुम्हें सोने का आसन बनवा दूँगा ।

चेट—मैं भी उस पर बैठूँगा ।

शकार—मैं तुम्हें सब बचा हुआ (उच्छिष्ट) भोजन दे दूँगा ।

---

[1] महाकवि शूद्रकप्रणीत मृच्छकटिक, अङ्क ८, पृ० ४१२-४१६ से उद्धृत ।

चेटः--अहं पि खाइश्शं।
शकारः—शव्वचेडाणं महत्तलकं कलइश्शं।
चेटः--भट्टके हुविश्शं।
शकारः—ता मण्णेहि मम वअणं।
चेटः—भट्टके ! शव्वं कलेमि, वज्जिअ अकज्जं।
शकारः--अकज्जाह गन्धे वि णत्थि।
चेटः--भणादु भट्टके।
शकारः--एणं वशन्तशेणिअं मालेहि।

चेटः—अहमपि खादिष्यामि।
शकारः—सर्वचेटानां महत्तरकं करिष्यामि।
चेटः—भट्टक ! भविष्यामि।
शकारः--तन्मन्यस्व मम वचनम्।
चेटः –भट्टक ! सर्वं करोमि वर्जयित्वा अकार्यम्।
शकारः—अकार्यस्य गन्धोऽपि नास्ति।
चेटः--भणतु भट्टकः।
शकारः—एनां वसन्तसेनां मारय।

चेट—मैं भी खाऊँगा।
शकार--सभी चेटों में प्रधान बना दूँगा।
चेट—स्वामी ! बन जाऊँगा।
शकार—तब मेरी बात मानो।
चेट—स्वामिन् ! दुष्कार्य को छोड़कर सब कुछ करूँगा।
शकार—दुष्कार्य की तो गन्ध भी नहीं है।
चेट—कहिए, प्रभो !
शकार--इस वसन्तसेना को मारो।

चेटः--पशीददु भट्टके ! इअं मए अणज्जेन अज्जा पवहण पलिवत्तणेण आणीदा ।

शकारः--अले चेडा ! तवावि ण पहवामि ।

चेटः--पहवदि भट्टके शलीलाह, ण चालित्ताह । ता पशीददु पशीददु भट्टके । भाआमि क्खु अहं ।

शकारः--तुमं मम चेडे भविअ कश्श भाअशि ?

चेटः--भट्टके पललोअश्श ।

शकारः--के शे पललोए ?

चेटः--भट्टके ! शुकिद-दुक्किदश्श पलिणामे ।

चेटः--प्रसीदतु भट्टकः, इयं मया अनार्येण आर्या प्रवहणपरिवर्तनेनानीता ।

शकारः--अरे चेट ! तवापि न प्रभवामि ?

चेटः--प्रभवति भट्टकः शरीरस्य; न चारित्रस्य । तत् प्रसीदतु प्रसीदतु भट्टकः, बिभेमि खलु अहम् ।

शकारः--त्वं मम चेटो भूत्वा कस्मात् विभेषि ?

चेटः--भट्टक ! परलोकात् ।

शकारः--कः स परलोकः ?

चेटः--भट्टक ! सुकृतदुष्कृतयोः परिणामः ?

चेट--स्वामिन् ! प्रसन्न होइए । मैं अनार्य इस आर्या वसन्तसेना को गाड़ी के परिवर्तन से ले आया हूँ ।

शकार--अरे चेट ! क्या तुमसे भी यह कार्य नहीं करा सकता हूँ ।

चेट--स्वामिन् ! शरीर पर आप समर्थ हैं, चारित्र पर नहीं । अतः श्रीमान् प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए । मैं डरता हूँ ।

शकार--तुम मेरे चेट होकर किससे डरते हो ?

चेट--स्वामिन् ! परलोक से ।

शकार--वह परलोक कौन है ?

चेट--स्वामिन् ! पाप और पुण्य का परिणाम ।

शकारः—केलिशे शुकिदश्श पलिणामे ।
चेटः—जादिशे भट्टके बहु-शोवण्णमण्डिदे ।
शकारः—दुक्किदश्श केलिशे ?
चेटः—जादिशे हग्गे पलपिण्डभक्षके भूदे । ता अकज्जं ण कलइश्शं ।
शकारः—अले ! ण मालिश्शशि ? (इति बहुविधं ताडयति)
चेटः—पिट्टदु भट्टके, मालेदु भट्टके, अकज्जं ण कलइश्श ।

जेण म्हि गब्भदाशे विणिम्मिदे भाअधेअदोशेहिं ।
अहिअं च ण कीणिस्सं तेण अकज्जं पलिहलामि ॥

शकारः—कीदृशः सुकृतस्य परिणामः ।
चेटः—यादृशो भट्टकः बहुसुवर्णमण्डितः ।
शकारः—दुष्कृतस्य कीदृशः ?
चेटः—यादृशोऽहं परपिण्डभक्षको भूतः । तदकार्यं न करिष्यामि ।
शकारः—अरे ! न मारयिष्यसि ? (इति बहुविधं ताडयति) ।
चेटः—पीडयतु भट्टकः, मारयतु भट्टकः, अकार्यं न करिष्यामि ।

येनास्मि गर्भदासो विनिर्मितो भागधेयदोषैः ।
अधिकञ्च न क्रेष्यामि तेनाकार्यं परिहरामि ॥

शकार—पुण्य का परिणाम कैसा है ?
चेट—जैसे अनेक सुवर्णों से आप अलंकृत हैं ।
शकार—पाप का परिणाम कैसा है ?
चेट—जैसा कि मैं परान्नभोजी हुआ हूँ । अतः दुष्कार्य नहीं करूँगा ।
शकार—अरे ! नहीं मारोगे । (बहुत प्रकार से मारता है)
चेट—स्वामिन् ! आप मुझे पीड़ित करें, मारें, परन्तु मैं अकार्य नहीं करूँगा । पूर्वजन्म के पापों के दोष के कारण मुझे गर्भदास (जन्म से ही दास) बनना पड़ा है । अब [वसन्तसेना को मारकर] अधिक पाप नहीं कमाऊँगा । अतः अकार्य का परित्याग करता हूँ ।

(शौरसेनी प्राकृत)

(१३) सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम[1]

अवदातिका—अहो ! अच्चाहिदं परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए मम एत्तिअं भअं आसी, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स। हसिदुं विअ इच्छामि। ण खु एआइणीए हसिदव्वं। (ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता—हञ्जे ! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ। किं णु हु विअ एदं !

चेटी—भट्टिणि ! सुलहावराहो परिअणो णाम। अवरज्झा भविस्सदि।

संस्कृत-छाया (सर्वं शोभनीयं सुरूपं नाम)

अवदातिका--अहो अत्याहितम्। परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावाद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितुमिवेच्छामि। न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम्। (ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता--हञ्जे ! अवदातिका परिशंकितवर्णेव दृश्यते किन्नु खल्विवैतत् ?

चेटी—भट्टिनि ! सुलभापराधः परिजनो नाम। अपराद्धा भविष्यति।

हिन्दी अनुवाद (सुन्दर रूपवाले के लिए सब कुछ शोभनीय है)

अवदातिका-ओह ! बड़ा भय है। परिहास के प्रसंग में एक तुच्छ वस्तु वल्कल को उठाकर ले आने पर जब मैं इतना डर गई हूँ तो लोभ के कारण दूसरे के धन को चुराने वाले की क्या अवस्था होती होगी ? हँसना सा चाहती हूँ परन्तु अकेले हँसना अच्छा नहीं लगता है।

(सपरिवार सीता का प्रवेश)

सीता-अरी सखी ! अवदातिका भयभीत सी लग रही है। क्या कारण है ?

चेटी--स्वामिनी ! परिजनों से अपराध होना सहज है। अपराध किया होगा।

---

[1] महाकवि भासकृत प्रतिमानाटक, प्रथम अङ्क, पृष्ठ १६–२१ से उद्‌धृत।

सीता—णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि ।

अवदातिका—(उपसृत्य) जेदु भट्टिणि । ण खु अहं अवरज्झा ।

सीता—का तुमं पुच्छदि । ओदादिए किं एदं वामहत्थपरिगहिदं ?

अवदातिका—भट्टिणि ! इदं वक्कलं ?

सीता—वक्कलं किस्स आणीदं ?

अवदातिका—सुणादु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिव्वुत्तरंगप्पओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अम्हेहि

सीता—नहि नहि, हसितुमिवेच्छति ।

अवदातिका—(उपसृत्य) जयतु भट्टिनि ! भट्टिनि ! न खल्वहमपराद्धा ।

सीता—का त्वां पृच्छति । अवदातिके ! अवदातिके ! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम् ।

अवदातिका—भट्टिनि ! इदं वल्कलम् ।

सीता—वल्कलं कस्मादानीतम् ।

अवदातिका—शृणोतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निवृत्तरंगप्रयोजनमशोक-

---

सीता—नहीं, नहीं, यह तो हँसना सा चाह रही है ।

अवदातिका—(पास में आकर) स्वामिनी की जय हो, स्वामिनी ! मैंने कोई अपराध नहीं किया है ।

सीता—तुमसे कौन पूछ रहा है ? अरी अवदातिके ! अवदातिके ! बायें हाथ में यह क्या लिए हो ?

अवदातिका—स्वामिनी ! यह तो वल्कल है ।

सीता—वल्कल कहाँ से लाई हो ?

अवदातिका—स्वामिनी ! सुनिए, नेपथ्य-रक्षिका आर्या रेवा से नाटक के प्रयोजन के पूर्ण हो चुकने के बाद मैंने अशोक वृक्ष का एक

जाइदा आसि। ण अ ताए दिण्णं। तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं।

सीता—पावअं किदं। गच्छ, णिय्यादेहि।

अवदातिका—भट्टिणि! परिहासणिमित्तं खु मए एदं आणीदं।

सीता—उम्मत्तिए! एव्वं दोसो वड्ढदे। गच्छ, णिय्यादेहि, णिय्यादेहि।

अवदातिका—जं भट्टिणी आणवेदि। (प्रस्थातुमिच्छति)

सीता—हला एहि दाव।

अयदातिका—भट्टिणि! इअ म्हि।

वृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितमासीत्। न च तया दत्तम्। ततोऽर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम्।

सीता—पापक कृतम्। गच्छ निर्यातय।

अवदातिका—भट्टिनि! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम्।

सीता—उन्मत्तिके! एवं दोषो वर्धते। गच्छ, निर्यातय निर्यातय।

अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (प्रस्थातुमिच्छति)

सीता—हला! एहि तावत्।

अवदातिका—भट्टिनि! इयमस्मि।

पत्ता मांगा था किन्तु उसने नहीं दिया। अतएव उसे दण्डित करने के निमित्त इसे उठा लाई हूँ।

सीता—यह अच्छा नहीं किया। जाओ, लौटा दो।

अवदातिका—स्वामिनी! मैं तो इसे परिहास के क्रम में ले आई हूँ।

सीता—अरी पगली! इस प्रकार दोष बढ़ता है। जाओ, लौटा दो, लौटा दो।

अवदातिका—जैसी स्वामिनी की आज्ञा। (जाना चाहती है)

सीता—अरी! जरा इधर आओ।

अवदातिका—स्वामिनी! यह आई।

सीता—हला ! किं णु हु मम वि दाव सोहदि ।

अवदातिका—भट्टिणि ! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम । अलंकरोदु भट्टिणी ।

सीता—आणेहि दाव । (गृहीत्वालङ्कृत्य) हला ! पेक्ख, किं दाणिं सोहदि ?

अवदातिका—तव खु सोहदि णाम । सोवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तं ।

सीता—हञ्जे ! तुवं किंचि ण भणसि ?

चेटी—णत्थि वाआए पओअणं । इमे पहरिसिदा तणूरुहा मंतेन्ति । (पुलकं दर्शयति)

सीता—हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते ।

अवदातिका—भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलंकरोतु भट्टिनी ।

सीता—आनय तावत् । (गृहीत्वालंकृत्य) हला ! पश्य, किमिदानीं शोभते ?

अवदातिका—तव खलु शोभते नाम । सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम् ।

सीता—हञ्जे ! त्वं किञ्चिन्न भणसि ?

चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम् । इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते । (पुलकं दर्शयति)

सीता—अरी ! क्या यह मुझे शोभा देगा ?

अवदातिका—स्वामिनी ! सुन्दर रूप वाले को सब कुछ सुन्दर लगता है । स्वामिनी पहनकर देखें ।

सीता—अच्छा, लाओ । (लेकर और पहनकर) अरी ! देखो, क्या अच्छी लगती हूँ ।

अवदातिका—आप की शोभा का क्या कहना ? आपके शरीर के संस्पर्श से यह वल्कल स्वर्ण-निर्मित सा लग रहा है ।

सीता—सखि ! तुम कुछ नहीं बोल रही हो ?

चेटी—इसमें कहने की कोई आवश्यकता नहीं है । ये प्रहर्षित रोमाञ्च सब कुछ कह रहे हैं । (रोमाञ्च दिखलाती है)

●

(जैन शौरसेनी प्राकृत)

(१४) णत्थि सदो विणासो[1]

१. भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति ।। १५ ।।
२. भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ।। १६ ।।
३. मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ।। १७ ।।

संस्कृतच्छाया (सतो विनाशो नास्ति)

१. भावस्य नास्ति नाशो नास्ति अभावस्य चैवोत्पादः।
गुणपर्यायेषु भावा उत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति ।।
२. भावा जीवाद्या जीवगुणाश्चेतना चोपयोगः।
सुरनरनारकतिर्यञ्चो जीवस्य च पर्याया बहवः ।।
३. मनुष्यत्वेन नष्टो देही देवो भवतीतरो वा।
उभयत्र जीवभावो न नश्यति न जायतेऽन्यः ।।

हिन्दी-अनुवाद (सत् का विनाश नहीं होता है)

१. भाव (सत् या द्रव्य) का नाश नहीं है तथा अभाव (असत्) का उत्पाद भी नहीं है। भाव (सत् द्रव्य) गुण और पर्यायों में उत्पाद-व्यय करते हैं।

२. जीवादि (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) भाव हैं। जीव के गुण चैतन्य और उपयोग (दर्शन और ज्ञान) हैं। जीव की पर्यायें देव, मनुष्य, नारक तथा तिर्यञ्चरूप अनेक हैं।

३. मनुष्यत्व से नष्ट हुआ देही (जीव) देव अथवा अन्य (तिर्यञ्च आदि) होता है। उन दोनों (मनुष्य और देव) में जीवभाव नष्ट नहीं होता है तथा दूसरा जीवभाव (देव आदि) उत्पन्न नहीं होता है।

---

[1] श्रीकुन्दकुन्दकृत पंचास्तिकायसंग्रह से उद्धृत (गाथा १५–१९)।

४. सो चेव जादि मरणं जादि, ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसु त्ति पज्जाओ॥ १८॥
५. एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो॥ १९॥

(पैशाची प्राकृत)

(१५) मुक्खपतं को लभेय्य ?[1]

१. सुद्धाकसाय-हितपक-जित-करन-कुतुम्ब-चेसटो योगी।
मुक्क-कुटुम्ब-सिनेहो न वलति गन्तून मुक्ख-पतं॥ ८·७॥

४. स चैव याति मरणं याति, न नष्टो न चैवोत्पन्नः।
उत्पन्नश्च विनष्टो देवो मनुष्य इति पर्यायः॥
५. एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य नास्त्युत्पादः।
तावज्जीवानां देवो मनुष्य इति 'गति' नाम॥

संस्कृतच्छाया (मोक्षपदं को लप्स्यते ?)

१. शुद्धाकषायहृदयजितकरणकुटुम्बचेष्टा योगी।
मुक्तकुटुम्बस्नेहो न वलते गत्वा मोक्षपदम्॥

४. [पर्याय रूप से] वही जन्म लेता है और वही मृत्यु को प्राप्त करता है फिर भी (जीवभाव से) वह न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। देव, मनुष्य ऐसी पर्यायें उत्पन्न होती हैं और विनष्ट होती हैं।

५. इस प्रकार सत् का विनाश और असत् जीव का उत्पाद् नहीं है ['देव जन्म लेता है और मनुष्य मरता है' ऐसा जो कहा जाता है, उसका कारण है कि] जीवों का देव, मनुष्य ऐसा 'गति' नामकर्म (देवादि गतियों में ले जाने वाला कर्मविशेष) उतने ही समय का है।

हिन्दी अनुवाद (मोक्ष पद को कौन प्राप्त करेगा ?)

१. शुद्ध (निर्मल) तथा क्रोधादि कषायों से रहित हृदय वाला, इन्द्रियों (करण-कुटुम्ब) की चेष्टाओं को जीतने वाला एवं बन्धुवर्ग (कुटुम्ब) के

---

[1] श्रीहेमचन्द्रकृत कुमारपालचरित के सर्ग ८ से उद्धृत।

२. यन्ति कसाया नत्थून यन्ति नद्धून सव्व-कम्माइं ।
समं-सलिल-सिनातानं उज्झित-कत-कपट-भरियान ॥ ८·८ ॥
३. यति अरिह-परम-मन्तो पढिय्यते कीरते न जीव-वधो ।
यातिस-तातिस जाती तत्तो जनो निव्वुतिं याति ॥ ८·९ ॥
४. अच्छति रन्ने सेले वि अच्छते दढ-तपं तपन्तो वि ।
ताव न लभेय्य मुक्खं याव न विसयान तूरातो ॥८·१०॥

---

२. यान्ति कषायान् नष्ट्वा यान्ति नष्ट्वा सर्वकर्माणि ।
शमसलिलस्नातानां उज्झितकृतकपटभार्याणाम् ॥
३. यदि अर्हत्-परममन्त्रः पठ्यते क्रियते न जीववधः ।
यादृश-तादृशजातिः ततो जनो निर्वृतिं याति ॥
४. आस्ते अरण्ये शैलेऽपि आस्ते दृढतपस्तप्यमानोऽपि ।
तावन्न लप्स्यते मोक्षं यावन्न विषयाणां (विषयेभ्यः) दूरात् ॥

प्रति अनुराग से रहित योगी (संयमी साधु) मोक्ष पद को प्राप्त करके पुनः संसार में नहीं आता है ।

२. जिन्होंने शम रूपी जल से स्नान किया है तथा मिथ्या स्नेह प्रदर्शित करने वाली भार्याओं का परित्याग किया है वे कषायों को तथा सभी कर्मों को नष्ट करके [मोक्ष] को जाते हैं ।

३. अर्हत्-परम-मन्त्र (पंच-परमेष्ठी-नमस्कार रूप श्रेष्ठ मन्त्र—'नमो (णमो) अरहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आइरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं') को यदि कोई पढ़ता है तथा जीवों की हिंसा नहीं करता है तो वह मनुष्य किसी जाति (उच्च अथवा नीच) का होने पर भी निर्वृत्ति (मोक्ष) को प्राप्त करता है ।

४. जंगल में रहने पर, पर्वत पर रहने पर तथा घोर तप करने पर भी तब तक मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा जब तक विषयों से विरक्त नहीं होगा ।

●

(चूलिका-पैशाची प्राकृत)

(१६) धञ्ञो योगी[1]

१. वन्थू सठासठेसु वि आलम्पित-उपसमो अनालम्फो ।
सव्वञ्ञ-लाच-चलने अनुझायन्तो हुवति योगी ।। ८.१२ ।।
२. झच्छर-डमरुक-भेरी-ढक्का-जीमूत-गफिर-घोसा वि ।
बम्ह-नियोजितमप्पं जस्स न दोलिन्ति सो धञ्ञो ।। ८.१३ ।।

संस्कृत-छाया (धन्यो योगी)

१. वन्धुः शठाशठेष्वपि आलम्बितोपशमोऽनारम्भः ।
सर्वज्ञराजचरणान् अनुध्यायन् भवति योगी ।।
२. झच्छर-डमरुक-भेरी-ढक्का-जीमूत-गम्भीरघोषा अपि ।
ब्रह्मनियोजितात्मानं यम्य न दोलयन्ति सो धन्यः ।।

हिन्दी अनुवाद (उत्कृष्ट योगी)

१. शठों (मायावियों, धूर्तों) तथा अशठों में भी बान्धवसदृश, उपशम (शान्त) भाव का आश्रय लेने वाला और अनारम्भ (दोषरहित आचरण) वाला सर्वज्ञ के चरणों का ध्यान करता हुआ योगी होता है ।

२. झच्छर (अडाउज), डमरुक, भेरी (दुन्दुभि) तथा ढक्का (नगाड़ा=पटह) के मेघ के सदृश गम्भीर घोष भी ब्रह्म में लीन जिस आत्मा को विचलित नहीं करते हैं वही उत्कृष्ट (धन्य = पूज्य) योगी है ।

●

---

[1] श्रीहेमचन्द्रकृत कुमारपालचरित, सर्ग ८ से उद्धृत ।

(अपभ्रंश प्राकृत)

(१७) सिक्खा-वयणाइं[1]

१. गुणहिँ न संपइ, कित्ति पर फल लिहिआ भुंजन्ति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअ वि गय लक्खेहिं घेप्पन्ति ।।४·३३५।।
२. उअ कणिआरु पफुल्लिअउ कञ्चणकन्तिपयासु ।
गोरीवयणविणिज्जअउ नं सेवइ वणवासु ।।४·३९६।।
३. सरिहिं न सरेहिं, न सरवरेहिं न वि उज्जाणवणेहिं ।
देस रवण्णा होंति वढ ! निवसन्तेहिं सुअणेहिं ।।४·४२२।।

संस्कृत-छाया (शिक्षा-वचनानि)

१. गुणैः न संपत् कीर्तिः परं फलानि लिखितानि भुञ्जन्ति ।
केसरी न लभते कपर्दिकामपि गजाः लक्षैः गृह्यन्ते ।।
२. पश्य ! कर्णिकारः प्रफुल्लितकः काञ्चनकान्तिप्रकाशः ।
गौरीवदनविनिर्जितको ननु सेवते वनवासम् ।।
३. सरिद्भिः न सरोभिः न सरोवरैः नाप्युद्यानवनैः ।
देशाः रम्याः भवन्ति मूर्ख ! निवसद्भिः सुजनैः ।।

हिन्दी अनुवाद (शिक्षा-वचन)

१. गुणों से केवल कीर्ति मिलती है, सम्पत्ति नहीं । मनुष्य भाग्य में लिखित फलों को भोगते हैं । सिंह (गुण-सम्पन्न होने पर भी) एक कौड़ी (कर्पदिका) में भी नहीं बिकता जबकि हाथी लाखों में खरीदा जाता है ।

२. खिले हुए कर्णिकार नामक वृक्ष को देखो ! जो स्वर्ण के समान कान्ति से प्रकाशित है तथा गौरी (सुन्दर नायिका) के मुख की आभा को जीतने वाला है; (आश्चर्य है) फिर भी वह वनवास कर रहा है ।

३. अरे मूर्ख ! न नदियों से, न झीलों से, न तालाबों से और न उद्यान-वनों से देश रमणीय होते हैं, अपितु सज्जनों के रहने से रमणीय होते हैं ।

---

[1] श्रीहेमचन्द्रकृत प्राकृतव्याकरण के चतुर्थ पाद के सूत्रोदाहरणों से उद्धृत ।

४. एक्क कुडुल्ली पंचहिं रुद्धी तहं पंचहं वि जुअं जुअ बुद्धी ।
बहिणुए तं घरु कहि किवँ नन्दउ जेत्थु कुडुम्बउं अप्पणछंदउं४.॥४२२

५. सिरि चडिआ खन्तिफलइं पुणु डालइं मोडन्ति ।
तो वि महद्दुम सउणाहं अवराहिउ न करन्ति ॥४·४४५॥

---

४. एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा तेषां पञ्चानामपि पृथक्-पृथक् बुद्धिः ।
भगिनि ! तद् गृह कथय कथं नन्दतु यत्र कुटुम्बं आत्मच्छन्दकम् ॥

५. शिरसि आरूढाः खादन्ति फलानि पुनः शाखाः मोटयन्ति ।
तथापि महाद्रुमाः शकुनीनामपराधितं न कुर्वन्ति ॥

---

४. एक छोटी झोपड़ी (कुटी) हो और जिसमें पांच प्राणी रहते हों तथा वे पाँचों ही अलग-अलग बुद्धि वाले हों, तो हे बहिन ! कहो, जहाँ सभी कुटुम्ब स्वच्छन्द विचरण करता हो वह घर कैसे आनन्दमय हो सकता है ?

(यह पद्य शरीर और पञ्चेन्द्रिय पर भी घटाया जा सकता है ।)

५. पक्षीगण महावृक्षों के शिखरभाग (उन्नत शाखाओं = शिर) पर बैठते हैं, उनके फलों को खाते हैं तथा शाखाओं को तोड़ते-मरोड़ते हैं फिर भी वे महावृक्ष [सज्जन की तरह] उन पक्षियों को अपराधी नहीं मानते हैं ।

●

प्रथम परिशिष्ट : शब्दकोश

(१) वस्त्राभूषण

उवटन = उदवट्टणं
ऊनी कपड़ा = रोमजं, ओण्णेयं
कंगन = कंकणं
कपड़ा = वत्थं, वसनं
कमीज = कमणीओ, कंचुअं
करधनी = रसणा, मेहला
कुण्डल = कुंडलं
कुर्त्ता = कंचुअं
कोरा कपड़ा = अणाहयं वत्थं
चोली = कंचुई
टोपी = सिरत्थं
तौलिया = पुंछणी
दुपट्टा = उत्तरीयं

धोया कपड़ा, धोती=धोतवत्थं
पहुँची=कडओ
पांव का कड़ा=हंसओ
बाजू=केयूरो
बिछिया=णूउरो, णेउरो
बेंदी=ललाडिया
महावर=लाछा
माला=माला
मेंहदी = मेंहदी
रेशमी कपड़ा = कोसेयं
साड़ी=साडी
सूती कपड़ा = कप्पासं
सिन्दूर=सेंदूरो

(२) वृत्तिजीवी

कलवार=कलालो
कसाई=मांसिओ
कारीगर=सिप्पी
किसान=किसओ, किसाणो
कुम्हार = कुंभआरो, कुलालो
गड़रिया=मेसवालो, गडेरवालो
गवैया=गायओ

ग्वाला=गोवो
चटाई बनाने वाला=बरुडो
चौकीदार = पहरी, दारवालो
जासूस=चरो
जुलाहा=कोलिओ, पडयारो
ठठेरा=तंबकुट्टओ
डाकू=दस्सू

तमोली=तांबोलिओ
तेली=तेलिओ
दर्जी=सूइयारो, सूचिओ
धोबी=रजओ
नाई=णाविओ
नाचनेवाला=णच्चओ
नौकर=सेवओ, भिच्चो
बजाने वाला=वायओ
बढ़ई=रहयारो, बड्ढई
बनिया=वणिओ
बाजीगर=इन्दजालिओ

मछुआ=धीवरो, णिसादो
मजदूर=समियो
मोची=चम्मयारो
रसोइआ=पाचओ, सूदो
राज=थवई
लुहार=लोहयारो
व्याध=वाहो
वैद्य=वेज्जो
सुनार=सुवण्णयारो
हलवाई=मोदइओ, कांदाविओ

(३) सम्बन्धी

चाचा=पिइज्जो
छोटा भाई=अणुओ
जामाता=जामाया
दादा=पिआमहो
दादी=पिआमही
देवर=देवरो
ननद=णणंदा
नाना=मायामहो
नानी=मायामही
नाती=णत्तिओ
पति=भत्ता, सामी, पई
पिता=विआ, जणओ, पिउ
पुत्रवधू=पुत्तवहू, सुण्हा
पोता=पोत्तो, णत्तुणिओ

पौत्र की पत्नी=णत्तुइणी
प्रेयसी=पीअसी
फुफेरा भाई=पिउसिआणेयो
फूफी=पिउच्छा, पिउसिआ
बड़ा भाई=अग्गओ
बहन=बहिणी
बेटा=पुत्तो, तणयो
बेटी=पुत्ती, तणया, दुहिआ
भानजा=भाइणिज्जो, भाइणेओ
भतीजा=भाउणिज्जो
भाई=भाया
भौजाई=भाउजाया
माँ=माआ, जणणी
मामा=माउलो

मौसी=माउसिआ
मौसेरा भाई=माउसियाणेओ
साढ़ू=सालिवोढो
साला=सालो
सास=सस्सू
ससुर=ससुरो
स्त्री=भज्जा, भारिया, दारा, पिआ

(४) पुष्प, सुगन्धितद्रव्य और औषधियाँ

अजमोदा=अजमोदा
असगन्ध=अस्सगन्धा
इत्र=पुप्फसारो
ईसफगोल=सीयबीयं
कत्था=खदिरो
कमल=पोमं, कमलं
कस्तूरी=कत्थुरिआ
केवड़ा=केतई, केअई
केवड़ाजल=केअईजलं
केसर=कुंकुमं
खस=उसीरो
गुलाब=पाडलो
गुलाबजल=पाडलजलं
गेंदा=गणेसओ
गेरू=गेरिअं
चमेली=जाइ, मालती
चम्पा–चंपा, चंपओ
चूना=चुण्णं
जूही=जूहिआ
पीपल=पिप्पलो
वेला=मल्लिआ
मौलसिरी=बउलो
सोहागा=टंकण

(५) अस्त्र

गुप्ती=करवालिआ
ढाल=फलओ
तलवार=असी, टंको, करवालो
बन्दूक=नालीअं
भाला=कुन्तो
लाठी=लगुडो, डंडो
वर्छी=सल्लं
हथियार=अत्थं, सत्थं, आउहं

(६) पशु-पक्षी

उल्लू=उलूओ
ऊँट=कमेलो, करहो
कबूतर=कवोओ
कुत्ता=कुक्कुरो, सारमेयो
कोयल=कोइलो, परहुतो
कौआ=काओ; वायसो
खञ्जन=खंजनो
खरगोश=ससो
गधा=गद्दहो; रासहो

गरुड़=गरुडो, वेणतेयो
गाय=धेणू
गीदड़=सियारो
गैंडा=गंडओ
गोह=गोहा
घड़ियाल=मगरो, नक्को
घोड़ा=अस्सो, घोडओ
चकवा=चक्कवाओ
चीता=चित्तओ
चील=चिल्ला
तीतर=तित्तिरो
नीलगाय–गवयो
पपीहा=चायओ
बकरा=अजो
बगुला=बओ
बत्तख=बत्तओ
बन्दर=वानरो, मक्कडो
बाघ=सद्दूलो, बाघो
बाज=सेणो

बैल=वसहो
भालू=भालुओ, रिच्छा
भेड़=मेसो
भेड़िया=कोओ, विओ
भैंसा=महिसो
मुर्गा=कुक्कुडो
मूसा=मूसिओ, आखू
मैना=सारिआ
मोर=मोरो
लोमड़ी=खिखिरो
वटेर=लावओ
विडाल=मज्जारो, विडालो
सारस=सारसो
सिंह=सीहो, केसरी
सुग्गा=सुओ, कीरो
सूअर=सूअरो, वराहो
हंस=हंसो
हरिण=मिओ
हाथी=हत्थी, करी, गयो

(७) सरीसृप और कीड़े-मकोड़े

कछुआ=कच्छवो, कुम्मो
कीड़ा=कीडो
खटमल=मक्कुणो
गिरगिट=सरडो
गिलहरी=चमरपुच्छो
चींटी=पिपीलिओ
जूं=लिक्खा

जोंक=जलूया
पतिङ्गा=सलहो
बिच्छू=विच्छिओ
भौंरा=छप्पद, भमरो, भसलो
मक्खी=मच्छिआ
मकड़ा=मक्कडो, लूया
मच्छड़=मसओ

मछली=मच्छो
मधुमक्खी = महुमक्खिआ
मेढ़क = भेओ, दद्दुरो
साँप=सप्पो, भुयंगो

(८) शरीर के अंग

आँख=णयणं, नेत्तं, अच्छि, चक्खु
अँगुली=अँगुली
ओठ = अहरो, ओट्ठो
कन्धा=अंसो
कपाल=कवालो, भालो
कमर=कडी
कलेजा = हिययं
कान=कण्णो,सोत्तं
काँख=कक्खो
केश=केसो, कयो, बालो
केहुनी=कहोणी
गाल=कवोलो, गल्लो
घुटना=जाणु
चर्बी=मेदो, वसा
छाती=उरो, वच्छं
जाँघ=जंघा, जंहा
जीभ=जीहा, रसणा
टाँग=टंगो
दाँत=दसणो, दंतो
दाढ़ी-मूँछ=समस्सू
नाक=णासिआ, णासा
नाखून=नहो
नाभि=णाही
नितम्ब=नियंबो
पीठ=पिट्ठं
पीब=किलेओ, पूयं
पेट=उयरं
पैर=चरणो, पाओ
बाँह=भुओ, बाहू
भौंह = भौं
मांस=मंसं
मुँह=वयणं, मुहं
मुट्ठी=मुट्ठिआ, मुट्ठी
शोणित = रत्तं, रुहिरं
सिर=मत्थओ, सिरं
स्तन थणो
हड्डी = अत्थि
हथेली=करयलं
हाथ=करो, पाणी, हत्थो

(९) तरकारी

अरवी=अरलू
आलू=आलुओ
ककड़ी, खीरा=चिब्भडं
कद्दू=अलाबू, तुंबी
करेला=कारवेल्लो
केला=कयली

कोंहड़ा=अलाबू, कोहंडो
गोभी=गोजीहा
गाजर, सलजम = गिंजणं
तरोई=कोसातई
परवल = पडोलो
प्याज=पलांडु
बथुए का साग=वात्थुअं
बैंगन=विंताओ
मूली=मूलिआ
रामतरोई=भिंडा
लहसुन=लसुणं
साग=सागो
सेम=सिंबी

(१०) फल एवं मेवा

अखरोट=अक्खोटो
अनार=दाडिमो
अमरूद=पेरूओ
आम=सहआरफलं, अंबं
कटहल=पनसो
कथवेल, कैथा=कवित्थो
केला = कयली
किशमिश=महुरसा
खजूर=खज्जूरो
जामुन = जंबूफलं
नारंगी = नारंगं
नारियल=नारिएलं
नाशपाती=अमियफलं
पपीता = महूरेंडो
बादाम=बादामो
बेल = बेलो
बेर=बदरीफलं
मुनक्का = पथिआ
सेव=सीवफलं

(११) अनाज एवं मसाला

अजवायन=जवाणिआ
अदरख=आद्दअं
अनाज=अन्नं, सस्सं
अरहर=आढकी
इक्षु=उच्छु
इमली=चिंचा
उड़द=मासो
कत्था=खदिरसारो
कपूर=कप्पूरो
कुल्थी=कुलत्थो, कुलमासो
गेहूं=गोहूमो
चना=चणओ
चावल=तंडुलो
छोटी इलायची=एला
जायफल=जाइफलं
जावित्री=जाइपत्ती
जीरा=जीरओ
जौ=जवो

ज्वार=तुवरो
तिल=तिलो
तीसी=अतसी
तेजपात = तेअपत्तं
दालचीनी=गुडत्तओ
नमक=लोणं
पीपल=पिप्पली
पुदीना = पुदिनो
बड़ी इलायची=थूलेला
बहेड़ा=बहेडओ
मसाला=वेसवारो
मसूर=मसूरो
मिरचा लाल=रत्तमरियं
मूंग=मुग्गो
मेथी=मेहिआ
रस = रसो
राई=रायिका
लवंग=लवंगो
शीतलचीनी=कंकोली
सरसों = सस्सपो
सोंठ=सुंठी
सौंफ=सयपुप्फा
स्याह जीरा = किसणजीरओ
हल्दी=हलद्दा, हलद्दी
हींग=हिंगू

(१२) वृक्ष

अशोक=असोयो
कचनार=कंचणारो
कनेर=कण्णिआरो
चन्दन=चंदनविच्छो
डाल=साहा
डंठल=वुंतो
पीपल = अस्सत्थो
पौधा=लहुपादवो
बबूल = बब्बुरो
बरगद=वडो
बांस=वंसो
रीठा=अरिट्ठो
सहजन=सोहांजणो
साखू=सालविच्छो
हरड़ =हरडई

(१३) भोज्य पदार्थ

आटा=चुण्णं
खिचड़ी = खिच्चडिआ
खीर = पायसं
खोआ=किलाडो
गुझिआ=संयावो
गुड़=गुडो
घी=घयं, सप्पि, आज्जं
घेवर = घयपूरो

चटनी=अवलेहो
चाशनी=सियालेहो
चिउडा=चिविडओ
चीनी=सिता, सक्करं
छेना=आमिछा
जलेबी=कुंडलिणी
तक्र, मट्ठा=तक्कं, मट्ठं
तरकारी=तेमणं
दही=दहि
दाल=सूवो
दूध=खीरं, पयो, दुद्धं
पकवान=पक्कान्नं
पराठा=घयचोरी
पापड़=पप्पडो
बड़ा=वडओ
भात=भत्तं
मलाई=संताणिआ
मालपुआ=अपूवो
माँड़=मंडं
मिठाई=मिट्ठान्नं
मैदा=समिआ
रोटी=रोडिआ, रोट्टगो
लड्डू=लड्डुओ, मोदओ
शरबत=सक्करोदयं
शहद=महु
सत्तू=सत्तू

(१४) विविध (निवासस्थानादि)

अटारी=अट्टं
आइना=दप्पणो, मुअरो
ईंट=इट्टिआ
ऊखल=उलूखलं
ओसारा=उवसालं
कंघी=कंकतिआ, पसाहणी
कड़ाही=कडाहो
कछुंल=दव्वी
किला=दुग्गं
किवाड़=कवाडं
कूड़ा-कचड़ा=अवक्करो, कच्चरा
खड़ाऊँ=काट्ठपाउआ
खपड़ा=खप्परो
खिड़की=दारी
खूंटी=णायदंयो
गगरी=गग्गरी
गली=रथ्या
गाँव=गामो
गोंद=णिय्यासो
घडा=घडो, कलसो
घास=तिणं
चमचा=चमओ
चालनी=चालनी
चुटकी=छोडिआ

चूल्हा=चुल्ली
चौकी=चउक्किआ
छत, छप्पर=छई
छाता=छत्तं
छींक=छिक्का
छोटी बस्ती=वसही, गल्ली
जंगल=वणं, काणणं
जल=जलं, उयअं, सलिलं
जूता=उवाणहओ
झाड़=सम्माज्जणी
ट्रंक, पेटी=पेडिआ
टोकरी=कंडोलो, पिडो
ढकना=पिहाणं
तकिया=उवहाणं
तवा=कंदू
ताली=तालिआ, करयलझुणी
तोशक=उसीरो
थाली=थालिआ
थूक=थुक्को
दरवाजा=दारं
देहली=देहली
दीपक=दीवओ
दीवाल=भित्ती
नदी=नई
पंखा=विजणं
पसीना=सेओ, घम्मो
पहाड़=पव्वओ, गिरि
पीढ़ा=पीढं, आसणं
प्यास=तिसा, पिवासा
पृथ्वी=भूमी
बटलोई=थाली
बत्ती=वत्तिआ, वत्ती
बर्तन=पात्तं, भायणं
बाजार=आवणो, हट्टं
बिछावन=आत्थरणं
बोरा=पसेवो
भूख=छुहा
मकान=गिहं, भवणं, घरं
मलमूत्र=पुरीसं
मशहरी=मसहरी
मालिश=मद्दणं
मिटटी=मिट्टिआ
मूसल=मूसलं
रसोईघर=महाणसं
राजमहल=सोहो; पासाओ
लोटा=जलपत्तं
लोढ़ा=पेसणं
शहर=णयरं
सड़क=रायमग्गो
सन्दूक=वासओ, मंजूसा
सींक=सिक्कं
सेज=सज्जा
हांड़ी=हंडिआ
हिचकी=हिक्का

●

द्वितीय परिशिष्ट : धातुकोश

अटकाता है=रोडइ
अतिक्रमण करता है=अइक्कमइ
अपमान करता है=अवगणइ
अलग करता है=विओजइ
अलग होता है=विरमइ
अवगाहन करता है=ओगाहइ
आक्रमण करता है=अक्कमइ
आक्रोश करता है=अक्कोसइ
आक्षेप करता है=अक्खिवइ
आज्ञा देता है=आदिसइ
आचमन करता है=आचमइ
आता है=आगच्छइ
आदर करता है=आदरेइ
आरम्भ करता है=आरंभइ
आसक्त होता है=रंजइ
इकट्ठा करता है=चिणइ, संचयइ
इच्छा करता है=इच्छइ
उछलता है=फंफइ
उठता है=उट्ठइ
उड़ता है=उड्डेइ
उत्पन्न करता है=जणइ
उत्पन्न होता है=उप्पन्नइ
उद्धार करता है=उद्धरइ
उपदेश देता है=उवदिसइ

करता है=करइ
कलह करता है=कलहइ
कलंकित करता है=लंछइ
कल्पना करता है=कप्पइ
कहता है=कहइ, भणइ, बोल्लइ, जंपइ
काटता है=लुअइ, छिन्नइ
कूटता है=कुट्टइ
कूदता है=कुद्दइ
क्रोध करता है=कुज्झइ, रूसइ
कृपा करता है=अणुग्गहइ
खरीदता है=कीणइ
खांसता है=खांसइ
खाता है=खाअइ
खिन्न होता है=खिज्जइ
खिलखिलाता है=अट्टहासं करेइ
खिलता है=विअसइ
खिसकता है=सरइ
खींचता है=करिसइ, कड्ढइ
खुजलाता है=कंडूअइ
खोद करता है=जूरइ
खेलता है=खेलइ
खोदता है=खणइ
क्षमा करता है=खमइ
गर्जता है=गज्जइ

गाना गाता है=गाइ
गिनता है=गणइ
गिरता है=पडइ, गिरइ
ग्रहण करता है=गिण्हइ
गूंथता है=गुंथइ
घूमता है=अडइ, घुम्मइ, भमइ, हिंडइ
घृणा करता है=जुउच्छइ, दुगुच्छइ
घोषणा करता है=घोसइ
चखता है=चक्खइ
चलता है=चलइ
चाटता है=लिहइ
चाहता है=वंछइ
चिन्ता करता है=चिंतइ
चिन्तन करता है=चिंतइ
चित्र बनाता है=चित्तेइ
चुनता है=चिणइ
चुराता है=चोरेइ
चूमता है=चुंबइ
चूता है=चुअइ
चोरी करता है=मुसइ
छानता है=गालइ
छिपता है=लुक्कइ
छिपाता है=गोवेइ
छींकता है=छिक्कइ
छूटता है=छुट्टइ
छूता है=फासइ
छेदता है=विद्धइ
छोड़ता है=मुंचइ, मोत्तइ
जगाता है=पडिबोहइ
जन्म देता है=विआवइ
जलता है=जलइ, दहइ
जलाता है=डहइ
जागता है=जग्गइ
जाता है=गच्छइ
जानता है=जाणइ
जाप करता है=जवइ
जीतता है=जयइ, जिणइ
जीता है=जीवइ
जीर्ण होता है=जरइ
जुगाली करता है=रोमंथइ
जीतता है=कस्सइ
झरता है=झरइ
झुकता है=नमइ
टूटता है=तुट्टइ
ठगता है=पतारइ, वंचइ
ठहरता है=ठाइ, चिट्ठइ
डरता है=त्रज्जइ, बीहइ
डूबता है=बुड्डइ
ढकता है=पिधइ, ढक्कइ
ढ़ढ़ता है=मग्गइ
तड़फड़ाता है=तडप्फडइ
तप करता है=तवइ
तर्क करता है=तक्कइ
तलाश करता है=गवेसइ
ताड़ित करता है=ताडइ
तिरस्कार करता है=धिक्कारइ

तैरता है=तरइ
तोड़ता है=भंजइ
तोलता है=तोलइ
त्याग करता है=पजहइ
थकता है=थक्कइ
थूकता है=थुक्कइ
दबाता है=चंपइ
दया करता है=अणुकंपइ
दस्त लेता है=विरेअइ
दिखाता है=दरिसइ
दुहता है=दुहइ
दूषण लगाता है=दूसइ
देखता है=पेच्छइ, पासइ
देता है=देइ
दौड़ता है=धावइ
धारण करता है=धारइ, धरइ
धिक्कारता है=धिक्कारइ
धोता है=छालइ, धोवइ
ध्यान करता है=झाइ
नकल करता है=अणुकरइ
नमस्कार करता है=नमइ
नष्ट होता है=नस्सइ
नहाता है=ण्हाइ
नाचता है=णच्चइ
निकलता है=णीसरइ
निगलता है=गिलइ
निग्रह करता है=दमइ
निमन्त्रण करता है=निमंतइ
निवृत्त होता है=विणिवट्टइ
निवेदन करता है=विण्णवइ
निन्दा करता है=निन्दइ
नीचे लटकता है=ओणल्लइ
नोंचता है=निहुणइ
पकड़ता है=धरइ
पकाता है=पचइ, रंधइ
पढ़ता है=पढइ
परित्याग करता है=उम्मुंचइ
पलायन करता है=पलाइ
पवित्रकरता है=पुणइ
पसंद करता है=रुच्चइ
पहनता है=परिहइ
पहुँचता है=पहुच्चइ
पालन करता है=पालइ
पीटता है=ताडइ
पीड़ा देता है=पीडइ
पीता है=पिवइ, पिज्जइ
पीसता है=पीसइ
पुष्ट होता है=पोसइ
पूछता है=पुच्छइ
पूजा करता है=अच्चइ
पैदा होता है=जायइ
प्रकट करता है=पागडइ
प्रणाम करता है=वंदइ
प्रयत्न करता है=उज्जमइ
प्रमाणित करता है=पमाइ
प्रवेश करता है=पविसइ

प्रवृत्ति करता है=पउत्तइ
प्रशंसा करता है=पसंसइ
प्रहार करता है=पहरइ
=प्राप्त करना चाहता है=लंभइ
प्रार्थना करता है=पत्थइ
फटता है=फट्टइ
फड़कता है फुरइ
फलता है=फलइ
फाड़ता है=फाडइ
फिसलता है=फेल्लुसइ
फूलता है=पुप्फइ, फुल्लइ
फेंकता है=उक्खिवइ
फोड़ता है=फुडइ
बजाता है=वायइ
बढ़ता है=बड्ढइ
बनाता है=णिम्मइ
बन्द होता है=निमीलइ
बरसता है=वरिसइ
बाँधता है=वंधइ
बाल उखाड़ता है=लुंचइ
बाल सँवारता है=विवरइ
बिखरता है=विक्खरइ
बिछाता है=पत्थरइ
बुहारता है=सम्माज्जयइ
बैठता है=अच्छइ, चिट्ठइ
बोता =रुप्यइ
बोलता है=बोल्लइ, रवइ
भक्षण करता है=अणुगिलइ
भयभीत होता है=बीहइ
भागता है=पलायइ

भीगता है=तिम्मइ
भूंकता है=बुक्कइ
भूल जाता है=पम्हअइ, भुल्लइ
भेजता है=पेसइ
भ्रमण करता है=भमइ
भोजन करता है=भुंजइ
मंगाता है=अणावेइ
मना करता है=णिसेहइ
मरता है=मरइ
मारता है=हणइ, घायइ
मार्जन करता है=पमज्जइ
मुद्रित होता है=ओमीलइ
मुरझाता है=पमिलायइ
मूर्च्छित होता है=मुच्छइ
मोड़ता है=मोडइ
मौज करता है=विलसइ
युद्ध करता है=जुज्झइ
रटता है=रडइ
रमण करता है=रमइ
रहता है=वसइ
रुई धुनता है=पिंजइ
रुकता है=थंभइ
रूठता है=सरूइ
रोता है=रोवइ, रुवइ
लजवाता है=लज्जावइ
लज्जा करता है=लज्जइ
ललकारता है=हुक्कारइ
लांघता है=लंघइ
लिखता है=लिहइ
लिप्त होता है=लिप्पइ
लीपता है=खरडइ
लीला करता है=लीलायइ

लुढ़कता है=लुढइ
लूटता है=लुट्टइ, लुंटइ
ले आता है=आणेइ
ले जाता है=घेत्तइ
लेता है=लेइ
लोटता है=लोट्टइ
लोप करता है=लोवेइ
लोभ करता है=लुब्भइ
वरण करता है=वरइ
वर्णन करता है=वण्णइ
वहता है=वहइ
वहन करता है=वाहइ
वापस जाता है=पडिवच्चइ
विकसित होता है=उल्लसइ
विचार करता है=विअप्पइ
विद्वान् की तरह आचरण०=विउसइ
विरोध करता है=बाहइ
विवाह करता है=विवहइ
विश्वास करता है=पच्चाअइ
विहार करता है=विहरइ
बेचता है=विक्कीणइ
व्यापार करता है=ववहरइ
शरमाता है=लज्जइ
शाप देता है=सवइ
शोभित होता है=सोहइ
श्रद्धान करता है=सद्दहइ
सकता है=सक्कइ
सगाई करता है=वरइ
सजाता है=सज्जइ
सन्तुष्ट होता है=तिप्पइ
सन्देह करता है=आसंकइ
समझता है=बुज्झइ, बोहइ
समर्थ होता है=सक्कइ
सम्पन्न होता है=संपज्जइ
सरकता है=सरइ
सहारा लेता है=अवलंबेइ
सींचता है-सिंचइ
सीखता है=सीखइ
सीता है=सिव्वइ
सुगन्धित होता है=सुरहइ
सुनता है=सुणइ
सूँघता है=जिंघइ
सूखता है=सूसइ
सेवा करता है=अणुचरइ, सेवइ
सोता है=सयइ
स्तुति करता है=थुणइ
स्थापना करता है=ठवइ
स्नान करता है=ण्हाइ
स्मरण करता है=सुमरेइ
स्वाद लेता है=चक्खइ
स्वीकार करता है=अंगीकरइ
हरण करता है=हरइ
हर्षित होता है=हरिसइ
हवन करता है=हुवइ
हाथ मलता है=घुसलइ
हारता है=पराजयइ
हिंसा करता है=हिंसइ
हिलाता है=धुणेइ
होता है=हवइ, होइ

पार्श्वनाथ विद्याश्रम के प्रकाशनों की सूची

1. **Political History of Northern India from Jaina Sources**
—Dr. G. C. Choudhary 80.00
2. **Jain Temples of Western India**
—Dr. Harihar Singh 200.00
3. **A Cultural Study of the Nisitha Curni**
—Dr. (Mrs.) Madhu Sen 60.00
4. **An Early History of Orissa**
—Dr. Amar Chand 40.00

५. जैन आचार —डा० मोहनलाल मेहता २०.००
६-१२. जैन साहित्य का बृहद इतिहास, भाग १ से भाग ७ २९०.००
१३. बौद्ध और जैन आगमों में नारी-जीवन
—डा० कोमलचन्द्र जैन ३०.००
१४. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० गोकुलचन्द्र जैन ३०.००
(उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा ५०० रु० के पुरस्कार से पुरस्कृत)
१५. उत्तराध्ययन सूत्र : एक परिशीलन
—डा० सुदर्शनलाल जैन ४०.००
(उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा ५०० रु० के पुरस्कार से पुरस्कृत)
१६. जैन धर्म में अहिंसा —डा० बशिष्ठनारायण सिन्हा ३०.००
१७. अपभ्रंश कथाकाव्य एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक
—डा० प्रेमचन्द्र जैन ३०.००
(उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा १००० रु० के पुरस्कार से पुरस्कृत)
१८. जैन धर्म-दर्शन —डा० मोहनलाल मेहता ३०.००
(उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा १००० रु० के पुरस्कार से पुरस्कृत)
१९. तत्त्वार्थसूत्र (विवेचनसहित) —पं० सुखलाल संघवी ३०.००
२०. जैन योग का आलोचनात्मक अध्ययन
—डा० अर्हद्दास बंडोबा दिगे ३०.००
२१. जैन प्रतिमा विज्ञान —डा० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी १२०.००